रवीन्द्र नाथ टैगोर

जीवन और रचना

सुरेन्द्र सिंह जौहर

साहित्य संगम लुधियाना

रवीन्द्र नाथ टैगोर
जीवन और रचना

मूल्य : ५.००

प्रकाशक :
स० जीवन सिंह एम० ए०
साहित्य संगम, लुधियाना।

मुद्रक : स० जीवन सिंह एम० ए०
लाहौर आर्ट प्रेस, कालेज रोड़
लुधियाना।

आओ चलें

आओ अंतिम गीत खत्म कर आओ चलें
इस रात को भूल जाओ
जब कि रात ही नहीं रही
किस को मैं अपने बाहुपाशों में जकड़ रहा हूं ?
कभी स्वप्न भी किसी ने कैद किये हैं ?
मैं चाहवान हाथों से अन्तिरिक्ष को अपने दिल से चूंट कर
रखता हूं
और इससे मेरी छाती जख्मी हो जाती है।

[टैगोर की गार्डनर से]

दो शब्द

डा. रवीन्द्र नाथ टैगोर हमारे देश की महान् विभूति थे जिन्हों ने काव्य, साहित्य, सामाजिक और अन्य क्षेत्रों में नाम उत्पन्न किया। शायद गांधी जी के अतिरिक्त हमारे देश में ऐसा मनुष्य पैदा नहीं हुआ जिसका कि हमारी दुनिया के पश्चिमी देशों ने, जो प्रगतिवादी समझे जाते हैं, सम्मान किया हो।

कवि टैगोर नोबल पुरस्कार विजेता, गीताञ्जली के मीठे मीठे, मधुर स्वर प्रणीत करने वाला और कई उपन्यासों, नाटकों और कहानियाँ लिखने वाला, साहित्यकार, शान्ति-निकेतन का बानी न केवल भारतियों के लिए ही नहीं बल्कि विश्व के लिए पूजनीक है। उसका नाम विश्व-पर्यन्त तक अमर रहेगा।

उन्होंने जो हमारे देश के लिए, हमारे समाज के लिए किया, हम उसके सदा ऋणी रहेंगे। हम उनका ऋण नहीं उतार सकते। हम उनका किया भूल नहीं सकते। हम उनको केवल श्रद्धाञ्जली अर्पित कर सकते हैं।

इतने महान् व्यक्ति की जीवन-कथा और रचना को २००-२५० पन्नों में बन्द नहीं किया जासकता। इतने पन्ने तो कवि के जीवन की एक घटना और उनकी एक रचना के लिए भी थोड़े हैं। यह सम्भव नहीं, यह अति कठिन है। इस लिए मेरी यह छोटी सी पुस्तक महाँ कवि टैगोर को श्रद्धाञ्जली है। आज जब कि हम उनकी जन्म-शताब्दी मना रहे हैं न

केवल भारत में बल्कि सारे विश्व में, क्यों दुनिया के लोग उन के नाम से अधिक परिचित हैं भारतीयों से अधिक।

जो श्रद्धाञ्जली होने के सम्बन्ध में मेरी यह पुस्तक विद्वानों के लिए नहीं, विद्वान पुरुषों के लिए नहीं बल्कि देश के आम लोगों के लिए है। भूमि पर हल चलाने वाले किसानों के लिए मशीनों पर दिन रात काम करने वाले मजदूरों के लिए और शहरों में दुकानों पर बैठे व्यापारियों के लिए है ताकि वह देश के महान सपुत्र, एक महान व्यक्ति के जीवन और रचना से परिचित हो सके, उसके ऊंचे आदर्शों का सामने रख कर अपने देश, अपने समाज की सेवा कर सकें।

न तो पुस्तक में मैं ने कवि की कविता, नाटक, कहानियाँ और उपन्यासों की आलोचना की है। यह मेरा मनोरथ नहीं। यह कार्य आलोचकों का है। मैं कवि का जीवन और रचरा बड़े सरल और स्पष्ट अक्षरों में वर्णन करने का प्रयत्न किया है।

भाषा मेरी अपनी है जो मुझे मां के दूध से मिली, जो हम प्रतिदिन घरों में बोलते हैं। मैं ने इसे अति सरल रखा है—कृत्रिमता से बचने का प्रयत्न किया है।

मैं अपने मनोरथ में कहां तक सफल हुआ हूं, महाकवि को श्रद्धाञ्जली भेट करने में, मैं पाठकों पर छोड़ता हूं।

जालन्धर शहर सुरेन्द्रसिह जौहर

धन्यबाद

मैं अति धन्यवादी हूं उन व्यक्तियों का, जिन्हों ने यह पुस्तक लिखने में मेरी सहायता तथा पथ-प्रदर्शन किया है, विशेष कर अपने मित्र श्री ईश्वर सिंह अटारी का धन्यवादी हूं, जिन्हों ने पुस्तक मुद्रण से पहिले सारी पांडुलिपि देखी, परामर्श दिए और मुद्रण के योग्य बनाया। श्री के. सी. गुप्ता लाएब्रेरीअन, इन्फरमेशन सैंटर का मैं धन्यवादी हूं जिन्होंने टैगोर के जीवन और रचना बारे कई पुस्तकें मुझे पढ़ने को दीं।

इस के अतिरिक्त मैं स्टेशन डायरैक्टर, आकाश वाणी जालन्धर श्री डी. के. सेन गुप्ता का बहुत ही धन्यवादी हूं जिन्हों ने यह पुस्तक लिखने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री दी और अमूल्य परामर्श देकर मेरी सहायता की।

मैं एक बार फिर उनका धन्यवाद करता हूं।

सुरेन्द्र सिंह जौहर

मुख्य शब्द

७ मई १९६१ को महाकवि टैगोर पूरे सौ वर्ष के हो गए। यही कारण है कि भारत के कोने कोने में टैगोर का सौ साला दिवस मनाया जा रहा है। स्थानक और प्रान्तीय टैगोर सम्मेलनों के अतिरिक्त ११ नवम्बर से लेकर १८ तक नई दिल्ली में, एक अन्तराष्ट्री टैगोर सप्ताह मनाया गया है। इस अवसर पर भारत की सोलह भाषाओं में तीन तीन सदस्य निमन्त्रित करने के अतिरिक्त, दुनियां के और देशों से भी २६ सदस्य बुलाए गए। इस प्रकार दुनियां के प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने इकट्ठे हो कर गुरुदेव टैगोर को श्रद्धाञ्जलि भेंट की।

पंजाब में भी टैगोर दिवस मनाने के लिए पंजाब राज्य अन्य साहित्य सभाओं और सम्मतियां की ओर से टैगोर की स्मृति को पुनः सुरजीत करने के लिए नाटक अभिनीत्र किए जा रहे हैं, मासिक पत्रिकाओं के विशेष अँक निकाले जा रहे हैं और कई पुस्तकें लिखी और प्रकाशित की जा रही हैं।

स: सुरेन्द्रसिंह जौहर की यह पुस्तक, इस सम्बन्ध में बड़े परिश्रम और कष्ट से लिखी गई रचना है। मासिक पत्रों के विशेष अंकों के इलावा पंजाबी में टैगोर के जीवन और रचना सम्बन्धी यह प्रथम पुस्तक है, जिस कारण इस का मूल्य जितना भी पाया जाय थोड़ा है।

इस पुस्तक में लेखक ने टैगोर के जीवन, साहित्यकता, चित्रकारी और संगीत आदि विभिन्न पक्षों सम्बन्धी बहुत

महत्वपूर्ण सामग्री एकत्र की है। उस ने इस सामग्री की एक बहुत बड़ी निधि एकत्रित करके आगे नहीं रखी, बल्कि लेखक ने बहुत सुघड़ता और प्रवीणता से एक सुन्दर योजना अधीन संयोजन करके एक प्रवीण गद्यकार होने का सबक दिया है। जौहर की शैली सरस, भाव-भरपूर और सरल है। उदाहरणतया देखिये टैगोर के पिता-पितामह और घर का चित्र किस प्रकार प्रस्तुत किया है।

यह शैली जितनी सरस और सरल है उतनी ही लिखी जानी कठिन है यह छोटी ईंट की तरह सुदृढ़ एवं सघन है।

मोहन सिंह

पंज रिया, जालन्धर

मुझे इस सांसारिक...आने के लिए निमन्त्रण मिला। तभी ता इतनी बरकतें मुझे जीवन ने दीं अब मेरे चक्षुओं ने भरपूर मेला देख लिया है, मेरे कानों ने सुन सुन कर...इस महान् दावत में मैं साज़िन्दा था और जितना कि मैं यह यंत्र बजा सकता था बढ़चढ़ कर बजाया।"

(टैगोर-गीताञ्जली से)

विषय-सूची

ठाकुर-परिवार

कलकत्ता एक सुन्दर महानगर है—चारों ओर जन-समूह, कोलाहल, मशीनों की भांति चलते-फिरते लोग। किसी के पास अवकाश नहीं। हरेक अपने काम में व्यस्त है। किसी दूसरे की ओर नज़र नहीं उठाता, तनिक मात्र ध्यान तक नहीं देता। पड़ोसी को यह नहीं पता कि साथ में कौन रहता है। कोई किसी के दुख-सुख का सांझी नहीं। जब कोई किसी से परिचित तक नहीं तो दुख-सुख कैसे बांट सकता है। लोग रुपया कमाने में दिन-रात जुटे हुए हैं। इसके लिए अनेकों प्रयत्न करते हैं, झूठ बोलते हैं, षडयंत्र रचते हैं ताकि आर्थिकता की इस दौड़ में एक-दूसरे से आगे निकल जाएं।

दिन समाप्त होता है तो रात को बिजली के टिमटिमाते बल्बों के साथ नया जीवन शुरु हो जाता है। लगता है लोग

सोते तो बिल्कुल ही नहीं। क्लबों, थियेटर, सिनेमा, नाच घरों और नाटशालाओं में लोग इकट्ठे हो जाते हैं और दिन भर का अर्जित धन जो बाहर से खून-पसीने को कमाई-सा प्रतीत होता है, लुटाया जाता है, फूँका जाता है।

बसें, ट्राम-गाड़ियां और कारें यूं दौड़ती फिरती हैं, जैसे छोटे नगरों में साइकिल चलते हैं। कोई जा रहा है, कोई आ रहा है। जीवन-यात्रा के साथ-साथ कारों, ट्रामों और बसों का सफर भी तीव्र गति से चल रहा है।

इस महानगर कलकत्ता में, उत्तर की ओर एक पुरानी गली है। इस गली में भी हर वक्त स्त्री-पुरुष, और बूढ़े-बच्चों की चहल-पहल रहती है। हर मकान से मकान जुड़े हैं। गली की दोनों ओर कहीं भी कोई खाली स्थान नहीं। गली में दम भी घुटता है। इस बड़ी गली में से आगे चल कर एक छोटी गली निकलती है, जिसमें छोटे-छोटे कुछ घर हैं। एक पुराना मन्दिर भी है। गली के अन्तिम छोर पर एक बहुत बड़ा द्वार है—बहुत बड़ा, पुराने समय का द्वार, भव्य प्रासादों के वैभव का प्रतीक द्वार प्रतीत होता है कि कभी इस दरवाज़े के नीचे से बड़े-बड़े सामन्त गुज़रते होंगे..... तो यह दरवाज़ा है उस तिमँज़िले मकान का, जो जोड़ासंको के ठाकुरों का घर है। गली का नाम है द्वारिका नाथ ठाकुर गलो और सड़क का नाम चितपुर।

ऊंचा भव्य मकान, कई खिड़कियाँ दरवाज़े और छोटे-छोटे अगिनत कमरे। दफ्तर बारादरी, ज़नानखाना, तालाब, खेल के मैदान, शयनकक्ष और बैठकों में बंटा हुआ।

इस घर में कवि रवीन्द्र के पूर्वज रहते थे। इसी घर

में कवि के दादा प्रिंस द्वारिका नाथ और महर्षि देवेन्द्र नाथ कवि के पिता, ने जीवन व्यतीत किया।

परन्तु आज के कुलकत्ता और कवि रवीन्द्र के जन्मकाल के कलकत्ता में बड़ा अन्तर है। उस समय कलकत्ता इतना बड़ा नगर नहीं था। इतनी भीड़ न थी, लोग इतने व्यस्त न थे। उस समय के कलकत्ता के विषय में रवीन्द्र स्वयँ इस प्रकार लिखते हैं—

"तब शहर में घोड़ा गाड़ियां चलती थीं, फर्र फर्र मिट्टी उड़ती थी, अस्थि-पिंजर घोड़ों की पीठ पर मोटी रस्सी का चाबुक धड़ाम से पड़ता था। तब न ट्राम थी, न बस, न मोटर गाड़ियां। काम में इतना कोलाहल एवं हलचल न थी। लोग आराम से दिन व्यतीत करते। बाबू लोग दफ्तर जाते समय हुक्के पीते, रास्ते में पान खाते और दफ्तर पहुंच जाते। धनिकों के पास अपनी बग्घियां थीं। साधारण लोग मिल कर किराये पर ले लेते। बग्घियां तगमों से सुसज्जित होतीं; पिछली तरफ चमड़े के टप, कोचवान बाक्स में तुर्रे वाली अपने ढंग की पगड़ी बांध कर बैठता। पीछे दो सईस खड़े रहते जो पैदल चलने वाले लोगों को 'हई ओ हई ओ' की आवाज़ से रास्ते से हटाते।

"स्त्रियाँ रात के अन्धेरे में बग्घियों में बैठ कर घर से बाहर निकलती थीं। वे इन बग्घियों में बैठने से भी झिझकती थीं। धूप या वर्षा में छाते का प्रयोग भी बुरा समझा जाता था। यदि कोई स्त्री साहस बटोर कर बलाउज या सैंडिल पहन लेती तो उसे 'मेम साहब' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। उसे 'निर्लज' के विशेषण से आरोपित किया जाता। यदि किसी स्त्री का किसी परपुरुष से अनायास ही सामना हो जाता

तो वह तत्क्षण नीचे तक लम्बा सा घूंघट निकाल लेती और और मुंह मोड़ लेती ! स्त्रियों को घर से बाहर ले जाने वाली बग्घियां इस प्रकार बंद होतीं जिस तरह घरों में उनके कमरे। बड़े घरों की बहु-बेटियों की बग्घियों पर हरे रंग के मोटे कपड़े का पर्दा चढ़ा रहता, जैसे कोई कब्र में चल फिर रहा हो। साथ-साथ पीतल की मोटी लाठियां लेकर दरबान चलते थे। इसके अतिरिक्त ये दरबान ड्योढ़ी में बैठ कर घर का पहरा देते थे। दाढ़ी-मूंछ को बल देकर बैंक से रुपया निकलवाते, नव-वधुओं को सुसराल पहुंचाते, पर्व और त्योहारों पर गृह-स्वामिनी को गङ्गा-स्नान के लिए ले जाते। दरवाज़े पर फेरी वाले आते तो दरबान उनसे घूंस लेकर उन्हें जाने की आज्ञा देते। कई बार किराये वाली बग्घी के कोचवान हिस्सा देने के प्रश्न पर नाराज़ हो जाते और ड्यूटी से बाहर झगड़ा हो जाता।'

"उस समय शहर में न गैस थे न बिजली। जब मिट्टी के तेल की बत्ती प्रचलित हुई तो हम उसका तेज़ प्रकाश देख कर हैरान हो उठे। रात को फराश आकर कमरे में अरिंडी के तेल की बत्तियाँ जला देता था, परन्तु हमारे पढ़ने वाले कमरे में दो बत्तियों वाला दीपक जलाया जाता।"

"बाहर वाले कमरे में भीतर जाने का रास्ता छोटा था। छत पर धीमे प्रकाश का लैम्प जलता था। जब मैं इस रास्ते से होकर जाता तो मुझे प्रतीत होता कि कोई मेरा पीछा कर रहा है। मैं भयभीत हो उठता। तब भूत-प्रेतों की कहानियां बहुत चलती थीं। लोगों का उन पर विश्वास था और ये कहानियां हर कहीं सुनी-सुनायी जाती थीं। यदि कोई दासी 'शकचुनी' चुड़ैल की गुनगुनी आवाज़

अनायास ही सुन लेती तो वह धड़ाम से गिर पड़ती । वह चुड़ैल बहुत बुरी समझी जाती थी और मछली खाने का शौक रखती थी । घर के पश्चिमी कोने में उगे हुए बादाम के पेड़ के सम्बन्ध में एक और कहानी प्रचलित थी । इस पेड़ पर एक बुत अपना एक पांव एक टहनी पर और दूसरा पांव घर की कार्नस पर टिकाये खड़ा था । बहुत से लोग कहते थे कि उन्होंने अपनी आंखों से देखा था और दूसरे भी इस बात की पुष्टि करते थे और उसे सत्य मानते थे। जब मेरे भाई का एक मित्र इस प्रकार की कहानियों का मज़ाक उड़ाता तो घर के नौकर समझते कि वह अधर्मी है। उनका विश्वास था कि जब उसकी गर्दन को मरोड़ दिया जाएगा, तब उसकी सारी शिक्षा निकल जाएगी ।"

"उस समय ये भय इतने फैले हुए थे कि कई बार बैठे—बैठे अनुभव होता कि मेज़ के नीचे रखे पांव सुर-सुर कर रहे हैं।"

"तब पानी के नल भी नहीं थे । माघ और फागुन के महीनों में, जब हमारे नौकर गंगा की निर्मल जलधारा से पानी के घड़े भर कर लाते थे तो निचली मंज़िल के सारे कमरों में पानी से भरे घड़ों की पंक्तियां लग जाती थीं और वर्ष भर के लिये पानी इकट्ठा हो जाता था।"

"तब सड़क की ओर से नहर द्वारा गंगा का पानी आता था। मेरे दादा जी के जीवनकाल से यह पानी तलाब में फेंका जाता था। जब पानी के फाटक खोले जाते तो झर झर करता पानी झरने की तरह गिरता । मैं इस दृष्य को अपने कमरे में खिड़की की सलाखों को पकड़े देखता ।"

तो यह था तत्कालीन कलकत्ता और कवि के घर का दृश्य एवं वातावरण।

प्रिंस द्वारिकानाथ का जन्म सन् १७९४ में हुआ। वह अभी केवल १३ वर्ष के ही थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया। द्वारिकानाथ बड़ी निराली प्रकृति के स्वामी थे। ऊंचे लम्बे बलिष्ठ जवान, परिश्रमी एवं मौजी स्वभाव—वह एक राजकुमार बनना चाहते थें, लोगों पर शासन करना चाहते थे। धन कमाकर एश्वर्यशाली जीवन व्यतीत करने की उन की बड़ी उत्कट लालसा थी। वह वास्तविक राजकुमार तो न बन सके, परन्तु 'प्रिंस' अवश्य बन गये। इँगलैंड में लोग उन्हें प्रिंस कह कर पुकारते थे, क्योंकि उनके वैभवशाली जीवन से अंग्रेज बहुत प्रभावित थे। उनके पास अपरिमित धन था। वह अपने युग के गिने चुने बड़े व्यवसायियों में से थे। उनके पास हज़ारों एकड़ ज़मीन, कई कारखाने, कई जहाज़ थे। चीनी एवं चाय का व्यापार चलता था। वह पहले भारतीय थे जिन्होंने प्रथम भारतीय बैंक 'यूनियन बैंक' की स्थापना की थी। उनका यह सारा व्यवसाय 'कार टैगोर एण्ड कम्पनी' के अधीन चलता था।

प्रिंस द्वारिकानाथ मुक्त हृदय से खर्च करते थे। अतिथियों का भरपूर आतिथ्य होता और उनकी खूब आव-भगत होती। उनका जीवन कुछ निराला था। घर में वह सादगी के प्रतीक थे, उच्च एवँ आदर्शमय जीवन, सांझ-सकारे देवी-देवताओं की पूजा, भीतर के कमरों का दृष्य जैसे किसी धर्मात्मा का निवास-स्थान हो। परन्तु बाह्य जीवन और रहन-सहन का ढग बिल्कुल भिन्न – बड़-बड़े सुसज्जित हाल जहां मित्रों, भेंट मुलाकात को आए अतिथियों और सरकारी

अधिकारियों का आतिथ्य होता। उनके सम्मान में सहभोजों का आयोजन होता चाय पार्टियों का प्रबन्ध किया जाता। बड़े-बड़े कलाकार, चित्रकार एवं संगीतज्ञ आकर अपनी कला का प्रदर्शन करते, जहां सदैव सोने-चांदी से सजे और खुशबूदार तम्बाकू से भरे हुए हुक्के का प्रबन्ध रहता।

कोई भी दिन ऐसा न होता जब इस हाल कमरे में रौनक मेला न जुटता। कभी नर्तकियाँ अपने नए नृत्य प्रस्तुत कर रही हैं, कभी कोई महान सँगीतकार अपना नया गीत गा रहा है और कभी किसी अंग्रेज अफसर या प्रिंस के सम्मान में भोज का आयोजन है। प्रिंस का जीवन इस तरह व्यतीत हो रहा था—चिंताओं से मुक्त, शंकाओं से निश्चिन्त, ठाठ-बाट का जीवन। राजा महाराजाओं जैसा जीवन। किसी की चिन्ता नहीं, किसी का दुख नहीं।

इसके साथ-साथ प्रिंस द्वारिकानाथ एक उदार दानी सज्जन थे। कोई ऐसी संस्था न होगी जिसे प्रिंस दान न देते होंगे। आज जो संस्थाए देश-विदेश में ख्याति प्राप्त कर रही हैं, वे भारतीयों को प्रिंस की देन हैं। उन्होंने कलकत्ता की 'नैशनल लाएब्रेरी, और हिन्दू कालेज की स्थापना की। दोनों संस्थाओं को दिल खोल कर आर्थिक सहायता दी और उन्हें आत्मा-निभर होने के योग्य बनाया। आज ये संस्थाएँ यदि महान बनी हैं तो प्रिंस द्वारिकानाथ के कारण, उनकी हृदय-विशालता के कारण।

सन १८३५ में उन्होंने कलकता में डाक्टरी कालेज एवं अस्पताल की स्थापना करने में सहायता दी। वह छात्रों को इस कालेज में पढ़ने के लिए छात्र-वृतियां देते थे ताकि वे डाक्टर बन कर मानवता की सेवा कर सकें। उन्होंने लोगों

के मन से इस भ्रम को दूर किया कि मुर्दों की चीर-फाड़ करके डाक्टरी विद्या प्राप्त करनी बुरी बात है। उनकी सहायता से कई छात्र डाक्टर बने जिन्होंने देशवासियों की भरसक सेवा की।

इसके अतिरिक्त प्रिंस केवल दानी पुरुष ही न थे, बल्कि उन्होंने देश में कई सामाजिक परिवर्तन करने के लिए बहुत प्रयत्न किये। वह ब्रह्म-समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय के अभिन्न मित्र थे। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया और हमारे समाज में कई सुधार किये।

उस समय समुन्द्र पार अंग्रेज़ों के देश में जाना बहुत बुरा समझा जाता था। वहाँ जाकर भारतीयों का धर्म भ्रष्ट हो जाता था और वे लोग विदेशी जीवन अपना लेते थे जो भारतीय परम्परा के नितान्त प्रतिकूल था तथा विदेश जाने वाले को समाज-बहिष्कृत कर दिया जाता था। उससे सामाजिक सम्बन्ध तोड़ दिये जाते थे। परन्तु प्रिंस द्वारिकानाथ ने इस रूढ़िगत परम्परा के विरूद्ध विद्रोह किया। वह दो बार इंगलैंड गये और विदेशों का भ्रमण किया– पहली बार १८४२ में और दूसरी बार १८४४ में। पैरिस में वह उस समय के प्रसिद्ध विद्वान और चिंतक मैक्समूलर से मिले जो अपनी आत्म-कथा में लिखता है कि 'प्रिंस की प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का मुझ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।'

जब प्रिंस ने लुई फिलिप्स को भोज पर आमन्त्रित किया तो कमरा काश्मीरी शालों से सजाया गया और भोज के उपरान्त ये कीमती शाल अतिथियों में बांट दिये गये।

दूसरी बार प्रिंस भारत से विदेश गये तो लौट कर नहीं आये और ५२ वर्ष की आयु में इंगलैंड में ही १ अगस्त १८४६ को स्वर्गवास हो गये।

प्रिंस द्वारिकानाथ ठाकुर के तीन पुत्र थे जिनमें से ज्येष्ठ देवेन्द्रनाथ महाकवि के पिता थे।

देवेन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म सन १८१७ में हुआ। जब उन्होंने यौवनावस्था में पदार्पण किया तो घर में किसी चीज़ का अभाव नहीं था। असीम धन-राशि, वही वंशगत ऐश्वर्य, राजाओं जैसा वैभवशाली जीवन। इन सब के होते हुए भी देवेन्द्रनाथ खोये-खोये से रहते। उनका सांसारिक धंधों में मन नहीं रमता था। वह काम, क्रोध, मोह, हंकार, लोभ में फंसी दुनिया से असम्पृक्त हो जाना चाहते थे और सारा समय पूजा-उपासना तथा दरिद्र-नारायण की सेवा में व्यतीत करना चाहते थे। उनमें ईश्वर-जिज्ञासु बनने की उत्कट लालसा थी। जब वह अठारह वर्ष के थे तो उनकी दादी बीमार पड़ गयी। ऐसी बीमार पड़ी कि पुनः रोग-शैया से मुक्त न हो सकी और एक दिन उनकी आत्मा यह संसार छोड़ गयी।

वह अपनी दादी को गँगा तट पर एक झोंपड़ी में ले गये, क्योंकि पवित्र नदी के किनारे शरीर छोड़ना एक महान एवं पुनीत कार्य है। उनकी दादी तीन दिन और तीन रात निरन्तर मृत्यु से संघर्ष करती रही और देवेन्द्रनाथ अकेले उनके निकट बैठे मृत्यु का प्रत्यक्ष अवलोकन करते रहे। उनके मस्तिष्क में रात के अंधेरे में कई विचार उठते...जीवन क्या है ? मनुष्य क्यों जन्म लेता है ? उसका इस सँसार

में क्या कर्तव्य है और अन्त में वह कैसे मृत्यु के साथ संघर्ष करता है, जूझता है केवल दो-चार श्वासों के लिए ..परन्तु मृत्यु का दानव कैसे उसे अपने जबड़े में लेकर पीस फेंकता है।

दादी की मृत्यु वाले दिन उनके मन में एक ऐसा विचार आया कि वह विकम्पित हो उठे। भय और त्रास से वह अचेत-से हो गये और जब वह सचेत हुए तो वह एक बदले हुए मनुष्य थे। इस सम्बन्ध में वह अपनी आत्मकथा में इस प्रकार लिखते हैं—"मैं पहले जैसा मनुष्य न रहा। मेरे मन में आया कि सारी धन–सम्पदा त्याग दूं। बाँस की जिस चटाई पर बैठा हुआ था वही मेरे योग्य थी। ग़लीचे और कीमती सामान के प्रति घृणा जाग उठी और मेरे अन्तस् में एक अचीन्हें आह्लाद का प्रस्फुटन हुआ।" यह कैसे हुआ ? जब दादी अन्तिम श्वास ले रही थीं, तब उनकी एक उंगली खड़ी थी। इससे महाऋषि को यह ज्ञान हुआ कि जो कुछ भी है, ईश्वर ही है, उसका नाम सर्वोच्च है. सब कुछ वहीं मिलेगा...अतएव सदैव उसका स्मरण करो।

तो यह थी देवेन्द्रनाथ में परिवर्तन लाने वाली घटना। वह नये मनुष्य बन गये—पहले से नितांत भिन्न, अपने परिवार के बाकी लोगों से बिल्कुल अलग।

जब वह घर लौटे तो वहां उन्हें शाँति न मिली। उनके मन की अशाँति दिन-प्रति-दिन बढ़ती गयी और वह अत्यधिक बेचैन रहने लगे। उन्होंने धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन आरम्भ कर दिया। पश्चिमी दर्शन की कई पुस्तकें पढ़ीं, महान विद्वानों के विचारों का विवेचन किया, परन्तु उनके मन की अशांति बढ़ती ही गयी। हिन्दु धर्म के ग्रन्थ भी उनके मन को

शांत न कर सके। वह अपनी जीवनी में लिखते हैं कि 'मेरा मन अत्यन्त दुखो था। चारों ओर अधकार मानों कहीं भी आलोक नहीं दीखता था। संसार मुझे एक श्मशान-भूमि की भाँति प्रतीत होता था। मैं असमंजस में था कि क्या करूं, कहां जाऊं, कैसे भटके मन को समझाऊँ। ऐसी मानसिक अवस्था में मैं एक दिन घूम रहा था कि अचानक ही संस्कृत का एक पृष्ठ कहीं से उड़ता-उड़ता मेरे पास आ गिरा। मैंने उसे उठा लिया, परन्तु मैं समझ न सका कि उसमें क्या लिखा था।'' उन्होंने संस्कृत के एक विद्वान को बुला भेजा। उस विद्वान ने पृष्ठ पर छपे संस्कृत के श्लोक, जो कि उपनिषद में से था, का अर्थ इस प्रकार बताया "इस संसार में जो भी विचर रहा है वह उसकी देन है। उसके आदेश के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। इस लिए त्याग करके जोवन व्यतीत करना सीखो। दूसरे की चीजों की ओर दृष्टि न रखो।'' श्लोक का अर्थ सुनने की देर थी कि देवेन्द्रनाथ का मन तड़प उठा। ईश्वर के अस्तित्व पर उनका विश्वास और भी सुदृढ़ हो गया। उन्होंने सत्य का मार्ग अपना लिया और उसका प्रचार करने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये।

देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने राजा राममोहन राय द्वारा संचालित ब्रह्म-समाज आन्दोलन में भाग लिया और लोगों में एक नवीन चेतना जाग्रत की। देश की स्थिति में एक परिवर्तन हुआ और यह नया आन्दोलन शीघ्र ही आत्म-निर्भरता एवं बल पकड़ने लगा। अब देवेन्द्रनाथ को यथेष्ठ ख्याति मिली और लोग उनका सम्मान करने लगे। अब वह महर्षि कहलाने लगे। परन्तु उनके पिता की इच्छा थी कि वह ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत करें और वशंगत परम्परा-अनुसार मुक्त हृदय

से धन का व्यय करें।

परन्तु देवेन्द्रनाथ पर इन बातों का कोई प्रभाव न पड़ता और वह अपने मार्ग पर चल कर ही प्रसन्नता प्राप्त करते रहे। उनका मंतव्य कुछ और था, अपने पिता से भिन्न। वह घर के उत्तरदायित्व से विमुख हो गये और प्रत्येक समय अपने मत के प्रचार–कार्य में व्यस्त रहते। देश के विभिन्न भागों में भ्रमण करते रहते।

देवेन्द्रनाथ की इन रुचियों को देखकर उनके पिता स्वाभाविक ही दुखी थे। उनका मन अशान्त था। एक दिन वह पुत्र पर क्रोधित हुए और कहा-"तुम हर वक्त ब्रह्म-समाज के प्रचार में व्यस्त रहते हो, काम की ओर ध्यान नहीं देते।"

निष्कर्ष यह निकला कि प्रिंस द्वारिकानाथ का व्यवसाय धीरे-धीरे ह्रासोन्मुख होता गया और उनके मरने की देर थी कि फर्म पर बहुत सा ऋण चढ़ गया। घाटा ही घाटा शुरु हो गया और चारों तरफ लेने वाले उठ खड़े हुए, जिन्होंने महर्षि को बहुत तंग किया। 'कार टैगोर और कम्पनी, का दिवाला निकल गया। मित्रों ने परामर्श दिया कि वह अपने आप को दिवालिया घोषित करके सारे ऋण से मुक्त हो सकते है, परन्तु महर्षि ने धैर्य और साहस का आँचल नहीं छोड़ा। सभी लेनदारों को एकत्र करके पाई पाई का ऋण चुका देने का प्रण किया। इससे महर्षि को बहुत शान्ति मिली और उनका मन शान्त हो गया। उन्होंने इस पर सन्तोष प्रकट किया और कहा—"मैं सब कुछ त्याग देना चाहता हूं। मेरी हार्दिक इच्छा पूरी हो गयी है। मैं

संसार को छोड़ना चाहता था, संसार ने स्वयं ही मुझे छोड़ दिया है।

साहुकार लोग अच्छे निकले। वे महर्षि की इमानदारी से प्रभावित हुए और उन्हें उन पर विश्वास हो गया। उन लोगों ने महर्षि और उनके परिवार के अन्य सदस्यों की मासिक धन-राशि नियत कर दी। महर्षि ने धीरे-धीरे सारा ऋण चुका दिया और अपने पिता की ओर से दान देने के सारे वचनों को पूरा किया। इसके साथ उनके मन को अत्यधिक शान्ति प्राप्त हुई और लोगों में उनका सम्मान बढ़ गया।

अब महर्षि के सारे सांसारिक दुख एवं भ्रम दूर हो चुके थे। अब वह स्वतंत्र थे। जहाँ जाना चाहें, जा सकते थे। कोई बंधन नहीं था। अपने मत का प्रचार अपनी इच्छानुसार कर सकते थे और अपना समय उपासना में व्यतीत कर सकते थे।

उन्होंने लगभग सारे देश का भ्रमण किया। उस समय यात्रा करना बहुत कठिन था। न रेल, न मोटर, न बस, पैदल ही यात्रा की जाती थी। वह हर वर्ष हिमालय-भ्रमण को जाते और अच्छे ऋषियों की भांति हिम-मण्डित पर्वत-शिखरों को पसंद करते और इस एकांत में उनका मन बहुत ही रमता। उनकी प्राकृतिक दृष्यों में विशेष रुचि थी और रमणीक स्थान उनके मन को बहुत लुभाते।

कवि रवीन्द्र अपने पिता के बारे में लिखते हैं—"मेरे जन्म के कुछ समय बाद ही मेरे पिता ने देश-भ्रमण आरम्भ कर दिया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि मैं अपने बाल्यकाल में अपने पिता को बहुत कम जानता था। वह अचानक ही कई

बार घर लौट आते और अपने साथ नये-नये नौकर लेकर आते, जो कई बार अच्छा काम करने वाले निकलते। जब पिता जी घर लौटते तो हम उनके सामने कम ही जाते। वह घर कम ही आते थे, किन्तु जब आते थे तो स्पष्ट पता चलता था कि वह आये हुए हैं। तब सब लोग सावधान हो जाते और पिता जी की नज़र पड़ने पर यदि कोई धान खा रहा होता तो एकदम थूक देता। पिता जी रसोई की देखभाल स्वयं करते थे ताकि कोई त्रुटि न रह जाय। जब पिता जी दोपहर के भोजन से निवृत होकर विश्राम करते तो कमरे के बाहर खड़ा दरबान हमें चेतावनी देता रहता कि बरामदे में घूमना ठीक नहीं, कहीं महर्षि के विश्राम में विघ्न न पड़े। हम दबे पांव बरामदे में से गुजरते, कानों में बातें करते और कमरे में झांकने का साहस तो कोई भी न कर पाता।"

"एक बार जब पिता जी भ्रमण से लौटे तो हम तीनों को जनेऊ पहनाने का अनुष्ठान होना था। पंडित जी की सहायता से उन्होंने उपनिषदों में से श्लोक इक्ट्ठे किए और हमें वे श्लोक ठीक प्रकार से पढ़ने की शिक्षा दी जाने लगी। और अंत में हम तीनों सिर मुंडवा कर, कानों में सोने के कांटे पहन कर के अनुष्ठान के लिए तैयार हो गये।"

एक बार मैं अपने पिता जी के साथ गंगा में नौका-विहार को गया। उनके पास कई पुस्तकें थीं। उनमें से 'गोति गोविन्द' उल्लेखनीय है। यह एक बंगालो चित्र था जिसमें पद्य अलग-अलग पंक्तियों में नहीं लिखे हुए थे बल्कि गद्य की भाँति पंक्तियाँ एक-दूसरे के बाद निरन्तर चलती थीं। उस समय मुझे संस्कृत का कोई ज्ञान नहीं था, परन्तु बंगला जानने के कारण बहुत से अक्षर मेरे जाने पहचाने थे। मै कह नहीं

सकता कि मैंने 'गीति-गोविन्द' को कितनी बार पढ़ा।"

हिमालय पर्वत की यात्रा महर्षि की प्रसिद्ध और महत्व-पूर्ण यात्रा थी। जिस दिन महर्षि ने प्रस्थान करना था, उन्हों-ने समूचे परिवार को इकट्ठा किया और प्रार्थना की। इस यात्रा में बालक रवीन्द्र भी महर्षि के साथ गया—"मेरे पिता जी कपड़ों और यात्रा-उपयोगी अन्य आवश्यक चीज़ों की देख-भाल भली भांति करते रहते थे वह चीज़ों को बेतरतीबी से फेंकना बुरा समझते थे। वह अपने देश-वासियों से भी कुछ भिन्न थे। इस लिए हमें बहुत सतर्क एवं सजग रहना पड़ता था क्योंकि उनके स्तर पर पूरा उतरना आवश्यक था। वह जो कुछ भी करना चाहते उसकी सम्पूर्ण रूपरेखा पहले तैयार कर लेते। वह घर में होने वाले समारोहों के समय प्रत्येक सदस्य के काम निर्धारित कर देते और अतिथियों के बैठने के लिए स्थान भी पूर्व निश्चित होता। इसके उपरांत वह हर एक से उसके काम का पूरा ब्यौरा मांगते और सारे आयोजन का अपने मन में एक चित्र खींच लेते। इसलिए जब मैं उनके संग यात्रा को जाता तो मुझे उनके कुछ सिद्धांतों का पालन करना आवश्यक होता, यद्यपि कि मेरे हँसने-खेलने पर कोई प्रतिबन्ध न होता।"

"महर्षि की बुद्धि बड़ी तीव्र थी। एक घटना जो उनके साथ कभी घटित होती, वह सदैव उनको याद रहती। वह उसे कदाचित न भूलते। रवीन्द्र लिखते हैं कि "उन्होंने बोलपुर (शांति-निकेतन) में निर्मित प्रार्थना-भवन कभी भी नहीं देखा था, परन्तु जो कोई भी उसे देख कर आता था, उससे पूछ-पूछ कर ही वह उक्त भवन के विषय में छोटी छोटी बात भी जानते थे।"

"पिता जी ने 'गीता' में कई प्रिय श्लोकों को रेखांकित किया हुआ था। वह मुझे उन श्लोकों को सानुवाद नक़ल करने के लिए कहते थे।"

सन् १८५६ में जब महर्षि हिमालय यात्रा के लिये गये, तब उनका मन अशान्त था। संसार को त्यागने के लिए तैयार थे। इस लिए पर्वत पर ही कोई निवास बना कर शेष जीवन व्यतीत करना चाहते थे। वह लौट कर अपने परिवार में नहीं आना चाहते थे। पर्वत पर रह कर ही उपासना करना चाहते थे ताकि सुख की मृत्यु प्राप्त कर सकें। परन्तु उनके मन को पर्वत-शिखरों की गोदी में भी शाँति प्राप्त न हुई और वह घर लौट आये। यह क्यों हुआ ? कैसे हुआ ? .. एक दिन सितम्बर सन् १८५८ को वह पहाड़ों में भ्रमण करते हुए एक झरना देखने के लिए रुक गये। वह स्वच्छ, निर्मल और साफ जल को पर्वत की गोदी में से निकलते देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए। उनका अन्तस प्रसन्नता से भर उठा। वह आनन्द-विभोर हो उठे प्रकृति के इस चमत्कार को देख कर। उन्होंने सोचा कि यह पानी पहाड़ों से नीचे मैदानों में उतरते ही मटियाला और गन्दला हो जायगा। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी यही पानी धरती को सींचेगा, प्यासी धरती की प्यास बुझायेगा और धरती में हरी-हरी फसलें उपजाने की सामर्थ्य पैदा करेगा। धरती सोना उगलेगी और ये सुनहले दाने मानवता को जीवन प्रदान करेंगे। महर्षि का मन बोल उठा। वह भी उस झरने की भांति बनना चाहेंगे। मन में एक नूतन उत्साह जगा। और इसके शीघ्र बाद वह कलकत्ता लौट आये—अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए। और गृहस्थ-जीवन में रह कर ईश्वर की उपासना करने लगे। वह फिर

कई बार हिमालय-यात्रा को गये, किन्तु उन्होंने कभी भी पहाड़ों की गोद में स्थायी रूप से रहने के लिए नहीं सोचा।

२

कवि रवीन्द्र का जन्म और प्रारम्भिक वर्ष

(१८६१-१८६६)

महर्षि देवेन्द्रनाथ पहाड़ से लौट आये और अपने कलकत्ता वाले घर में रहने लगे । वह नित्य प्रति पाठ-पूजा करते और अपने परिवार में सुख से रहने लगे । उनका जीवन बड़ा सरल था । वह सब कुछ त्याग देना चाहते थे । उन्होंने संसार का मोह छोड़ दिया था । गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए भी मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर सकता है-यह उनका विश्वास बन गया था ।

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के घर ७ मई १८६१ को चौदहवें पुत्र का जन्म हुआ । कौन जानता था कि यह बच्चा न केवल भारत में ही बल्कि समूचे विश्व में अपना नाम उज्जवल करेगा और महान भारतीय सपूत बनेगा ।

घर में पहले कई बच्चे होने के कारण चौदहवे बच्चे के जन्म को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया। यह एक साधारण-सी घटना थी जिसने किसी के ध्यान को आकर्षित नहीं किया।

इस बच्चे का नाम रवीन्द्रनाथ ठाकुर रखा गया, जिसे, प्यार से 'रवि' कहा गया। बच्चा स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट था, परन्तु उसका रंग पहले बच्चों की तरह साफ नहीं था, तनिक गेहुंआ था। उसकी बड़ी बहन रवि को नहलाते समय कहा करती थी ''मेरा रवि यद्यपि तनिक काला है, पर सबसे अधिक चमकेगा। यह उस शिखर पर पहुंच जायगा, जहाँ कोई नहीं पहुंच सकता।

बच्चा बड़ा होता गया और घर के दूसरे बच्चों के साथ विकसित होता गया। बच्चे की माता शारदादेवी का स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहता था। उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी। उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह अपने-आप को सम्भाल सकती। परन्तु धन्य थी वह नारी जो दर्जनों बच्चों, बहु-बेटियों और परिवार के दूसरे सदस्यों की देखभाल करती थी। उनको एक शृंखला में बाँधे रखना कोई साधारण-सी बात नहीं थी। प्रत्येक नव-विवाहिता बहु उस बड़े घर का एक नया सदस्य बन जाती और परिवार दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही गया।

शारदादेवी पूर्णतया हिन्दु नारी थी। उसका आचरण, उच्च, आदर्शपूर्ण एवं सत्यगामी था। वह एक महान महिला थी जिसने 'रवि' को जन्म देकर विश्व का एक आलोकित नक्षत्र बना दिया।

शारदा देवी अपने पति की एक होनहार एवं समर्पित

पत्नी थी, यद्यपि महर्षि ने अपनी रुचियों एवं घुमक्कड़ वृति के कारण उसे कुछ नहीं दिया था, जिसकी वह पात्र थी। वह प्यार की भूखी होगी, वह अपने पति के साथ सदूर यात्राओं पर जाना चाहती होगी, परन्तु महर्षि उसके लिए कुछ न कर सके।

महर्षि एवं शारदादेवी का ज्येष्ठ पुत्र द्विजेन्द्रनाथ एक प्रतिभाशाली, कवि, संगीतज्ञ चित्रकार, दार्शनिक और गणित शास्त्र का विद्वान था।

वह जो कुछ भी लिखते थे, सदैव सूझ-बूझ से परिपूर्ण एवं उच्च कोटि का सृजन करते थे। उनकी कविता एवं प्रतिभा का बालक रवि पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। बालक रवि घर में उन्हीं के साथ रहता, उन्हीं के साथ खाता-पीता और छोटा बच्चा होने के नाते उन्हीं से प्यार करता।

वह एक परिमार्जित गद्य-लेखक भी थे। उन्होंने बंगला संक्षेप–लेखन को जन्म दिया, जिसकी प्रांत भर में प्रशंसा की गयी।

महर्षि के दूसरे पुत्र सत्यजेद्रनाथ प्रथम भारतीय थे जो इंडियन सिविल सर्विस के अधिकारी बने। वह संस्कृत बंगला एवं अंग्रेज़ी के कवि थे। उन्होंने 'गीता' और 'मेघदूत' का अनुवाद किया। अपने संस्मरण और बौध मत पर एक पुस्तक लिखी।

उनकी पत्नी एक सुन्दर और प्रतिभाशालिनी महिला थीं। वह सच्ची और कर्तव्य-परायण पत्नी थीं। यद्यपि उन्होंने नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त न की थी, किन्तु सूझ बूझ इतनी थी कि पति के साथ विचारों का आदान–प्रदान

करतीं, उन्हें परामर्श देतीं और उनके काम में यथासम्भव सहायता भी करती ।

सत्यजेन्द्रनाथ ने अपनी पत्नी को पहली बार पर्दे से बाहर निकाला और उन्हें कलकत्ता के बाजारों में खुली बग्घी में बिठा कर सैर कराई । वह उन्हें अपने साथ आमन्त्रणों और समाराहों में ले गये, क्लबों और रंगशालाओं में गये । बड़ी चर्चा हुई कि सत्यजेन्द्रनाथ प्राचीन भारतीय परम्पराओं को तोड़ रहा है और उनका उल्लंघन कर रहा है, परन्तु सत्यजेन्द्रनाथ ने लोगों की आलोचना की तनिक भी परवाह नहीं की और वह अपना जीवन खुशी से व्यतीत करते रहे । उन्होंने अपनी पत्नी के लिए नियमित शिक्षा का भी प्रबन्ध किया और उन्हें पढ़ा दिया । सत्यजेन्द्र अपनी पत्नी को विदेश भी अपने संग ले गये । उस समय परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ना कोई सरल बात न थी । इसके लिए शक्ति एवं धैर्य की जरूरत थी । समाज के प्रति विद्रोह करना पड़ता था, उससे सघर्ष करने के लिए जूझना पड़ता था ।

महर्षि के तीसरे पुत्र हिमेन्द्रनाथ अपने छोटे भाई बालक 'रवि' को पढ़ाया करते थे । उन्होंने बालक को शिक्षा देने का दायित्व स्वयँ लिया । उन्होंने इस बात पर बल दिया कि बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा मातृ-भाषा में होनी चाहिए, न कि अंग्रेजी में ।

पांचवें पुत्र ज्योतरिन्द्रनाथ अपने युग के महान व्यक्ति थे । उन्होंने संगीतकार, कवि एवं नाटककार के रूप में देश भर में ख्याति प्राप्त की ।

महर्षि की पुत्रियों में से सबसे अधिक प्रसिद्ध थीं सौदामिनी

जो रवि की देखभाल करती थीं। वह उसका नेतृत्व करतीं और उनके जीवन के लिए रूपरेखा तैयार करतीं। दूसरी, स्वर्णकुमारी बंगला की पहली महिला उपन्यासकार थीं। वह संगीतज्ञ भी थीं और दोनों क्षेत्रों में उन्होंने समान रूप से ख्याति अर्जित की।

बालक रवि के पालन-पोषण में उनकी माता शारदादेवी अधिक योगदान न दे सकीं। सो, बालक रवि को मातृ स्नेह न मिला और वह इससे वंचित रह गया। इसका कारण सम्भवत: यह था कि शारदा देवी बच्चे पाल-पाल कर थक गयी थी और उसके मातृत्व का स्त्रोत सूख चुका था। वह अब बच्चे के पालन-पोषण में क्या उत्साह रख सकती, किन्तु बच्चे का कोमल मन तो उस उत्साह को अनुभव करता और मां के दर्शन एवं स्पर्श के लिए तरसता रहता। वह अपना मां को मिल भी नही सकता था। आगे चलकर कवि ने इन विचारों को अपनी कविताओं में भा अभिव्यक्त किया।

इसलिए रवि की देखभाल नौकरों ने शुरू कर दी। नौकर ही उसे खाना खिलाते, नौकर ही उसे कपड़े पहनाते और नौकर ही उसको खेलों की व्यवस्था करते। इन नौकरों के व्यवहार के विषय में रवीन्द्र लिखते हैं 'भारत के इतिहास में 'गुलाम घराने' का राज्य लोगों के लिए कोई खशियां नहीं छोड़ गया था। जब मैं अपने जोवन के इतिहास को ओर दृष्टिपात करता हूं तो मुझे भा घर में नौकरा क शासन की कोई खुशी प्रतीत नहीं होती। शासन बदल जाते है, परन्तु नौकरों द्वारा आरोपित प्रतिबंधों में कोई परिवर्तन नहीं आता। हमें इनके विरूद्ध आवाज़ उठाने का अवसर हो नहीं मिलता। हमारी प्रताड़ित हड्डियाँ इसकी साक्षी हैं। हमने

इसे प्रकृति का नियम मान लिया है कि हर बड़ा छोटे पर शासन करता और उसे पीटता है और छोटा सदैव बड़े की पिटाई सहन करता है। मुझे यह समझने में देर लगी कि बड़ा पीटता है और छोटा सहन करने के लिए विवश होता है। जब मेरी पिटाई होती तो मैं शोर मचाता जिसे हमारे घर के बड़े अच्छी आदत न समझते। इसे नौकरों के विरुद्ध विद्रोह समझा जाता। मैं भूल नहीं सकता कि कैसे इस विद्रोह को दबाने के लिए हमारे सिर पानी के डोलों में बन्द कर दिये जाते।"

"मुझे अब आश्चर्य होता है कि हमारे नौकर हमारे साथ इतना कठोर बर्ताव क्यों करते थे। मुझे यह मान्य नहीं कि हमारे व्यवहार में कोई ऐसी चीज़ थी जिसके कारण हम मानवीय प्यार एवं सहानुभूति के पात्र न थे। ठीक कारण तो यह प्रतीत होता है कि हमारी देखभाल का सारा दायित्व नौकरों को सौंप दिया जाता था, जिसको वे संभाल नहीं सकते थे। इतने गुरु दायित्व को कोई भी नहीं संभाल सकता चाहे वह कितना निकट और प्रिय क्यों न हो। यदि बच्चों को बच्चा समझा जाय, वे हंसते-खेलते रहें और अपना मन बहलाते रहें तो सारी स्थिति ठीक रहती है, किन्तु समस्याएं उस समय पैदा होती हैं जब बच्चों को भीतर कैद कर दिया जाता है और उन्हें खेलने नहीं दिया जाता। इसके अतिरिक्त बच्चे जो उत्तरदायित्व स्वयं संभाल सकते हैं, वे दूसरों को सौंप दिया जाता है, जैसे घोड़े को दौड़ाने के स्थान पर उसे उठा कर ले जाया जाय।

मुझे छुटपन के इन अत्याचारों में से बहुत कम याद हैं। मैं सब कुछ भूल चुका हूं, केवल स्मृतियां का परछाइयां

चेतना पर पर अंकित है । एक व्यक्तित्व जो मुझे याद है, वह है मात्र 'ईश्वर' का ।

ईश्वर पहले स्कूल-मास्टर रह चुका था । वह बड़ा विनीत सरल स्वभाव, मौन-प्रिय और सम्मान करवाने वाला जीव था । धरती उसको बहुत गंदी प्रतीत होती और वह सदैव उसे साफ करने में लगा रहता । वह अपना घड़ा तालाब में डबोये रखता ताकि पूरा पानी से भर के निकले । जब वह तालाब में नहाता तो कितनी देर तक तालाब में से गंदी वस्तुएं निकालता रहता ।"

"घर के बड़े सदस्यों के लिए उसकी बातचीत विनोद का साधन थी । वह हँसी-मजाक और व्यग्य-विनोद का भंडार था । प्रतिदिन सांझ को हम अरिंडो के तेल की बत्ती जला कर उससे रामायण और महाभारत की कहानियां सुनते । कुछ और नौकर भी आकर शामिल हो जाते । लैम्प की परछांई छत तक पड़ती । छिपकिलियां दीवारों पर छोटे-छोटे कीड़ों को पकड़ती हुई स्पष्ट दीखतीं । बाहर बरामदे में और भीतर चमगादड़ नाचते-फिरते और हम खामोश कहानियां सुनते रहते ।

ईश्वर अफीम भी खाता था, इस कारण वह अच्छे भोजन और खुराक का शौकीन बन गया । ईश्वर हमारे खाने के लिए खाद्य पदार्थ खरीदकर लाता । नित्य प्रातः ही वह हमसे पूछता कि हम क्या खायेंगे । हम जानते थे कि सस्ती चीज़ मांगने से वह अधिक खुश होगा । अतएव हम कई बार उससे उबले हुए चावल, चने या भुनी हुई मुगंफली ही मांग लेते । यह स्पष्ट था कि ईश्वर को हमारे खाने-पीने का कोई विशेष ध्यान नहीं था ।

एक और नौकर का आचरण भी उल्लेखनीय है। उसकी प्रत्येक समय यह इच्छा होती थी कि बालक रवि कभी घर से बाहर न निकले और सदैव अपने कमरे में बैठा रहे। शायद इस लिए कि बालक रवि उच्छृंखल प्रकृति का था और बाहर जाकर कहीं कोई उत्पात न कर बैठे। वह रवीन्द्र को एक समतल स्थान पर खड़ा कर देता और चाक से एक वृत खींच कर उसे आदेश देता कि इस वृत से बाहर निकलना ठीक न होगा। रवि ने रामायण में सीता की कहानी सुनी हुई थी कि जब सीता अपनी सीमा से बाहर निकली थी तो रावण उसका हरण करके ले गया था। इसका रवि के मन पर इतना प्रभाव था कि उसने कभी बाहर निकलने का साहस ही न किया था। सुयोगवश, यह स्थान खिड़की के निकट था, जहाँ से बालक रवि सब कुछ देख सकता था। वह बाह्य जगत के दर्शन कर सकता था। बाहर एक तालाब था; एक ओर केले का बड़ा-सा पेड़ और दूसरी ओर खजूर के वृक्षों की पंक्तियां। वह देखता रहता कि लोग क्यों नहाते हैं, कैसे नहाते हैं, हरेक का अपना अपना ढंग—इस दृष्य का कवि पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

बालक रवि के दिन बीतते गये, महीने बीतते गये, वर्ष बीतते गये, वह बड़ा होता गया। नौकरों की छत्रछाया में पलता रहा। उन दिनों की स्मृतियां बहुत मधुर होती है जब बच्चा अपनी तुतली भाषा में समझाने का प्रयत्न करता है। वह अपने आग्रह मनवाता है इच्छाएँ प्रकट करता है। वह चाहता है कि उसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति हो, उसका हर आग्रह माना जाय।

बहुत से लोग इन मधुर स्मृतियों को विस्मृत कर देते हैं। उन्हें संजो कर नहीं रखते; विस्मृति के गर्त में फेंक देते हैं, यद्यपि कि जीवन में संभाल कर रखने वाली निधियों में बचपन की स्मृतियां प्रमुख हैं।

बालक रवि ने इन स्मृतियों को सँजो कर रखा और बाद में साहित्यिक अभिव्यक्ति द्वारा तुष्ठि प्राप्त की।

कवि रवीन्द्र अपने इन दिनों के बारे में लिखते हैं—

"मेरे बचपन के दिनों में सजधज के जीवन से कोई नहीं परिचित था। उस समय का जीवन-स्तर आज के जीवन से कहीं साधा एवं साधारण था। इसके अतिरिक्त घर के बच्चे वाँछित देख भाल से वंचित थे। वास्तविकता तो यह है कि नौकरों द्वारा बच्चों का पालन-पोषण होना माता पिता के लिए चाहे खुशी को बात हो, परन्तु बच्चों को बुरा ही लगता था। "हमारा खाना बहुत साधारण और सादा होता था। जो वस्त्र हम पहनते थे, उन्हें देख कर आज का बालक निश्चित ही गालियां देगा। दस वर्ष की आयु तक मोजों के साथ बूट पहनना कुछ विचित्र लगता। सर्दियों के दिनों में हम एक के ऊपर दूसरा सूती चोगा पहन लेते थे जो कई बार इतना तंग होता कि हमारा सिर उसमें से निकल भी न सकता। हम शिकायत केवल उस समय करते जब हमारा दर्जी जेब लगाना ही भूल जाता। हमारे पास 'स्लीपर' का जोड़ा अवश्य होता, परन्तु हम उसे पहनते कभी-कभी ही। हम स्लीपरों को पहले पांव से आगे धकेल देते और फिर उन्हें उठा लेते। यही उनके लिए कम काम न था।

"हमारे माता-पिता और घर के अन्य बड़े सदस्य हमसे दूर रहते थे। हमारे और उनके खाने पीने एव वस्त्रों में

अत्यधिक अँतर था । हमें केवल उनकी झलक दिखाई देती, वे चीजें कभी भी प्राप्त न होतीं । आज के बच्चों के लिए माता-पिता से मिलने में कोई कठिनाई एवं बाधा नहीं । वे जो चाहते हैं, प्राप्त कर सकते हैं । हमारे लिए कोई तुच्छ सी वस्तु प्राप्त करना भी असंभव था । हम कई बार किसी वस्तु विशेष को प्राप्त करने के प्रयास भी करते रहते । इस लिए हमें जो कुछ भी मिल जाता उसे पाकर ही बहुत खुश होते । सारी की सारी वस्तु खाते । छिलके से लेकर गूदे तक कुछ भी न फेंकते । आज के बच्चे को जो कुछ मिलता है, वह उसका आधा भाग भी नहीं खाता । उसका अधिकांश फेंक देता है ।"

"हमारा घर से बाहर निकलना तो अलग हम तो सारे घर में घूम-फिर नहीं सकते थे । मेरी पहुंच के बाहर मुक्त वातावरण था, जो मुझे अपने निकट आता प्रतीत होता था, परन्तु वह स्वधीन था और मैं प्राधीन । मिलने की कोई राह न थीं, परन्तु लालसा बढ़ती ही जाती थी ।"

"बालक सदैव बाहर निकलने के यत्न करता रहता ! वह चाहता था कि वह पक्षियों की भान्ति स्वतत्रं विचरण करे । एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर चला जाय । उसे कोई रोकने वाला न हो । वह घर में, घर के चतुर्दिक वातावरण में घूमना चाहता था । वह समूची सृष्टि में विचरना चाहता था । वह संसार को अपने निकट लाना चाहता था । परन्तु वह यह सब कुछ नहीं कर सकता था । उसपर प्रतिबंध थे, बधंन थे, उसके पांव जकड़े हुए थे । कवि ने आगे चाले कर इस अवस्था का बहुत सुन्दर चित्रण किया ।

"पालतू पंछी पिंजरे में है, मुक्त पँछी वनों में मुक्त गगन

पर विचरता है। जब समय आया तो दोनों का मिलन हो गया। यह ईश्वर की इच्छा थी।"

"स्वतंत्र पंछी ने पुकारा प्रिय! आओ वनों को उड़ चलें। पिजरें के पंछी ने कहा, इधर आओ—दोनों पिजरें में रहें।

"स्वतंत्र पंछी ने पुकारा—पिजरे में पँख फैलाने को स्थान कहां है?"

"आह, पिजरे वाले पंछी ने कहा—मैं तो यह जानना नहीं चाहता कि आकाश के नीचे मेरे बैठने का स्थान कितना है?"

जिस प्रकार पहले वर्णन किया गया है कि कवि ने अपनी बाल्यकाल की स्मृतियों को बहुत संजो कर रखा और वह इन्हीं के आश्रय पर जीते रहे। इसलिए उन्होंने अपने उन दिनों के रहन-सहन, वातावरण, जीवन-ढंग और घर की अवस्था का कई स्थानों पर उल्लेख किया है।

'मेरे कमरे के बाहर हमारा घर लोगों से भरा रहता। घर की प्रत्येक नुक्कड़ पर मैं नौकरों के काम करने की आवाज़ें सुनता। पारी शाक-सब्जियों की टोकरी पीठ पर उठाये सामने वाले आंगन की ओर मुड़ रही है। दुखन बहरा बहंगो पर गङ्गा से पानी के घड़े भर कर ला रहा है। कपड़े बुनने वाली घर के अन्दर नई साड़ियों का सौदा करने जा रहा है। दीनू सुनार जो मासिक मजदूरी प्राप्त करता है, प्रायः गली के छोर वाले कमरे में बैठ जाता, फूंके मारता है और घर वालों के निर्देशानुसार काम करता रहता है। फिर वह कैलाश मुखर्जी, जो अपनी कानों में लेखनी फंसाये रहते, के पास आकर अपना बिल पेश करता है। धुनका बाहर

आँगन में बैठा रुई धुनक रहा है। मुकंदलाल एक आंख वाले पहलवान से कुश्ती के नये-नये दाँव-पेंच सीख रहा है। वह उसकी बलिष्ठ माँस-पेशियों पर जोर-जोर से हाथ मारता है। भिखारियों की भीड़ बैठी भिक्षा मिलने की प्रतीक्षा कर रही है।"

"उन दिनों हम अपनी संध्याएँ नौकरों के कमरों में व्यतीत करते थे। रईसों की भाषा में इन कमरों को 'तोशा खाना' कहा जाता था। यद्यपि उस समय हमारे घर में पुराना ठाठ-बाट और वैभव नहीं था, फिर भी बड़े २ नाम 'तोशाखाना, 'दफ्तर खाना' बैठक खाना' आदि सुने जा सकते थे।"

"इस 'तोशाखाना' के दक्षिणी भाग में एक बड़े कमरे में अरिंडी का लैम्प धीमा धीमा जल रहा है। दीवार से गणेश का चित्र लटका हुआ है, साथ ही काली माता का एक पुराना चित्र है। इसके निकट ही छिपकिलियां अपना कीड़ों का शिकार ढूंढ़ रही हैं। कमरे में कोई कुर्सी मेज नहीं था, केवल एक चटाई फर्श पर बिछी हुई थी।

'आपको यह समझ जाना चाहिए कि हम गरीबों की भांति रहते थे। इसलिए हमें अच्छी घुड़शाला की जरूरत न थी। दूर कोने में एक छप्पड़ के नीचे घोड़ागाड़ी खड़ी रहती थी। हम बहुत साधारण और साफ सुथरे कपड़े पहनते थे। मोजे डालना हमने बहुत बाद शुरू किया। उस दिन हमारा स्वप्न खिल उठता जिस दिन हमे डबल रोटी और मक्खन खाने को मिल जाता।"

"थोड़ा खाने से मैं कमजोर नहीं हुआ, अपेक्षाकृत उन बच्चों के जो अधिक खाते थे । मेरे शरीर की रचना कुछ ऐसी थी कि मैं स्कूल जाने की अनिच्छा से झूठ मूठ बीमार बनना चाहता भी तो न बन सकता । मेरे जूते और मोजे गीले हो जाने पर भी मुझे ठंड न लगती । मैं ओस में भी बाहर छत पर लेट जाता। मेरे कपड़े और बाल गीले हो जाते, परन्तु मुझे कदाचित ही खांसी लगती । जहाँ तक पेट खराब होने का सम्बन्ध है, वह तो कभी हुआ ही नही हांलांकि मैं पेट खराब होने का बहाना अपनी मां के आगे कई बार बना दिया करता। मां हाथ पकड़ती और कोई चिन्ता न करती। वह केवल नौकर को बुलाकर कहती कि वह मास्टर को बता दे कि आज वह रवि को न पढ़ाये । हमारी पुरातन विचार-धारा की माताएँ एकाध दिन की छुट्टी लेने में कोई हर्ज न समझतीं। आज कल की मां होती तो कान खींच कर मास्टर के पास भेज देती या 'कस्ट्रैल' पिला देती और सदा के लिए दर्द ठीक कर देती । यदि कभी मुझे ज्वर हो जाता तो इसे ज्वर न समझा जाता, बल्कि उत्तजित रक्त के चिह्न की संज्ञा दी जाती। मैंने थर्मामीटर का कभी प्रयोग नहीं किया था। डाक्टर आता और मेरे बदन पर हाथ लगाने के बाद 'कस्ट्रैल' देकर एक दिन की भूख रखने का आदेश दे जाता। तब मुझे पीने के लिए पानी कम मिलता। यदि मिलता भी तो गर्म उबला हुआ पानी । इस उपवास के बाद मछली की तरकारी एव उबले हुए चावल कहीं तीसरे दिन खाने को मिलते । उसको मैं ईश्वर द्वारा भेजा हुआ भोजन समझ कर खा लेता।"

"मुझे तीव्र ज्वर कभी नहीं हुआ था और न ही मैंने

कभी 'मलेरिया' का नाम सुना था । मैंने कभी 'कोनीन' नहीं ली । 'कस्ट्रैल' ही पीना पड़ता था, जिसे मैं अत्यधिक घृणा करता था । डाक्टर को कभी भी मेरे किसी अँग की चीरफाड़ करने का अवसर नहीं मिला और मैं तब नहीं जानता था कि चीचक रोग क्या होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मैं हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ था । यदि माताएँ चाहती हैं कि उनके बच्चे स्वस्थ रहें, तो उन्हें सदैव ईश्वर जैसे नौकर रखने चाहिएँ । वे न केवल भोजन और धन की बचत करते है, बल्कि तेल मिश्रित घी के युग में डाक्टर का खर्च भी बचाते हैं । उन दिनों बाज़ारों में चाकलेट कहां उपलब्ध थी, अलबत्ता एक पैसे में 'लालीपप' अवश्य मिलती थी ।"

रवि बड़ा होता गया । उसे अपना घर सकीर्ण प्रतीत होने लगा । वह बाहर की दुनिया में जाना चाहता था । वह अपने से बड़ों से मेलजोल रखना चाहता था । उनसे घनिष्टता बढ़ाना चाहता था ।

रवींद्र लिखते हैं—

"उन दिनों लोग दफ्तरों, स्कूलों या कॉलेजों से लौटकर खेल के मैदान की ओर नहीं दौड़ जाते थे, और न ही ट्रॉमों के पॉयदानों पर लदी भीड़ होती थी । सिनेमाघरों के आगे लोगों का जमघट नहीं जुटता था । लोग नाटकों में कुछ रुचि रखते थे, किन्तु अफसोस कि उस समय मैं बच्चा था । उस समय के बच्चे अपने बड़ों के आमोद-प्रमोद में सम्मिलित नहीं हो सकते थे ! यदि कभी हम निकट चले भी जाते तो वे हमें झिड़क देते और दूर भाग जाने के लिए कहते । और हम शोर करते तो हमें चुपचाप बैठ जाने के लिए कहा

जाता। कई बार हम उनके हर्षोल्लास सम्मिलित भी हो जाते। हम बरामदों में खड़े रहते और दूसरी ओर अतिथियों के स्वागत के लिए सजे हुए कमरों की ओर झाँकते। मेरे भाई अतिथियों को अपने साथ लेकर जाते। उन पर गुलाब-रस छिड़का जाता और प्रत्येक अतिथि को एक छोटा-सा फूल भेंट किया जाता।"

"उस समय बच्चों को बड़ों से ऐसे अलग रखा जाता था जैसे स्त्रियों को पुरुषों से।"

"पान का तम्बाकू को भान्ति बहुत प्रचलन था और वे मुक्त हृदय से अतिथियों को खिलाये जाते। उन दिनों प्रातः ही अन्य कार्यों के साथ-साथ पान भी तैयार कर लिये जाते ताकि संध्या को अतिथियों को पेश किये जा सकें। धीरे-धीरे पत्ते पर चूना लगाया जाता, फिर छोटी-सी लकड़ी के साथ कत्था लगता; तब सुपारी डाल कर लपेट लिया जाता। ऊपर एक लौंग रख कर पान खाने के लिए तैयार कर लिया जाता। फिर सारे पानों को इकट्ठा करके गीले कपड़े में लपेट कर पीतल के डिब्बे में रख दिया जाता। उसके साथ-साथ ही बाहर कमरे में तम्बाकू तैयार हो रहा होता।

कवि रवींद्र ने अपने घर के वातावरण का चित्रण इस प्रकार किया है–

"संध्या के समय मेरी माँ कमरे में चटाई बिछा कर बैठ जाती। साथ ही उसकी सहेलियां बैठ जातीं। खूब गप्पें चलतीं। इधर-उधर की बातें होतीं केवल समय बितान के लिये। सुनी-सुनाई कहानियां, उड़ते-उड़ते समाचार, हंसी मज़ाक, व्यँग विनोद के साथ स्त्री पुरुष अपने सामाजिक संगठन में समय व्यतीत करते। मेरी मां की सबसे प्रिय

और निकट सहेली 'अचारिणी' थी । वह प्रतिदिन कोई न कोई नई बात बना लाती । देश की कोई न कोई कहानी अवश्य सुनाती ।"

"ये ऊपर वाले कमरे स्त्रियों के रहने के लिए थे । यहाँ पर धूप अच्छी तरह पड़ती और इसी लिए यह जगह अचार के लिए नींबू तैयार करने के लिए इस्तेमाल की जाती । यहाँ बैठ कर स्त्रियाँ अपने बाल सुखातीं और अपनी तेज अगुलियों से दाल के 'बड़े' बनातीं । नौकरानियाँ कपड़े धोकर यहाँ धूप में सूखने के लिए फैला देतीं । धोबियों के पास उन दिनों काम कम ही होता था । कच्चे आमों को काट कर सुखाया जाता और उन्हें सरसों के तेल में डाल कर अचार तैयार किया जाता ।

"सर्दियों के दिनों में सोंधी सोंधी धूप में बैठ कर स्त्रियां गप्पें हाँकती और पशुओं को हटाती रहतीं । वे सुपारी काटतीं और मैं भी कई बार उनका इन कामों में हाथ बटाता । मैं सुपारी बड़ी अच्छी काटता था । मेरी भाभी समझती कि यह मेरा एक बहुत बड़ा गुण है । वह हमेशा इसकी प्रशंसा करती । इसलिए मैं यह काम बड़े चाव से करता ।"

बालक रवि बड़ा होता गया । ये दिन भी कितने मधुर और प्रिय होते है, जब कि बच्चे को संसार की कोई सुधि नहीं होती । संसार में क्या घटित हो रहा है, कैसे उसके बड़े परिश्रम करके धन कमाते हैं-इससे बच्चे का कोई सम्बन्ध नहीं । उसने तो केवल हसंना-खेलना है । उसे कोई नहीं चिन्ता नहीं । घर का प्रबन्ध करना बड़ों का काम है । बच्चे को इससे क्या ? यही हाल बालक रवि का था । वह तो अपनी दुनिया में मग्न रहता था और अब उसके मधुर और प्रिय दिन धीरे धीरे कम हो रहे थे । वह बड़ा जो हो रहा था ।

३

कवि रवीन्द्र के जन्म के समय देश की सामाजिक और आर्थिक अवस्था

समय अपनी गति से चलता रहता है और देश के इतिहास में कई आन्दोलन उठते हैं, फैलते हैं और समाप्त हो जाते हैं। समाज परिवर्तनशील है। कई राजनैतिक घटनाएं देश में घटित होती हैं। प्रत्येक काल में हमारे देश में समाज-सेवक आविर्भूत हुए और उन्होंने सामाजिक कुरूतियों का उन्मीलन करने के प्रयत्न किये। सदैव यह प्रयत्न किये गये कि समाज में से गन्दगी को निकाल फेंका जाए। कई अपने मन्तव्य में सफल हुए और कई हताश होकर बैठ गये।

कवि रवीन्द्र का जन्म सन् १८६१ में हुआ। यद्यपि भारतीय इतिहास में यह समय इतना महत्वपूर्ण नहीं था, न ही देश मे कोई आर्थिक विकास हुआ, तदापि सामाजिक

ग्रौर राजनीतिक क्षेत्र में कुछ परिवर्तन लाने के प्रयत्न किये गये।

सन १८६१ में अंग्रेज १८५७ की राज्य क्रान्ति के बाद भारत में राजनैतिक तौर पर अपने पाँव पूरी तरह जमा चुका था। अब देश में पूर्ण रूप से अंग्रेज का राज्य था। किसी हलचल की संभावना न थी। लोग भयभीत थे ग्रौर अंग्रेज के व्यक्तित्व के कारण कम-से-कम कुछ समय के लिए देश में कोई राजनैतिक ग्रान्दोलन नहीं उठ सकता था। लोग मानो त्रस्त होकर अपने घरों में ही छुपे रहते ग्रौर हरेक को अपने जीवन की चिन्ता थी।

बंगाल में तो अंग्रेज पूर्णतया अपना अधिकार स्थापित कर चुके थे ग्रौर बड़े-बड़े नगरों में लोग यह चाहने लगे थे कि अंग्रेज के साथ सहयोग ग्रौर सद्भावना से रहकर जो कुछ भी उपलब्ध हो सकता है, प्राप्त किया जाय। शिक्षा के क्षेत्र में तोइस बात का प्रचार विशेष रूप से किया जा रहा था कि लोग पढ़-लिख कर सचेत हो जाएं ग्रौर अपना हित-अहित स्वयं सोचें। उस समय देश में अनेक स्कूल, विद्यालय ग्रौर महाविद्यालय खोले गये, जिनमें हजारों की संख्या में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे। लोगों की रूचि दिन-प्रति-दिन शिक्षा की ग्रोर प्रवृत होती गयी।

देश में पूर्ण रूप से शान्ति स्थापित हो जाने के साथ देश के कई क्षेत्रों में विकास हुआ।

कवि रवीन्द्र के जन्म-समय देश में जो तीन प्रमुख ग्रान्दोलन चल रहे थे, उनमें से एक धर्मिक दूसरा साहित्यिक ग्रौर तीसरा राजनैनिक ग्रान्दोलन था।

धार्मिक आन्दोलन का वर्णन कवि ने अपने शब्दों में इस प्रकार किया है—

"धार्मिक आन्दोलन का सूक्षत्रपात उदार हृदय और उच्च बुद्धि के स्वामी राजा राम मोहनराय ने किया। यह एक क्रान्तिकारी आन्दोलन था, क्योंकि उन्होंने आत्मिक जीवन के प्रवाह को, जो शताब्दियों से अवरूद्ध पड़ा था, पुनः प्रवाहित करने के प्रयत्न किये।"

राजा राममोहन राय का जन्म सन् १७७४ में बंगाल में हुआ। वह प्रारम्भ से ही अद्भुत और अनोखी प्रकृति के स्वामी थे और स्पष्टतया प्रतीत होता था कि वह शीघ्र ही समाज के विरुद्ध कोई विद्रोह करेंगे और देश का सामाजिक ढाँचा बदलने का प्रयास करेंगे। अभी वह १६ वर्ष के ही थे कि उन्होंने मूर्ति-पूजा पर एक लेख भी लिखा। इस लेख का प्रकाशित होना था कि सारे बंगाल में हलचल मच गई। आलोचकों ने इसकी कठोर आलोचना की। कई जनूनी हिन्दुओं ने उन्हें समाज-बहिष्कृत करने के यत्न किये। राजा राममोहन राय ने निरन्तर चार वर्ष सारे देश में भ्रमण किया और मूर्ति-पूजा के विरुद्ध भरपूर प्रचार किया।

राजा राम मोहन राय संस्कृत, फारसी और अरबी के विद्वान थे। उन्होने हिन्दु-कानून का अच्छी तरह अध्ययन और विवेचन किया तथा यूनानी एवं विदेशी भाषाओं को भी पढ़ा। वह धर्म और साहित्य के भी मर्मज्ञ थे। उन्होंने 'बाईबल' का आद्योपान्त अध्ययन किया और कई विदेशियों से सम्बन्ध स्थापित किये। उन्होंने विदेशी इतिहास और साहित्य का मननशील अध्ययन करके अपने विचारों को परिपक्वता प्रदान की और उनसे वह अत्यधिक प्रभावित हुए।

उन्होंने शताब्दियों से प्रचलित सती-प्रथा के विरुद्ध आवाज उठायी। पुरुष के मरने के बाद स्त्री भी उसकी चिता में कूद कर मर जाती! क्या पुरुष के बाद इसका जीने का अधिकार नहीं रहता, क्या उसके जीवन का अंत पुरुष के जीवन के साथ हो जाता है? यदि ऐसा नहीं तो फिर वह क्यों सती होती है? उसे सती नहीं होना चाहिए—जगह-जगह पर राजा राममोहन राय ने इसके विरुद्ध प्रचार किया, लेख प्रकाशित किये, भाषण दिये। देशवासी जो शताब्दियों से इस प्रकार की रुढ़ियों और भ्रमों में फँसे हुए थे, राजा राममोहन राय का विरोध करने लगे। उनके साथी एक एक करके उनका साथ छोड़ गये। वह अकेले रह गये, एक विशाल समाज के साथ जूझने के लिए। वह बिरादरी से बहिष्कृत कर दिये गये, लोगों ने उनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया, बोलचाल बँद हो गयी। वह एक स्थान पर स्वयँ लिखते हैं—"समय आया जबकि मेरे सारे मित्र मुझे छोड़ गये। मेरे केवल दो या तीन स्काच (स्काटलैंड के निवासी) मित्र रह गये और मैं सदैव उनका और उनके राष्ट्र का, जिसके वे नागरिक थे, ऋणी रहूंगा।"

चारों ओर आलोचना, विरोध, टीका-टिप्पणी...परन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और साहस से सामाजिक कुरीतियों एवं दोषों के विरुद्ध लड़ते रहे और अपने गिने चुने बंगाली मित्रों के साथ मिल कर अपना काम करते रहे। तब उन्होंने ब्रह्म-समाज की स्थापना की और उसकी सभाएँ नियमित रूप से होती रहीं।

सन् १८३० में वह विदेश गये। शायद वह पहले हिन्दु थे जिन्होंने विदेश यात्रा की। उन्होंने अपने कई देशवासियों को

नाराज़ किया और उनके रोष की तनिक भी परवाह न करते हुए वह काफी समय तक वहां रहे। विदेश में उन्होंने अपनी विद्वता एवं योग्यता से लोगों को बहुत प्रभावित किया। वह विदेश में रह कर भी सती-प्रथा के विरुद्ध प्रचार करते रहे जिसकी उपलब्धि यह हुई कि लार्ड विलियम बैंटिक ने कानून द्वारा सती-प्रथा का उन्मूलन कर दिया। वह अपने 'मिशन' में सफल हो गये, उनका जीवन-ध्येय पूर्ण हो गया। अब उनका मन शांत था। जिस काम का उन्होंने दायित्व लिया था, वह पूरा हो गया था। अब वह संसार को छोड़ सकते थे और २७ सितम्बर १८३३ को विदेश में ही उनका स्वर्गवास हो गया। आज का भारतीय उनका ऋण कभी नहीं भूल सकता। आने वाली सन्तानें भी उतनी ऋणी रहेंगी। यदि आज से लगभग १५० वष पूर्व वह सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध न लड़ते तो आज हमारे देश की सामाजिक रूपरेखा कुछ और होती।

उनकी मृत्यु के बाद उनके विचारों का बंगाली जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। कोई भी क्षेत्र धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक उनके प्रभाव से मुक्त न रह सका। कवि रवीद्र तो उनके जीवन और रचनाओं से बहुत ही प्रभावित हुए।

राजा राममोहन राय की मृत्यु के उपरान्त ब्रह्म-समाज का संचालन-कार्य-भार महर्षि देवेन्द्रनाथ ने संभाल लिया। आप कवि के पिता थे। कवि रवीन्द्र लिखते हैं—मुझे इस बात का गौरव है कि हमारे परिवार के कई मुखिया इस इस आन्दोलन के नेताओं में से थे, जिन्होंने समाज वहिष्कृत

होना और सामाजिक अत्याचारों को सहन करना स्वीकार किया।"

रवीन्द्र के पिता ने सामाजिक विरोध के बावजूद भी अपने घर में से मूर्ति-पूजा का जड़ोन्मूलन कर दिया। कट्टर हिन्दूओं ने उनके विरुद्ध विद्रोह किया और उनसे सम्बन्ध-व्यवहार बंद कर दिया। उन्हें अहिन्दु की संज्ञा दी गयी, किन्तु उन्हों ने अपने मिशन को नहीं छोड़ा। अपना काम निर्भीकतापूर्ण करते रहे। उन्होंने अपना महान मिशन जारी रखा और अँत में देववाशियों ने उन्हें महर्षि के नाम से विभूषित किया। वह समाज सुधार करके ही शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करसकते थे। उनका मन तभी शांत और संतुष्ट हो सकता था जब वह समाज में बढ़ रही कुरीतियों एवं दोषों को रोक सकते थे। यह उनका ध्येय था और यही उनका गंतव्य था।

देवेन्द्रनाथ ठाकुर के धार्मिक और सामाजिक विचारों का उनकी संतान पर बहुत प्रभाव पड़ा। महर्षि का धर्म चाहे हिन्दु धर्म की एक शाखा था, परन्तु फिर भी दोनों में एक अन्तर था। हिन्दु धर्म मूर्तिपूजक है, परन्तु ब्रह्म समाज इसका निषेध करता है। महर्षि ने तत्कालीन साहित्यकारों और कवियों को बहुत प्रभावित किया और बहुत से कवियों ने मूर्ति पूजा के विरुद्ध कविताएं लिखीं।

दूसरा आन्दोलन साहित्यिक था। रवीन्द्र के जन्म के समय बंगला-साहित्य में एक महान क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा था। कई महान साहित्यकार क्षत्र में आये और उन्होंने अपने साहित्य द्वारा जन-जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। इन महान साहित्यकारों में से एक बंकिमचन्द्र चैटर्जी थे। कवि

रवीद्र उनके विषय में लिखते हैं "वह इस साहित्यिक क्रान्ति के प्रमुख जन्म-दाता थे, जो उस समय बंगाल में हुई।" बंकिमचन्द्र चैटर्जी बहुत सुलझे हुए प्रतिभाशाली व्यक्ति थे और उन्होंने बंगला-साहित्य का शिखर पर पहुंचा दिया। वह 'बंग-दर्शन' नामक समाचार-पत्र के सम्पादक थे। उन्होंने पत्रकारिता को नई दिशा दी। 'बंग-दर्शन' उस शिखर पर पहुंचा जहां 'साधना' के अतिरिक्त कोई और पत्र नहीं पहुंच सका। बंगाली जनता वैसे भी साहित्य-रसिक थी, परन्तु बंकिमचन्द्र की रचनाओं ने लोगों की साहित्यिक रुचि को परिष्कृत किया। बंकिमचन्द्र ने हमारा राष्ट्रगान 'बन्दे मातरम्' भी लिखा।

एक और साहित्यकार जिनका चाहे रवीन्द्रनाथ पर सीधा प्रभाव न पड़ा, "परन्तु उनका उल्लेख करना उचित होगा क्योंकि उनके बिना रवीन्द्रनाथ को विचार और भावना विरासत में कदाचित न मिलते। वह थे केशवचन्द्र सेन जो सन् १८५७ में ब्रह्म समाज में सम्मिलित हुए और कुछ समय के बाद 'सुलभ-समाचार' साहित्यिक पत्र निकाला। यह पत्र उस समय के बंगाल में बहुत लोकप्रिय और सस्ता साहित्यिक पत्र था। लोग इस पत्र को बहुत पढ़ते और इसमें प्रकाशित विचारों से प्रभावित होते।

अन्य कवियों में से, जो रवींद्रनाथ के जन्म के समय में, बंगला साहित्य पर छाये हुए थे, हेमचन्द्र बैनर्जी और नवीनचन्द्र सेन अधिक प्रसिद्ध थे। हेमचन्द्र ने देशभक्ति के सम्बन्ध में लिखा और उनकी बहुत-सी रचनाएं राजनैतिक थीं। उनकी पुस्तकें 'भारत के गीत' और 'अंग्रेजी राज्य' बहुत प्रसिद्ध हुईं, परन्तु क्योंकि वह उच्च कोटि के कवि न

बन सके इसलिए रवीन्द्रनाथ उनसे कम प्रभावित हुए।

बिहारीलाल चक्रवर्ती यद्यपि बंगाल में ख्याति प्राप्त न कर सके, तदापि कवि रवीन्द्र पर उनका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। कवि रवीन्द्र स्वयं लिखते हैं कि 'मैं छुटपन से ही उनके संगीत का रसिक था।"

साहित्यिक क्षेत्र में यह पृष्ठभूमि रवीन्द्रनाथ को मिली। ज्ञान का भंडार कवि के सामने था। कवि का साहित्यिक और सास्कृतिक दाय बहुत महत्वपूर्ण था।

तीसरा आन्दोलन जो कवि के जन्म समय चल रहा था, वह राजनैतिक आन्दोलन था। लोगों में जागृति आ रही थी। लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहे थे। उन्होंने मिल कर एक आवाज उठाई। रोष की आवाज जो लोगों को अपमानित करने के बिरुद्ध उठी। राष्ट्रीय आन्दोलन इस मन्तव्य को लेकर उठा कि अतीत की गौरवमयी पूंजी को अंधतः छोड़ने की प्रवृति का बहिष्कार करना चाहिए। यह एक क्रांतिकारी आन्दोलन था।

यह आन्दोलन भी विशेष महत्व रखता है, क्योंकि आगे चल कर इसका बंगाली जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

कवि रवीन्द्र का जन्म इन तीनों आन्दोलनों के संगमकाल में हुआ। इन क्रान्तिकारी आन्दोलनों के विषय में रवीन्द्र नाथ ने लिखा है कि "इन आन्दोलनों में हमारे परिवार के सदस्यों ने सक्रिय भाग लिया। हमें अपने मौलिक विचारों के कारण बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया गया जिसके कारण हमें और भी स्वतन्त्रता मिल गयी।"

यह था कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का परिवार जिस पर समय की गति-विधियों और तत्कालीन आन्दोलनों का गहरा

प्रभाव पड़ा और यह प्रभाव बहुमुखी एवं कई महान व्यक्तित्वों का था। कवि रवीन्द्र इस प्रकार के पारिवारिक वातावरण में उत्पन्न होने के कारण सौभाग्यशाली थे। इस प्रकार के सांस्कृतक, साहित्यिक, राजनैतिक एवं धार्मिक वातावरण में उनका पालन-पोषण हुआ।

४

प्रारम्भिक प्रभाव

हर नवजात शिशु के लिए प्रारम्भिक वर्ष विशेष महत्व रखते हैं। यही समय होता है जब बच्चे की रुचियों और प्रवृतियों को इच्छानुसार दिशान्तरित किया जा सकता है। बच्चा अपने निकट के वातावरण, घर की अवस्था, माता-पिता के रहन-सहन, मित्रों के मेल-मिलाप और स्कूल की शिक्षा से बहुत प्रभावित होता है। बच्चा जब संसार में आता है तो उसके लिए कोई भी वस्तु अच्छी या बुरी नहीं होती। उसके लिए सब-कुछ समान है। वह जो-कुछ देखता है, वही करता है। उसे जो कुछ सिखाया जाता है, वही सीखता है। उसके लिए जीवन का हर मोड़ नया है—एक नूतन पृष्ठ है। उसे इस बात का ज्ञान नहीं कि अगले मोड़ पर क्या है—किस ओर मुड़ना है।

इसी प्रकार बालक रवीन्द्र अपने बाल्यकाल में घर के वातावरण एवं परिस्थितियों से बहुत प्रभावित हुआ।

उसका बचपन अनोखा और निराला था, अपनी आयु के अन्य बच्चों से भिन्न ! जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बालक रवि की देखभाल घर के नौकर करते थे । इनके कठोर और अनुशासनात्मक व्यवहार से वह बहुत दुखी हुए। नौकर उसे घर से बाहर नहीं निकलने देते थे, किन्तु बालक रवि का मन घर में बिल्कुल नहीं रमता था । वह हमेशा खिड़की के पास खड़ा बाहर झाँकता रहता और बाहर को खुली दुनिया को देखता रहता । वह पक्षियों की भान्ति उड़ना चाहता था, वनों और वेलों में भटकना चाहता था परन्तु वह यह सब नहीं कर सकता था । उस पर प्रतिबंध थे । इन सब घटनाओं का उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा । उसकी शिशु-बुद्धि ने सोचा कि शायद मनुष्य अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता। उस पर प्रतिबंध और बन्धन है—वह मुक्त पक्षियों की तरह नहीं उड़ सकता ।

कवि का परिवार संगीतकारों, साहित्यकारों और कलाकारों का परिवार था । उसके पाँचवें भाई ज्योतरिन्द्र नाथ बालक रवि के साथ विचारों का आदान-प्रदान करते और उसकी रुचियों को अपने ढँग के अनुसार दिशान्तरित करने का प्रयत्न करते । यद्यपि दोनों की आयु में बहुत अन्तर था, तदापि बालक रवि उनकी संगति में प्रसन्न रहता। इस भाई ने रवीन्द्र को यथेष्ट स्वतंत्रता दे रखो थी, जो उसके लिए अत्यावश्यक थी । एक बड़े परिवार का नगण्य-सा सदस्य होने के कारण रवीन्द्र को बहुत कम स्वतंत्रता मिल सकती थी । इसलिए उसके साथ रवि की संकोचशीलता दूर हुई और उनकी गौण रहने की प्रवृति को हटाया

जा सका। इसी भाई ने रवीन्द्र को पढ़ना-लिखना सिखाया और गीत-संगीत की प्रारम्भिक प्रेरणा दी। वह कोई-न-कोई वाद्य-संगीत बजाते रहते और बालक रवीद्र अन्तर्ध्यान हो सुनता रहता।

इसके अतिरिक्त कवि की एक भाभी भी साहित्यानुरागिनी थी। उसकी पुस्तकें पढ़ने में बहुत रुचि थी। वह साहित्यकारों को सम्मानित करती रहती। उस समय बँगाल में एक पत्र 'आर्य-दर्शन' प्रकाशित होता था। उसमें कवि चक्रवर्ती के गीत 'बिलवा मंगल' के उपनाम से छपते थे। कवि की भाभी उसे ये गीत पढ़ कर सुनाया करती। भाभी ने एक बार कवि चक्रवर्ती को घर में आमन्त्रित भी किया। इस प्रकार रवि की एक महान कवि से भेंट हुई। इस भेंट से रवि के मन में पहली बार एक नूतन इच्छा का अंकुर फूटा कि वह भी उसी प्रकार एक बने और उसकी कविताएं भी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हों।

कवि ने अपने परिवार से राष्ट्रीयता के बहुत-से गुण ग्रहण किये। कवि के पिता राजा राममोहन राय के घनिष्ट मित्र थे और उन्होंने ब्रह्म समाज के आन्दोलन में बढ़ चढ़ कर सक्रिय भाग लिया। राजा राममोहन राय हमारे देश के महान-समाज सेवी थे, जिन्होंने समाज में कुरीतियों को दूर करते हुए कई लोगों को अपना विरोधी बना लिया। कवि ने समाज सेवा का गुण राजा राममोहन से अपने पिता के माध्यम से ग्रहण किया।

कवि के बाल्यकाल में उसके परिवार का जीवन कोई ऐश्वयमय नहीं रहा था। पहले वाला वैभव अब नहीं था, जैसे कि कवि ने स्वयँ एक स्थान पर लिखा है—"घोड़ों

की घुड़शाला नहीं थी । सो घोड़े को बाहर घास-फूस की झोंपड़ी में बांध दिया जाता ।" कवि ने निर्धनता चाहे न ही देखी हो, परन्तु उसके पास पैसों का अभाव ही रहता था। उसे जो कुछ नौकरो से मिल जाता, उसी पर निर्वाह करना पड़ता और उसी में सन्तुष्ट रहना पड़ता । इसका भी कवि के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा ।

रवि को जब स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया तो वहां पढ़ने में उसका मन बिल्कुल न रमा । एक तो कवि के विचारानुसार बच्चे की शिक्षा ठीक ढँग से केवल मातृ भाषा में ही हो सकती है और कोई भी बच्चा अंग्रेजी में विद्या रुचि से प्राप्त नहीं कर सकता । बालक रवि सोचता कि विदेशी भाषा में शिक्षा प्राप्त करके वह अपने देश और देश-वासियों को कदाचित सेवा नहीं कर सकेगा । वह बचपन में ही सोचता कि लोग अपनी मातृ-भाषा छोड़ कर दूसरी भाषाएँ क्यों पढ़ते हैं। इसका कवि के मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसे अपने समय की स्कूली-शिक्षा पसद न आयी और उसकी रुचि की इसी प्रतिक्रिया से बाद में 'शान्तिनिकेतन' का जन्म हुआ। कालान्तर में विश्वभारती (शान्ति-निकेन) एक अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में परिणत हो गयी।

बचपन में रवीन्द्रनाथ को बंगाल का ग्रामीण जीवन देखने का बड़ा चाव था। वह देखना चाहता था कि देश का ग्रामीण कैसे जीवन व्यतीत करता है। रवीन्द्र ने स्वयं लिखा है-'मेरी बंगाली ग्राम देखने की बड़ी इच्छा थी। मैं वहां की गलियां, कच्चे घर, घास-फूस की झोंपड़ियां, ताल तलैयां, नहाने के घाट, क्रीड़ा-स्थल, पर्व-त्यौहार देखना चाहता था। मैं वह

सब कुछ प्रत्यक्ष देखना चाहता था, जो मैं प्रायः स्वप्न में देखा करता था। ये चीजें देख कर मैं बहुत पुलकित हुआ।"
रवीन्द्र ने बचपन से ग्रामों में गरीबी, अशिक्षा और अज्ञानता देखी और बहुत दुखी हुआ। कवि को देख कर आश्चर्य हुआ कि कैसे विदेशी शासन में कानून और शांति के नाम पर लूट मची हुई है। उसने सोचा कि वह ग्राम-वासियों के लिए कुछ कर सके, उनका जीवन सुधारे, उन्हें नव-जीवन की स्फूर्ति दे। वे भी जीने का अधिकार रखते हैं। वे भी अपने पांव पर खड़े हो सकते हैं। कवि की इसी भावना से 'श्री निकेतन' नामक संस्था का जन्म हुआ, जो शांति-निकेतन का एक भाग थी। उसमें ग्राम-विकास का एक विभाग खोल गया ताकि पिछड़े हुए लोगों को विकास के पथ पर अग्रसर किया जा सके। ये थे रवीन्द्रनाथ पर पड़े प्रारम्भिक प्रभाव जिन्होंने बाद में कवि के जीवन को एक नये सांचे में ढाला और उसे एक एक नई दिशा दी।

५

कवि का बचपन

१८६७ से १८७८

('कवि' कहानी प्रकाशित होने तक)

बालक रवि बड़ा हो रहा था और अब वह ६-७ वर्ष का हो गया। यह समय है जब बच्चे के माता-पिता उसकी शिक्षा-दीक्षा की ओर ध्यान देते हैं। उन्हें चिता होने लगती है कि बच्चे के पढ़ने-लिखने का कोई प्रबन्ध किया जाय। बालक रवीन्द्र को भी स्कूल भेजने की तैयारियां होने लगीं ताकि वह भी पढ़-लिख कर अपने अन्य भाइयों की तरह आई० सी० एस० अफसर या कोई 'बारिस्टर' बन सके। वह अपने वंश का नाम उज्ज्वल करे और लोगों की दृष्टि में सन्मान बढ़ाये।

यही कुछ सोचते-सोचते बालक रवि की शिक्षा आरम्भ

हुई। घर में ही एक अध्यापक नियुक्त कर दिया गया ताकि प्रारम्भिक शिक्षा वह घर में ही प्राप्त कर सके और सियाना होकर ही स्कूल जाय। रवि ने पहली पुस्तक ईश्वर चन्द्र विद्या सागर रचित 'वर्षा परिचय' आरम्भ की। वह पढ़ता गया और एक दिन जब उसने ये अक्षर पढ़े – "वर्षा होती है, पत्ता हिलता है" तो बालक का ध्यान इतनी छोटी अवस्था में भी उस ओर आकर्षित हुआ।" इस छंद और लय का मेल उसे इतना भाया कि आजीवन यह भूल न सका। उसने सोचा होगा कि शायद यही कविता है, जब शब्द समाप्त हो जाते हैं, परन्तु वर्णन नहीं रुकता।

बालक शीघ्र ही पढ़ाई से उकता गया और वह दूसरे विचारों में ही लीन रहने लगा-"पढ़ते-पढ़ते पहले मैं जम्हाई लेने लगता और बाद मुझे नींद आ जाती। मैं आंखें मलने लगता, क्योंकि मुझे बार-बार पाठ सुनाना पढ़ता था। रात के नौ बजे मुझे भरी आंखों में छुट्टी मिलती।"

बालक रवि की उत्कट इच्छा थी कि वह भी स्कूल जाकर पढ़े और उसे भी साथियों के साथ खेलने-कूदने का अवसर मिले। वह अन्य विद्यार्थियों के सम्पर्क में आये और बाहर की दुनिया का अवलोकन करे। मुझे अच्छी तरह याद है, मेरा स्कूल का जीवन कब प्रारम्भ हुआ। एक दिन मैंने अपने बड़े भाई और भाँजी सत्या को स्कूल जाते देखा। वे मुझे पीछे छोड़ गये—शायद मैं स्कूल जाने के योग्य नहीं था। अब तक न मैं कभी घोड़ागाड़ी में बैठा था और न ही कभी घर से बाहर निकला था। जब संध्या को सत्या घर लौटी तो उसने मुझे रास्ते की देखी-सुनी बातें सुनायीं। मैंने अनुभव किया कि अब मैं घर में नहीं रह सकता। मास्टर जी को इस बात

का पता चला तो उन्होंने मेरे मुंह पर एक तमाँचा रखते हुए कहा—"आज तू स्कूल जाने के लिए रो रहा है, तो बाद में इससे भी अधिक स्कूल से निकलने के लिए रोएगा।" मैंने अपने जीवन में कोई भविष्यवाणी इस प्रकार सच्ची होती कभी न देखा।"

"मेरे रोने पर मुझे समय से पहले ही ओरिएंटल सैमीनरी में दाखिल करवा दिया गया। मैंने वहाँ क्या सीखा—मैं नहीं जानता। परन्तु विद्यार्थियों को दण्ड देने का एक निराला ढंग मुझे अब तक याद है। जो बालक अपना पाठ नहीं सुना सकता था, उसके हाथ ऊपर उठवा कर उसे बैंच पर खड़ा कर दिया जाता और फैले हुए हाथों पर ज़ोर-ज़ोर से स्लेटें मारी जातीं। यह तो दार्शनिक था मनोवैज्ञानिक ही बता सकते हैं कि इस प्रकार बालक कैसे जल्दी पाठ याद कर सकता है।" इसका बालक रवि पर बहुत प्रभाव पड़ा। वह घर आकर नकली विद्यार्थी बना कर इन बातों का अभिनय करता। थोड़े ही समय के बाद बालक ने स्कूल जाना छोड़ दिया। वहाँ उसका मन न रमा और वह अधिक पढ़ना-लिखना भी न सीख सका।

अब बालक रवि सातवें वर्ष में ही था कि उसे नार्मल स्कूल में दाखिल कराया गया। यह स्कूल कलकत्ता का सर्वोत्तम स्कूल था और शिक्षा अंग्रेजो ढंग से अंग्रेजी भाषा में दी जाती थी। रवि इस स्कूल में काफी समय तक जाता रहा। परन्तु बंगाली बच्चे अंग्रेजी में कैसे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं? नार्मल स्कूल के संस्मरणों के बारे में कवि लिखते हैं—"श्रेणियां शुरू होने से पूर्व विद्यार्थियों को गैलरियों में बैठा दिया जाता जहां वे गीत पढ़ते। शायद यह सब कुछ उनके मनोविनोद

के लिए होता । परन्तु गीत अंग्रेजी के और धुनें विदेशी हुआ करतीं । इसलिए हमारी समझ में न आता कि क्या गा रहे हैं और न ही इस प्रकार गा कर कोई प्रसन्नता होती । सभी अध्यापकों में से मुझे केवल एक याद है, जिसकी भाषा इतनी गन्दी और इतनी गालियां देता था कि मैंने उसके प्रश्नों का उत्तर देना बंद कर दिया । वर्ष भर उसकी कक्षा में चुपचाप बैठा रहा । जब दूसरे विद्यार्थी काम में व्यस्त होते तो मुझे किसी गम्भीर समस्या का समाधान ढूंढ़ने के लिए छोड़ दिया जाता ।" कवि यद्यपि छोटा-सा बच्चा ही था तदापि इतनी गम्भीर समस्याओं पर चिन्तन करता कि लोग देख कर हैरान रह जाते ।

रवि पढ़ने में बड़ा सचेत था। वह अच्छा पढ़ सकता था । शेष विद्यार्थियों से अधिक अंक प्राप्त कर सकता था । पढ़ाई में उनका मुकाबला कर सकता था, केवल उसकी इच्छा थी कि उसकी शिक्षा-दीक्षा मातृ-भाषा में होनी चाहिए और ठीक विधि से दी गयी शिक्षा ही बच्चे को ठीक मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे सकती है । कवि कहते हैं कि "वर्ष के अंत में हमारी मातृ-भाषा की परीक्षा हुई । मैंने सभी विद्यार्थियों से अधिक अंक प्राप्त किये । अध्यापक ने स्कूल के प्रबन्धकों से शिकायत की कि मेरा लिहाज़ किया गया है । मेरी परीक्षा भी दूसरी बार ली गयी और स्कूल-सुपरिटैंडट परीक्षा के समय साथ बिठाया गया । इस बार भी मैं श्रेणी में सर्व प्रथम था ।"

बालक रवि आठ वर्ष का हो गया था । उसका चिन्तन गहरा होता गया और विचार गम्भीर। उसकी चिन्तन-शक्ति में एक परिवर्तन आया और उसने एक छोटी-सी कविता लिख डाली । यह कविता उसने अपने एक चचेरे भाई के आग्रह

पर लिखी। उसने बालक रवि को बताया कि कविता लिखना एक सरल काम है। शब्दों को जोड़-जोड़ कर इकट्ठा कर लो। बस कविता बन गई। बालक ने कविता लिख तो ली, परन्तु वह मन-ही-मन सोचता रहा कि क्या यह कविता है? क्या तुकबंदी को ही कविता कहते हैं? उसका मन न माना, परन्तु उसने कापी-पेंसिल लेकर तुकान्त मिलाने शुरू कर दिये। जब कभी घर का बड़ा प्राणी रवि की यह तुकें सुनता तो हंसी में बात उड़ा देता। पर मन ही मन वे अवश्य सोचते होंगे कि रवि में लिखने की सामर्थ्य अवश्य है।

बालक की शिक्षा की ओर पूरा ध्यान दिया जा रहा था ताकि घर वालों की मनोकामना पूर्ण हो और वह पढ़ लिख कर महान व्यक्ति बने।

बालक रवि का दिन प्रातः ही शुरू हो जाता। मुर्गे की बांग के साथ उसे जगा दिया जाता। पहला काम जो उसे उठते ही करना पड़ता था, वह कुश्ती सीखना था। उसकी मांस-पेशियों को पुष्ठ बनाने के लिए उसे कुश्ती लड़ना सिखाया जाता था ताकि बच्चा स्वस्थ, बलिष्ठ और बलवान बने। रवि कुश्ती एक प्रसिद्ध काले पहलवान से सीखता। वह कुश्ती से निवृत होता तो स्नान के लिए जुट जाता। स्नानादि से निवृत होने के बाद बालक को हड्डियों के सम्बन्ध में जानकारी देने 'डाक्टरी' का एक विद्यार्थी आ जाता। अस्थि-पिंजर उसके सामने रख के उसे प्रत्येक हड्डी की उपयोगिता और उसके नाम आदि के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती। ये दोनों काम प्रातः सात बजे तक समाप्त हो जाते। तब गणित का अध्यापक आ जाता और रवि स्लेट पकड़ कर गणित के प्रश्न हल करना शुरू कर देता। इसके बाद बंगला और संस्कृत

की पढ़ाई होती। बालक को नए-नए पाठ दिये जाते और यह आशा की जाती कि हर रोज़ एक नया पाठ याद करके रखेगा। पढ़ाई पूरे ज़ोरों से चलती रही। ठीक नौ बजे उसे जलपान मिल जाता जिसके बाद रवि स्कूल जाने की तैयारी शुरू कर देता।

रवि लगभग सारा दिन स्कूल में रहता। घर लौटता तो व्यायाम करवाने वाला मास्टर आगे तैयार मिलता। एक एक घंटा तक स्तम्बों पर चढ़-चढ़ कर कसरत होती। बालक थक कर चूर हो जाता, गिर पड़ता और रुआँसा हो जाता।

यह उसके मस्तिष्क पर कोई कम बोझ नहीं था कि प्रातःकाल से लेकर संध्या तक एक नन्हीं सी जान को अवकाश न मिले।

व्यायाम का मास्टर गया तो ड्राइंग मास्टर आ गया और फिर अंग्रेजी का। वह पढ़ाता रहता और बालक ऊंघता रहता, अपना सिर हिलाता रहता। उसकी समझ में कुछ न आता। पढ़ते-पढ़ते ही बालक सो जाता। रवि अत्यन्त दुःखी था। वह सोचता - क्या यही पढ़ाई है ? उसे इतना कष्ट क्यों दिया जाता इतना कुछ पढ़ कर वह क्या बन जायगा। इतनी कठिन पढ़ाई का लाभ क्या होगा ? क्या घर के सभी लोगों की शिक्षा इसी प्रकार हुई होगी ? क्या शिक्षा वास्तव में ही इतनी कठिन है ? बालक रवि सोचते-सोचते सो जाता। और फिर दूसरे दिन पहले की तरह दिन निकलता। कवि ने ये मनोभाव इस प्रकार प्रकट किये हैं–' पुस्तकें यह बताती हैं कि मनुष्य का प्रमुख आविष्कार आग है। मैं इसको मानता हूं, परन्तु मैं यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि

पक्षी कितने भाग्यशाली हैं, जिन्हें रात को अपने बच्चों के लिए लैम्प नहीं जलाने पड़ते । वह अपनी शिक्षा प्रातः ही समाप्त कर लेते हैं और कितनी अच्छी तरह वे सीख जाते हैं ।"

समय बीतता गया । समय अपनी गति से दौड़ता है । वह रोके नहीं रुकता, उसे तो बीतना है । समय के साथ रवि की तुकान्तों वाली कापी भी भरती गयी—उसके पृष्ठ भी काले होते गये । कविताएं उस पर लिखी जाती रहीं । इतनी छोटी आयु में तुकबन्दी करना भी कोई सुगम बात नहीं । घर के लोग बाग और पड़ोसी चकित थे । स्कूल में अध्यापक आश्चर्या चकित चुंधिया गये । एक दिन अध्यापक ने बालक को किसी विशेष विषय पर कविता लिखने और बोलने के लिए कहा । रवि ने कविता लिखी और बोली । कविता बहुत पसँद की गयी—उसकी प्रशंसा की गयी । अध्यापक प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने विद्यार्थी की प्रतिभा देखी और मन-ही-मन वृद्धि होती प्रतीत हुई । परन्तु संसार के नियमानुसार प्रशंसा बाद में और ईष्या पहले । सभी ईर्ष्या से जल गये । छोटा-सा बालक इतनी सुन्दर कविता कैसे लिख सकता है ? यह तो चुराई हुई कविता है । किसी पत्रिका में से चुराई गयी है ।

अब बालक रवि बड़ा हो गया—लगभग बारह वर्षों का हिन्दु धर्म के अनुसार बच्चे को जनेऊ पहनाता आवश्यक था । अतएव रवि के भाई सुमेद्र, भतीजे सत्य और रवि को जनेऊँ पहनाने की रस्म हुई । तोनों बालकों के सिर मुँडवा दिये गये, कानों में साने कांटे डाले गये और तीन दिन उनको भीतर रख के गायत्री का पाठ सिखाया गया । तीनों मिल कर आपस में हँसी-मजाक करते, एक दूसरे के कांटे खींचते

और ऊधम मचाते । रवि को तो मानो एक नई खेल मिल गयी थी, परन्तु गायत्री के पाठ ने रवि को बहुत प्रभावित किया। इस रस के सम्बन्ध में रवि ने लिखा है—"हमारे घुटे हुए सिर लोगों के हास-विनोद का कारण बन गये थे। मुझे हर वक्त इस बात की चिन्ता लगी रहती कि बाहर निकलूंगा तो लोग क्या कहेंगे ?"

अब रवि को जब 'बंगाल एकेडमी' में पढ़ने के लिए भेजा गया तो उसके अंग्रेजी सहपाठी उसका घुटा सिर देख कर हैरान होते और रवि को छेड़ते रहते। रवि ने कानों से कांटे तो उतार दिये, किन्तु बाल बढ़ाना उसके वश का रोग न था। वह असमंजस में था कि करे तो क्या न करे। यह उसकी समझ के बाहर था। सहपाठी उसे बहुत तंग करते रहे।

एक दिन उसके पिता ने उसे बुला कर अप्रत्याशित रूप से पूछा—"क्या तुम मेरे साथ हिमालय-यात्रा पर जाने के लिए तैयार हो ?" अन्धे को क्या चाहिए दो आंखें। बालकरवि का मन आह्लादित हो उठा और उसने तत्क्षण 'हां' कह दी। 'हां' शब्द उसने इतने ऊंचे स्वर से कहा कि सारा कमरा गूंज से भर उठा।

हिमालय-यात्रा की तैयारियां प्रारम्भ हो गयीं। सामान बाँधा जाने लगा। सम्बन्धियों से मेल-मिलाप होने लगा। हिसाब-किताब चुकाया गया। महर्षि ने परिवार के सारे सदस्यों को बुलाकर सामूहिक रूप से प्रार्थना की। यात्रा आरम्भ हुई, रवि ने घर के बड़ों की चरण-धूलि ली और घोड़ागाड़ी में जा बैठा। आज रवि ने सुन्दर और नए कपड़े पहने। वह नवयुवक और सुन्दर प्रतीत हो रहा था मानो

उसका विवाह होने लगा हो। सिर पर सोने के तारों वाली वैलवेट की टोपी पहन कर तो बालक राजकुमार लगने लगा।

कलकत्ता से चल कर महर्षि और रवि सर्वप्रथम बोलपुर में ठहरे, जहां बाद में शान्तिनिकेतन की स्थापना हुई। साँझ वेला में दोनों बोलपुर पहुंचे। रास्ते में गाड़ी का सफर रवि को बहुत रुचिकर प्रतीत हुआ-"गाड़ी चलती गयी, बड़े-बड़े खेत, हरे-हरे पेड़, प्यारे-प्यारे भारतीय ग्राम, मेरे आगे सपने की भान्ति गुज़रते गये। बोलपुर बहुत सुन्दर और रमणीक स्थान है। जब मैं घोड़ागाडी से बाहर निकला तो मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न था। मुझे किसी ने बताया कि बोलपुर की एक विशेषता है, जो अन्य कहीं नहीं मिलती वह संसार में एक अनोखी बात है। यहां एक मार्ग है जो बड़ी इमारतों से लेकर नौकरों के घरों तक जाता है, जिसके ऊपर कोई छत नहीं, परन्तु वहाँ कभी धूप या वर्षा नहीं पड़ती, जो भी चाहे इस मार्ग से किसी भी मौसम में गुज़र जाय। मैंने उस मार्ग को ढूंढ़ना आरम्भ कर दिया। अतीव आश्चर्य से ढूँढ़ता रहा, परन्तु मुझे वह मार्ग न मिल सका।"

रवि जो अब तक महानगर में ही रहता आया था, जब बोलपुर पहुंचा तो धान के लहराते खेत और संसार के दुख सुख से दूर अपने पशुओं को चराते किसानों को देख वह बहुत खुश हुआ। उसकी इच्छा हुई कि वह हमेशा यहां रहे। एक और बात जो उसे वहां नई लगी, वह नौकरों के शासन का न होना। वहाँ पूर्ण स्वतंत्रता थी, कोई किसी को रोकने वाला नहीं था। हर कोई अपना काम स्वेच्छा से करता।

बोलपुर आकर महर्षि को भी खजूर के निकट चाटम

वृक्ष के नीचे उपासना करने का स्थान मिल गया'। एक दिन वह वहां उपासना के लिए बैठे तो उनके मन में विचार आया कि इस प्रकार का स्थान तो हमेशा के लिए उनका हो जाना चाहिए ताकि उनकी पूजा-उपासना में कोई विघ्न न पड़े। इसके बाद शीघ्र ही उन्होंने वह स्थान खरीद लिया और वहाँ एक छोटा सा मकान और बगिया बनवा दी।

महर्षि और रवि कुछ दिन वहां ठहरे। एक दिन वहीं खजूर के वृक्षों के नीचे बैठकर रवि ने अपना पहला इतिहासिक काव्य–नाटक लिखा, जो बाद में कहीं खो गया और लोग उसे पढ़ कर अपने विचार प्रकट न कर सके। इस काव्य नाटक में पृथ्वीराज की पराजय का वर्णन था।

बोलपुर से चलकर महर्षि कई स्थानों से होते हुए पंजाब के प्रसिद्ध नगर अमृतसर में पहुंचे, जहां वे एक मास तक ठहरे। वहां उनका समय बहुत सुन्दर ढंग से व्यतीत हुआ। हररोज वे स्वर्ण मन्दिर जाते और कितनी देर तक बैठे कीर्तन सुनते रहते। कई बार महर्षि स्वयं भी कीर्तन करने लग पड़ते और इसका लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ता। बालक रवि तो यह देख कर हैरान रह जाता। इस यात्रा के सम्बन्ध में कवि ने बाद में लिखा—"अमतसर का हर मन्दिर मुझे सपने की भांति याद आता हैं। वहाँ हमेशा शब्दकीर्तन होता रहता। मेरे पिता जी कई श्रद्धालुओं में बैठे-बैठे स्वयं सुर मिलाकर शब्द पढ़ने शुरू कर देते। एक परदेशी के मुख से शब्द सुन कर लोगों का उत्साह बढ़ जाता और वे पिता जी का बहुत आदर-सत्कार करते। घर लौटते समय हमें बताशे और हलुआ मिलता।

कई बार महर्षि स्वर्ण मन्दिर में कीर्तन करने वालों को

घर पर भी आमन्त्रित करते और उनसे 'शब्द' सुनते। वह उन्हें भेंट-स्वरूप काफी धन देते। धीरे-धीरे यह बात सारे नगर में फैल गयी और प्रतिदिन कोई-न-कोई कीर्तन करने वाला उनके द्वार पर खड़ा होता।

महर्षि दरबार साहब की कीर्तन-प्रणाली और अखंड पाठ की पद्धति से बहुत प्रभावित हुए और परवर्ती काल में उन्होंने शांतिनिकेतन में उस पद्धति में कुछ परिवर्तन करके ब्रह्म-धर्म-ग्रंथ पाठ एवं ब्रह्म संगीत की व्यवस्था की थी।

अमृतसर से पिता-पुत्र डलहौजी आये जहां उन्होंने बरकोटे की सुन्दर पहाड़ी पर एक बंगला लेकर रहना शुरू कर दिया। बालक रवीन्द्र हर रोज बाहर पहाड़ों पर घूमने निकल जाता और कितनी देर तक वहां स्वाधीन भाव से घूमता रहता और प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करता। "मैं पहाड़ों पर घूम रहा था कि पहाड़ों की ढलानों पर फैली वनश्री के सौन्दर्य ने मेरे मन को मोह लिया। सूर्यास्त की लालिमा में लहराती हुई फसलें यूं प्रतीत हो रही थीं जैसे कई प्रकार के रंगों में प्रकृति ने सौन्दर्य की अग्नि शिखाएं प्रज्वलित कर दी हों। यहाँ पहाड़-निवासियों से रवि ने कई नए राग और स्वर–ध्वनियाँ सीखी। बालक रवि शिखरों पर चढ़ कर ऊंचे स्वर से संगीत ध्वनियां निकालता रहता।

बालक रवि अपने पिता से संस्कृत, अंग्रेज़ी और बंगाली साहित्य का अध्ययन करता। रात को महर्षि उससे गीत सुनते। बाद में तारों के क्षीण प्रकाश में महर्षि उसे ज्योतिष-विद्या की शिक्षा देते। अब रवि के पास रुपये भी होते। सारा खर्च वह स्वयं करता और उसका हिसाब–किताब रखता। यह इसलिए किया गया कि रवि अपने उतरदायित्व को समझे

और बड़ा होकर हिसाब-किताब में कोई गल्ती न करे।

रवि ज्योतिष-विद्या की ओर विशेष ध्यान देने लग पड़ा और इस सम्बन्ध में उसने जो कुछ अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ा और अपने पिता से सुना, उसके आधार पर उसने ज्योतिष-विद्या पर एक लेख लिख डाला जो बाद में उचित काट छांट के बाद एक बंगला पत्रिका में प्रकाशित हुआ। यह सम्भवतः रवीन्द्र की सर्वप्रथम मुद्रित रचना थी यद्यपि उसके साथ रवि का नाम नहीं छपा था। डलहौजी में उन्होंने अच्छा समय व्यतीत किया और वहां से जाते समय रवि का मन प्रसन्न नहीं था। उसने लिखा—"हमें ऐसे स्थान इतनी जल्दी क्यों छोड़ने पड़ते हैं, मेरे मन ने पुकारा—हम यहां हमेशा के लिए क्यों नहीं रह सकते ?

इस प्रकार बालक रवि ने घर और स्कूल से दूर महर्षि के साथ जो चार मास व्यतीत किये, वे उसके बचपन के सब से अधिक खुशी के दिन थे। ये दिन उसे आजीवन याद आते रहे। इसके बाद उसकी नई आशाओं और आकाँक्षाओं का जन्म हुआ, नई भावनाएँ जागीं और उसकी चिन्तन-शक्ति में समृद्धि हुई। उसे अनुभव हुआ कि घर की चारदीवारी के बाहर भी कुछ है। यह जीवन सादा परन्तु कितना मधुर है। इस जीवन में कितना रस है ! काश ! रवि को पहले भी यही जीवन व्यतीत करने को उपलब्ध होता !

हिमालय-यात्रा से लौट कर रवि ने किशोरावस्था में पदार्पण किया। यह वह अवस्था है जब वह बचपन पार कर चुका था, किन्तु युवक अभी बना नहीं था। यह वह अवस्था जब अर्ध युवक गलतियाँ करते हैं। यह वह समय है जब कुछ नहीं सूझता कि कौन-सा जीवन-मार्ग अपनाना है। इस

अवस्था में कीं गयी भूल का परिणाम आजीवन भुगतना पड़ता है।

रवि घर लौटा तो वहाँ एक परिवर्तन देखा। घर का चित्र ही बदल चुका था। वहाँ अब नौकरों का शासन नहीं था। रवि को अब नौकर नहीं रोक सकते थे। उसे उनके आदेशानुसार काम नहीं करना पड़ता था, उनके हाथ से भोजन नहीं करना पड़ता था। अब वह भीतर के कमरों में भी जा सकता था। कोई उसे कुछ नहीं कह सकता था। अब माँ उसे स्वयँ बुलाती थी। वह बहुत प्रसन्न होती जब रवि उसकी सहेलियों को अपनी हिमालय-यात्रा की कहानियां सुनाता। वह यात्रा की रोचक घटनाएं और अपने कारनामे बताता और मीठी-मीठी बातें करके सब का मन मोह लेता। सभी लोग रवि की कहानियां सुनने के लिए उत्सुक रहते। अब वह अपनी मां की धूप में होनी वाली गोष्ठियों का केन्द्र बन गया था। वह वहाँ कविताएं सुनाता, चुटकलों की फुलझड़ी छोड़ता, परन्तु अधिक प्रशंसा तब होती जब वह बाल्मीकि रामायण का संस्कृत में सस्वर पाठ करता। सुनने वाले भूरि-भूरि प्रशंसा कर उठते। उसकी मां कहती-"प्रिय रवि, रामायण सस्वर पढ़ कर सुनाओ!"

रवि दिन भर यही कुछ करता रहता। घर में बड़ों का मनोविनोद होता रहता। वे उसकी मीठी-मीठी बातें सुनते रहते, वह सुनाता रहता। उसने समझा, अब उसे स्कूल जाने से मुक्ति मिली। स्कूल जाकर करना भी क्या है? जितना उसने पढ़ लिया है, यथेष्ठ है।

अब अधिक पढ़ने की क्या आवश्यकता है? और पढ़ कर करना भी क्या है? क्या उसे अफसर या 'बैरिस्टर' बनना

है ?—परन्तु रवि की बात किसी ने न सुनी। उसके विचारों की ओर तनिक भी ध्यान न दिया। उसे पुन: बंगाल एकाडमी प्रविष्ट करा दिया गया। दो अध्यापक संस्कृत एवं बंगला पढ़ाने के लिए घर पर नियुक्त कर दिये गये। घर वाले चाहते थे कि रवि पढ़-लिख कर कुछ बन जाय। वह एक महान कवि बने। परन्तु अध्यापकों से रवि पढ़ने से रहा। वे जो कुछ भी पढ़ाते, वह कदाचित् ध्यान न देता। अपने विचारों में ही लीन रहता। उसका पढ़ने में मन न लग सका। वह उदासीन होता गया। अध्यापकों ने इसका एक उपाय यह सोचा कि उसे किसी अंग्रेजी नाटक के कुछ अंश दे दिये जाते और उन्हें बँगला में अनूदित करने के लिए कहा जाता। उसे कमरे में बंद कर दिया जाता और दरवाजा तभी खुलता जब वह अपना कार्य समाप्त कर लेता। एक बार उसे शेक्सपीयर कृत नाटक मैकबेथ (Macbeth) का अनुवाद करने को कहा गया। रवीन्द्र ने उसका अनुवाद इतनी सफलता से किया कि अध्यापक चकित हो उठे।

स्कूल में रवि को कुछ नया और विचित्र-सा अनुभव होता जब वह देखता कि किस प्रकार बंगाली विद्यार्थियों के अँदर अंग्रेजी भाषा घोल कर डाली जा रही है। उसके लिए यह आश्चर्य और असमंजस की बात थी। यह क्यों हो रहा है? वह सोचता परन्तु समझ न सकता।

और फिर रवि का स्कूल बदला गया और उसे एक नये स्कूल 'सैंट जेवरीज़' में दाखिल कराया गया। रवि ने स्कूल जाना आरम्भ तो कर दिया परन्तु वहाँ भी उसका मन न रम सका। उसका चित पूर्ववत उदासीन और विह्वल रहा। वह अत्यन्त दुखी था। उसका सारा शरीर कांपता था।

उसने स्कूल जाने से इन्कार कर दिया। वह किसी भी क़ीमत पर स्कूल जाने को तैयार नहीं--उसने घोषणा कर दी। और फिर उसने वास्तव में ही स्कूल जाना छोड़ घर के बड़ों की आशा धूलि-धूसरित कर दी।

उन्हीं दिनों कलकत्ता में एक हिन्दु पर्व होता था। फ़रवरी १८७५ में रवि ने वहां एक कविता पढ़ कर सुनाई, जो लोगों ने बहुत पसंद की। बाद में यही कविता अंग्रेजी बंगला के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'अमृत बाज़ार पत्रिका' में प्रकाशित हुई। इसके बाद कवि ने जनसमूहों में कई बार अपनी कविताएं पढ़ कर सुनायीं।

आठ मार्च सन् १८७५ का दिन कवि के जीवन में एक दुर्भाग्यशाली दिन माना जायगा। उस दिन उसकी प्रिय माता का देहांत हो गया। यद्यपि इस दुखद घटना का कवि के मन पर कोई गहरा प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि माता की मृत्यु के उपरान्त कवि की भाभी ज्योतिरिन्द्रनाथ की पत्नी कादम्बरी देवी ने उससे अत्यधिक प्यार किया, परन्तु फिर भी मां का स्नेह कुछ और ही था। इस दुखद घटना का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है "अब हमारे घर में मृत्यु ने अपना विकराल मुँह दिखलाना शुरू कर दिया। इस से पूर्व मैंने अपने निकट कोई भी मृत्यु होती कभी नहीं देखी थी। मेरे माता जी कुछ देर से बीमार थे और हमें यह भी पता न लग सका कि उनकी मृत्यु हो गयी है, क्योंकि वह पृथक कमरे में सोते थे। जिस रात उनका प्राणाँत हुआ, उस रात मैं नीचे के कमरे में सोया था। आधी रात को बूढ़ी नर्स ठिठुरती हुई आई और जोर से रो-रो कर कहने लगी--'मेरे प्यारे बच्चो! तुम अपना सब कुछ खो

बैठे हो। मेरी भाभी ने उसे झिड़क कर लौटा दिया ताकि आधी रात को हमें गहरा आघात न पहुंचे। मैंने अधूरी एवं अस्फुट-सी बात सुनी थी, परन्तु मेरा मन डूबने लगा। मैं समझ न सका कि क्या हो गया है। प्रातःकाल जब मां की मृत्यु की दुखद सूचना दी गयी तब मुझे अनुभव हुआ कि रात क्या हो गया था।"

रवीन्द्र के बड़े भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ उससे बहुत स्नेह करते थे। अब वह उनको छत्रछाया में पलने लगा। वह उसे सियालदा साथ ले गये जहाँ उन्होंने बालक को घुड़सवारी और शेर का शिकार करना सिखाया।

रवि १४ वर्ष का हो गया और अब उसकी एक लम्बी कविता बनफ़ल जो लगभग १८०० पंक्तियों की थी, एक साहित्यिक पत्रिका 'ज्ञानांकुर' में प्रकाशित हुई। यह कविता बहुत ही पसंद की गई और कवि का नाम साहित्यिक क्षत्र में प्रसिद्धि प्राप्त करने लगा।

जनवरी सन् १८७७ को भारत के वाइसराय लार्ड लिटन ने दिल्ली में एक वैभवशाली दरबार किया। लोगों को अंग्रेजी राज्य की शक्ति दिखाने और उन्हें प्रभावित करने के लिए इस राज्य-दरबार में धन पानी की तरह बहाया गया और अंग्रेजी शासन की ठाठ-बाट का प्रमाण दिया गया। उसी समय बंगाल में अकाल पड़ा हुआ था। लोग भूख से दम तोड़ रहे थे। अन्न के एक-एक दाने के लिए आत्म-सम्मान बिक रहा था, यौवन लुट रहा था। कवि ने इस दयनीय अवस्था से प्रभावित होकर एक कविता लिखी जो उसने हिन्दु मेले में पढ़ कर सुनाई।

द्विजेन्द्रनाथ ने एक साहित्यिक-पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ

किया। उस पत्रिका में रवीन्द्र की रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। अब वह जो कुछ भी लिखता शीघ्र छप जाता। इन्हीं दिनों कवि ने पहली कहानी 'भिखारिन' नाटक 'रुद्रा चन्दा' कविता 'कवि कहानी' और 'भानु सिंह' गीत आदि प्रकाशित किये। अब रवि का नाम साहित्य-क्षेत्र में एक धूमकेतू बन गया था। उसका साहित्यिक जीवन 'भानु सिंह' की कविताओं के प्रकाशन से शुरू हुआ समझा जाता है। 'भानु सिंह' गीत पहली बार १८७७ में 'भारती' में प्रकाशित हुए। इन गीतों में कवि ने एक नवीनता को मुखर किया है और कोमल अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। ये गीत बहुत लोक-प्रिय हुए और वह कवि बन गया। "मैंने ब्रह्म समाज के पुस्तकालय में एक पुरानी पांडूलिपि देखी जिस में से मैंने एक पुराने वैष्णव कवि 'भानु सिंह' की कवितएँ नकल कर लीं और इन के साथ अपने गीतों को पढ़ कर सुनाया। मेरा मित्र वह गीत सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसे आश्चर्य हुआ और वह कहने लगा—"ये गीत सम्भवता विद्यापति या चंडीदास भी न लिख सकता। तुम मुझे ये गीत दे दो, मैं इन्हें प्रकाश बाबू को देकर प्रकाशित करवा दूं। मैंने इन गीतों की पांडुलिपि अपने मित्र को दे दी और कहा कि इस प्रकार के गीत विद्यापति या चँडीदास लिख सकता है कि नहीं। मित्र ने उत्तर दिया—"हां—हां ये कोई बुरे गीत नहीं। जब ये गीत 'भारती' में प्रकाशित हो रहे थे उन दिनों निशिकाँत जर्मनी में थे। उन्होंने भारतीय काव्य और अंग्रेज़ी गीति-काव्य के तुलनात्मक अध्ययन पर एक शोध-प्रबन्ध लिखा और 'भानुसिंघा' को एक पुराने कवि के नाते बहुत ऊंचा स्थान दिया। इस थीसिस पर उन्हें 'डाक्ट्रेट'

की उपाधि मिल गयी। 'कवि कहानी' कवि की पहली काव्य पुस्तक थी जो १८७८ में प्रकाशित हुई। यह १५८२ पंक्तियों की एक लम्बी कविता थी। पहले भाग में कवि ने अपने बचपन के दिनों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया। दूसरे भाग में कवि कुछ बड़ा हो गया है और उस जीवन की कुछ घटनाओं का चित्रण हैं।

रवि अब यौवनावस्था में पदार्पण कर रहा था। यद्यपि वह अपना समय अपनी साहित्यिक रुचियों के अनुसार व्यतीत कर रहा था, परन्तु तत्कालीन समाज में साहित्यकार की विशेष प्रतिष्ठा न होने के कारण महर्षि चाहते थे कि उसके लिए कोई सम्मानित काम ढूंढ़ा जाय। कवि के बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ ने परामर्श दिया कि रवि को उसके साथ इगंलैंड भेज दिया जाए जहां से वह बकालत पास कर के भारत आये और वकालत आरम्भ कर दे। उन दिनों भारत में इस व्यवसाय का बहुत सम्मान था। महर्षि को यह बात रुचिकर प्रतीत हुई और रवि को इंगलैंड भेजने का फैसला हो गया।

कवि पहले अपने भाई सत्येन्द्रनाथ के साथ अहमदाबाद पहुंचे। कवि को अहमदाबाद इस लिए भेजा गया कि वहाँ वह अपने भाई जो पहले इंगलैंड हो आया था, से अँग्रेजी रहन-सहन का ढंग सीख लेगा ताकि उसे वहाँ जाकर कोई कठिनाई न हो।

कवि अहमदाबाद में चार मास तक रहा। वहीं उसने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'क्षुधित पाषाण' लिखी, जिसका कथानक उसे वहीं मिला।

अहमदाबाद के अतिरिक्त रवि कुछ समय के लिए सत्ये-

द्रनाथ के एक मित्र के पास बम्बई में भी रहा, जहाँ उसकी लड़की ने रवि को विदेशी जीवन और रहन-सहन में निपुण बना दिया। अब वह इंगलैंड जाने के योग्य हो गया था। अब वह वहां जाकर अच्छा प्रभाव डाल सकता था। अब वह वहाँ विदेशी ढंग से रह सकता था।

६

कवि की यौवनावस्था

१८७८ से १९०१ तक

(शांतिनिकेतन तक)

सितम्बर १८७८ में कवि ने इंगलैंड जाने की सम्पूर्ण तैयारी कर ली। अब वह मानसिक रूप से वहाँ रहने के लिए तैयार था। उसने विदेश सम्बन्धी यथेष्ट जानकारी प्राप्त कर ली थी। अब उसे इस बात का भय नहीं था कि वहां जाकर वह लोगों के उपहास का पात्र बनेगा।

यह रवि की पहली विदेश यात्रा थी और घर से वह केवल दूसरी बार बाहर निकला था। पहली बार वह अपने पिता के साथ हिमालय-यात्रा को गया था और अब दूसरी बार विदेश जा रहा था। उसका मन उदास था। वह अपने प्रियजनों, मित्रों और सम्बन्धियों को छोड़ कर जा रहा था। इसके अतिरिक्त उसे एक और चिंता थी कि उसे अब फिर पढ़ना पड़ेगा और उसे स्कूल में भेजा जायगा, जिन्हें वह घृणा

करता है।

इंगलैंड से रवीन्द्रनाथ ने वहाँ के जीवन से सम्बन्धित विषय पर पत्र लिखे जो पहले 'भारती' में प्रकाशित हुए। ये पत्र विशेष महत्व रखते हैं।

लंडन से होकर कवि अपने भाई सत्येन्द्रनाथ के साथ ब्रिगंटन पहुंच गया, जहां उसकी देखभाल करने वाली उस की भाभी थी और मन बहलाने के लिए उनके बच्चे सुरेन और इन्दिरा थे, जिनकी आयु क्रमशः छः और पाँच वर्ष की थी।

वहां उसे एक 'पब्लिक स्कूल' में भर्ती करवा दिया गया, परन्तु वहाँ भी कवि एकाग्रता से न पढ़ सका। उसे फिर लंडन के एक 'होस्टल' में दाखिल करा दिया गया। वहां वह अकेलापन अनुभव करने लगा। उसका मन वहाँ भी न रम सका। एक अध्यापक लातीनी पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया। विचित्र प्रकृति का व्यक्ति था। जब उसे फ़ीस दी गयी तो कहने लगा--"मैं इसका अधिकारी नहीं। मैंने तुम्हारा समय ही नष्ट किया है।" बड़ी मुशिक्ल से उसे फीस दी गई।

इसके बाद कवि डेक्लन चला गया। वहां से उसकी भाभी का पत्र आया था कि वहाँ उन्होंने किराये का मकान ले रखा है। डेविन बहुत सुन्दर नगर हैं--उल्लास और उत्साह से परिपूर्ण, चारों तरफ रौनक, रमणीक प्राकृतिक दृष्य। वहां कवि ने एक कविता 'मग्नत्री' लिखी।

कवि लंडन लौट आया और लंडन विश्व-विद्याजय में दाखिल हो गया और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन करता रहा। वहाँ वह तीन मास तक रहा। इस बार उसे लंडन में

एक अच्छा साथी मिल गया था--डाक्टर स्काट। स्काट की पत्नी ने कवि को अपने पुत्रों की भान्ति रखा। उसे इतना स्नेह और वात्सल्य दिया जितना शायद उसे अपनी माँ से भी न मिला हो। उनकी लड़की ने कवि को अंग्रेजा गाना सिखाया।

अभी कवि का मन इंगलैंड में रमना शुरू हुआ ही था कि घर से भारत लौटने का सन्देश आ गया। उस समय कवि के मन की अवस्था क्या होगो ? परन्तु कवि लिखते है--"मुझे मेरे देश का प्रकाश, उसका आकाश चुपचाप ही बुला रहे हैं।

फरवरी १८८० में कवि १७ मास विदेश में रह कर अपने भाई और उसके परिवार के साथ विदेश से लौट आए। घर से पढ़ने गये थे, किंतु लौटे खाली हाथ। घर वालों ने बेरिस्टर बनने और डिग्रियां प्राप्त करने के लिए भेजा था किन्तु वह कुछ भी प्राप्त न कर सके। घर वाले निराश हुए।

विदेश में कवि ने एक काव्य-नाटक 'भग्न हृदय' लिखना प्रारम्भ किया था। वह अभा पूरा भी नहीं हुआ था कि भारत लौटना पड़ा। वह नाटक रवीन्द्र ने स्वदेश लौट कर ही पूर्ण किया। यह काव्य-नाटक बहुत प्रशंसित हुआ।

रवीन्द्र ने स्वदेश लौटते ही एक संगीत नाटक 'बालमीकि' प्रतिभा लिखा। नाटक रंगमंच के लिए लिखा गया था और जब अभिनीत हुआ तो बालमीकि का अभिनय उन्होने स्वयँ किया और कवि की भतीजी 'प्रतिभा' ने उस लड़की का अभिनय किया, जिसे डाकू बचाते हैं। यह नाटक बहुत सफल हुआ। अब रवीन्द्रनाथ नाटक-साहित्य में ख्याति प्राप्त करने लगे।

अब ज्योतिरिन्द्रनाथ और उनकी पत्नी कलकत्ता से

बाहर चले गये। रवीन्द्र उनके साथ न जा सके और वह पीछे एकाकी रह गये। वह उदास रहने लगे। घर के लोग उन्हें बेकार व्यक्ति समझने लगे। उनकी आत्मा दुःखी रहने लगी। इसी मानसिक अवस्था में उन्होंने कुछ गीत लिखे जो 'सांध्य संगीत' शीर्षक से प्रकाशित हुए। उन गीतों को पढ़ कर कहा जा सकता था कि रवीन्द्र एक महाकवि बनने वाले हैं। उसके एक अच्छा कवि बनने की सभी गण धीरे-धीरे सुखर हो रहे थे। कवि का सम्मान बढ़ने लगा। लोक-मानस् में उनका स्थान बनने लगा। बंकिम चन्द्र जैसे महा-रथी साहित्यकार ने उनकी इन कविताओं की प्रशंसा की।

एक दिन रवीन्द्र को किसी विवाह के अवसर पर श्री रमेशचन्द्र दत्त के घर जाने का अवसर मिला। जब कवि वहाँ पहुंचे तो लोग बंकिम चन्द्र चैटर्जी को फूलों के हार पहना रहे थे। बंकिम चन्द्र ने रवीन्द्र की ओर सँकेत करते हुए कहा "आप लोग इनके गले में हार डालें। क्या आपने इन की कविताएं नहीं पढ़ीं।"

'संध्या-सगीत' के गीतों के सम्बंध ने कवि ये स्वयं लिखा है--"मेरे साहित्यिक जीवन का यह स्मरणीय समय है, जब मैंने पहली बार जो अनुभव किया सहजता से लिख दिया।"

अब रवीन्द्र अपने भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ और भाभी कादम्बरी के साथ सुधर रोड पर रहने लगे। वहां वह एक कमरे में लेटे रहते, बाहर कम ही निकलते। भीतर ही खाते पीते। उस समय उन्होने बहुत सुन्दर कविताएँ लिखीं जो 'प्रभात-संगीत' के शीर्षक से प्रकाशित हुईं। इन कविताओं में कवि की भाषा बड़ी परिमार्जित थी और उन्होंने काव्य-सृजन के सभी प्रारम्भिक नियमों का विशेष ध्यान रखा था।

भाव सरल और सुलझे हुए-विचार परिपक्व और गम्भीर।

'मन एक बहुत बड़ा घना जंगल है;
चारों तरफ खुला और विस्तृत,
यहां मैं अपना रास्ता भूल जाता हूं।"

यहीं रहते हुए रवीन्द्र ने एक उपन्यास 'बोहू ठाकुरानी हाट' भी लिखा। इसके सम्बन्ध में कवि ने स्वयं ही कहा था "कुछ लोगों ने इसे पसन्द किया है, परन्तु यह उपन्यास अधूरा-सा है, मेरे बस में हो तो मैं इसे फाड़ डालूं।'

रवीन्द्र ने कुछ लेख 'आलोचना' शीर्षक के अन्तर्गत लिखे और सिद्ध कर दिया कि वह एक सफल पत्रकार भी हैं। इस में रवि ने कई रचनाओं की समीक्षा की है।

यह स्थान कवि की साहित्यिक रुचियों के विकास के लिए सहायक सिद्ध हुआ। उन्होंने सोचा, यदि इस अँधेरीगली का यह अंधेरा मकान यह कुछ कर सकता है तो हिमालय पर्वत पर इससे भी सुन्दर रचनाओं का सृजन कर सकते हैं। वह अपने भाई और भाभी के साथ दार्जलिंग चले गये। यह स्थान सुन्दर और रमणीक होने के बावजूद भी रवीन्द्र का मन न रमा सका। वह शीघ्र ही कलकत्ता लौट आये।

लौट कर रवीन्द्र ने अपने भाई द्वारा संस्थापित 'बंगाल साहित्य अकादमी' को पुनर्जीवित किया और उसके साथ ही 'सरस्वती समाज' की स्थापना की जिसमें बकिम चन्द्र आदि समकालीन साहित्यकार समलित हुए।

सन् १८८३ में रवीन्द्र अपने भाई सत्येन्द्रनाथ के साथ कारवाह दक्षिण भारत में चले गये। वहां उन्होंने एक प्रसिद्ध नाटक 'प्राकृतीर प्रतिशोध' लिखा। इस नाटक के विषय में कवि ने स्वयं ही कहा "इसे मेरी भविष्य की सभी

साहित्यिक रचनाओं का प्रवेश समझा जाय।" गर्मियों के दिन काट कर सभी कलकत्ता लौट आये और चौरंगी में एक मकान लेकर रहने लगे। इस घर के सामने ग़रीबों की एक बस्ती थी जिसमें भूख और मृत्यु से जूझते हुए स्त्री-पुरुष रहते थे। रवीन्द्र खिड़की में खड़े होकर देखते रहते—

क्या प्रकृति ने ऐसे लोग भी बनाये हैं, क्या प्रत्येक मनुष्य के लिए रोटी, कपड़ा और मकान ज़रूरी नहीं, क्या ग़रीबों को जीने का कोई अधिकार नहीं, क्या ऐश्वर्य और आराम के सभी साधन धनवानों के लिए हैं? इन विचारों से प्रेरित होकर रवीन्द्र ने कई गीत लिखे जो 'धोबी ओ,गान' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुए। "मैं एक अच्छे घर में रह रहा था। रोज़ मैं खिड़की से सामने बस्तियों में रहते लोगों का वास्तविक जीवन देखता। अब मैं अपने विचारों में ही लीन नहीं रहता था, बाहर की दुनिया भी मुझे आकर्षित करती थी।'

इस प्रकार रवीन्द्र का जीवन व्यतीत होता गया। महर्षि ने सोचा कि अब कवि को ज़मीन की देखभाल करने के लिए नियुक्त कर देना चाहिए। और उनका विवाह करना भी अत्यावश्यक समझा गया ताकि वह उत्तरदायित्व का अनुभव करें।

एक लड़की देखी गयी जो न सुन्दर थी, और न ही पढ़ी लिखी। रवीन्द्र इन्कार भी नहीं कर सकते थे। उन्होंने स्वीकृति दे दी और विवाह हो गया। लड़की का नाम 'भवतारिणी' था, परन्तु विवाह के उपरान्त बदल कर 'मृणालिनी' रख लिया गया।

मृणालिनी देवी बहुत अच्छी पत्नी सिद्ध हुई—बिल्कुल कवि की इच्छा के अनुरूप; पति की प्रत्येक उलझन में

सहायता देने वाली। रवीन्द्र प्रसन्न थे कि उन्हें ऐसी पत्नी मिल सकी।

अप्रेल १८८४ में कवि की भाभी कादम्बरी देवी का स्वर्गवास हो गया। उस भाभी ने जीवन में कवि को अपरिमित प्यार और स्नेह दिया था। उनके मन को बहुत आघात हुआ। उनको मृत्यु का रूप भयावना लगा--क्या मृत्यु संसार से किसी की सब से प्रिय चीज़ भी छीन कर ले जा सकती है।

ठाकुर परिवार द्वारा पहले ही एक साहित्यिक पत्रिका 'भारती' का प्रकाशन हो रहा था। अब एक और पत्रिका 'बालक'का प्रकाशन आरम्भ किया गया। यह एक बालोपयोगी पत्रिका थी जिसका संपादन-भार सत्येन्द्रनाथ की पत्नी को सौंपा गया। चोंकि वह स्वयं बहुत कुछ नहीं लिख सकती थी, इसलिए यह दायित्व भी रवीन्द्र को निभाना पड़ता। वह पत्रिका के लिए कविताएँ, लेख, नाटक आदि लिखते रहते। उन्होंने पत्रिका के लिए एक एतिहासिक उपन्यास मुकुट लिखा जो बाद में शान्तिनिकेतन में बच्चों द्वारा अभिनीत हुआ। रवीन्द्र ने स्वयं ही इसका नाट्य-रूपान्तर प्रस्तुत किया था।

'बालक' के लिए रवीन्द्र को बहुत कुछ लिखना पड़ता, क्योंकि पत्रिका का पेट तो कभी भरता ही नहीं। रवीन्द्र ने एक और उपन्यास 'राजर्षि' लिखा। बाद में उसका ही कथानक लेकर अपना प्रसिद्ध नाटक 'विसर्जन' लिखा जो अंग्रेजी में अनूदित होकर Sacrifice' के नाम से प्रकाशित हुआ।

महर्षि चाहते थे कि रवीन्द्र धार्मिकता की ओर भी प्रवृत हों। इस लिए उन्हें ब्रह्म समाज का मन्त्री बना दिया।

उन्होंने कई धार्मिक कविताएं और लेख भी लिखे, जिनमें से राजा राममोहन पर लिखी रचनाएं अधिक प्रसिद्ध हुईं। १८८५ ई० में उन्होंने एक और पुस्तक 'धर्म-प्रचार' लिखी तथा बाल-विवाह की कुप्रथा की कड़ी आलोचना एक कविता में की।

सन् १८८९ में रवीन्द्रनाथ जो अब दो बच्चों के पिता थे, अपने परिवार अर्थात पत्नी, पुत्री माधुरी लता और पुत्र राथी को लेकर शोलापुर चले गये, जहां उनका भाई सत्येन्द्रनाथ जज नियुक्त हुआ था। वहाँ उन्होंने एक नाटक 'राजा ओ रानी' लिखा, जिसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। इस नाटक का बहुत प्रशँसा की गयी।

अब रवीन्द्रनाथ का मन एक स्थान पर केन्द्रित नहीं होता था। वह शीघ्र ही एक स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान पर रहना चाहते थे। यदि शहर न छोड़ सकते तो कम से कम मकान अवश्य छोड़ देते। उन्हीं दिनों वह पश्चिमी भारत के कई नगरों में घूमते रहे। कुछ दिन के भ्रमण के बाद वह पुनः शोलापुर अपने भाई के पास आ गये। वहाँ उन्हें पता चला कि सत्येन्द्रनाथ फिर विदेश जा रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ने भी साथ जाने का विचार बना लिया और तैयारी कर ली। इस बार सत्येन्द्रनाथ के एक मित्र 'लोकिन पालित' ने भी उनके साथ जाना था।

रवीन्द्र एक छोटी-सी कापी प्रारम्भ से ही अपने पास रखते थे, वह कापी भरी जा रही थी—गीतों और कविताओं से। रवीन्द्र जहाँ कहीं भी होते, उठते-बैठते कुछ-न-कुछ लिखते रहते।

रवीन्द्र दूसरी बार योरुप-यात्रा के लिए चल पड़े। इस

यात्रा में उन्होंने घर को पत्र नहीं लिखे परन्तु एक दैनन्दिनी अपने पास रखी, जिस में वह प्रतिदिन की घटनाएं लिखते रहते। विभिन्न देशों की जीवन-शैली, सभ्यता और संस्कृति सम्बन्धी लेख इसी दैनन्दिनी के आधार पर उन्होंने 'योरुप-यात्रा' के अंतर्गत 'साधना' में प्रकाशित करवाये।

लण्डन पहुंच कर वह सब से पहले अपने पुराने स्नेही 'स्काट परिवार' से मिलने को गये। इस परिवार से रवीन्द्र की पहली यात्रा में घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। उन्हें अत्यधिक निराशा हुई, जब उन्हें पता चला कि वह परिवार वह स्थान छोड़ कर किसी अज्ञात स्थान पर चला गया था। रवीन्द्र को उस परिवार का निवास-स्थान कदाचित न मिल सका और न ही उसके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त हो सकी।

रवीन्द्र लडंन के रमणीक और सुन्दर बाज़ारों में सैर करते, घूमते और इस प्रकार अपने मन को बहलाते। वह इन बाज़ारों के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखते हैं, 'बाजारों में घूम कर मुझे बड़ी खुशी होती। कोई-न-कोई सुन्दर आकृति अवश्य मिलेगी। भारत के देश-भक्त मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं सुन्दर आकृतियों, लाल-लाल होठों, तीखों नाकों और आकाश की नीलाभा से मिलती-जुलती चमकीली आँखों की प्रशंसा करूँ।"

रवीन्द्र कुछ दिनों तक तो बड़े खुश रहे, हंसते-खेलते रहे, मस्त रहे, परन्तु शीघ्र ही वह उकता गये। वह स्वदेश लौटने के लिए अधीर हो उठे, देश की मिट्टी के स्पर्श के लिए लालायित हो उठे। उन्होंने लिखा—मैं इस स्थान से तंग

आ गया हूं। मुझे अब कहीं भी कुछ अच्छा नहीं लगता, सुन्दर आकृतियां भी नहीं रुचतीं, इस लिए मैंने स्वदेश लौटने का निश्चय कर लिया है।"

रवीन्द्रनाथ १८८० में देश लौट आये और लौटते ही उनका 'मानसी' नाम का कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ। उन कविताओं ने लोगों को विश्वास दिला दिया कि रवीन्द्र कवि है और उसमें एक अच्छे कवि के सभो गुण हैं।

अब रवीन्द्र निरन्तर और अपरिमित साहित्य-सृजन कर रहे थे। वह लिखते जा रहे थे, अवरोध गति से-कविताएं, गीत-नाटक इत्यादि। वह दिन-प्रति-दिन ख्याति के शिखर की ओर बढ़ रहे थे। साहित्य-क्षेत्र में उनका नाम चमक उठा था, परन्तु महर्षि चाहते थे कि साहित्य-सृजन के साथ-साथ वह घर और परिवार के उतरदायित्व भी संभाले ताकि ज़मींदारी की देखभाल भली प्रकार हो सके। महर्षि की बहुत-सी जमीन उतरी दक्षणी बंगाल और उड़ीसा में थी। पहले तो रवीन्द्र काम के नाम से ज़रा घबराये, परन्तु शीघ्र ही अपने पिता की आज्ञा का पालन किया और स्यालदह जाकर ज़मींदारी का काम संभाल लिया जिससे उन्हें दोहरा लाभ हुआ। एक तो उन्हें एकाँत मिल गया दूसरे उन्हें बंगाली ग्रामों को निकट से देखने का अवसर मिल गया। कवि ने इन ग्रामों की ग़रीबी, दरिद्रता और अज्ञानता देखी। उन्हों-ने देखा कि कैसे परिश्रमी किसान दिन-रात काम कर के अपना पेट नहीं भर सकता, कैसे उसका सारा परिवार काम में जुटा रहता है, और फिर भी उसे पेट भर भोजन प्राप्त नहीं होता।

कवि को देश की सामाजिक तथा आर्थिक दशा का ज्ञान भी हुआ और उसका हृदय विशाल हो गया। उसने वास्तविक बंगाली जीवन की झलक देखी :

रवीन्द्र इन दिनों कई बार कलकत्ता आये। अब ठाकुर परिवार की ओर से एक और मासिक पत्र 'साधना' निकलने लगा था जिसका सम्पादक कवि का भतीजा सुधीन्द्रनाथ नियुक्त हुआ। इस पत्र में कवि की अनेकों रचनाएं प्रकाशित हुई। इस पत्रिका की ७५ प्रतिशत रचनाओं के लेखक रवीन्द्र ही होते। कवि लिखता गया और लिखता ही गया। इस समय उन्होंने अपना एक प्रसिद्ध नाटक 'चित्राँगदा' लिखा जिसका अंग्रजी अनुवाद 'चित्रा' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ। 'चित्रांगदा' बहुत लोकप्रिय हुआ।

अब रवीन्द्र के मन में भारतीय किसान बस गया। वह दिन-रात उसकी भलाई के लिए सोचते रहते। उनकी धारणा थी कि देश के कल्याण के लिए भारत के किसान को ऊपर उठाना ज़रूरी है। कवि की इन्हीं भावनाओं के फलस्वरूप कालान्तर में 'श्री निकेतन' की स्थापना हुई जिसमें ग्राम-कल्याण का कार्य प्रारम्भ किया गया।

इस समय कवि ने कहानियाँ लिखनी शुरू कर दीं। उस समय छोटी कहानी लिखना बहुत कठिन समझा जाता था और यह बंगला साहित्य में अभी एक नई विधा थी। रवीन्द्र ने बहुत सुन्दर कहानियाँ लिखीं जिसने यह सिद्ध कर दिया कि वह कवि के अतिरिक्त कुछ और भी हैं।

कवि को अपनी कहानियों के लिए कथानक और पात्र भारतीय ग्रामों से मिले। वह कुछ दिनों के लिए पद्मा नदी

के किनारे पर नौका में घर बना के रहे। वह घाटों और वहां पड़े पत्थरों की ओर देखते रहते और सोचते कि यदि ये पत्थर बोलें तो कितनी ही कहानियां कहें। कवि ने पत्थरों को बुलाया और कहानी लिखी 'घाटेर कथा'। यह रवीन्द्र की प्रारम्भिक कहानियों में से है, जिस में चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से हुआ है।

फिर उन्होंने लिखी अपनी प्रसिद्ध कहानी 'डाक-मास्टर' जिसमें मानवीय भावों को सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है।

अब रवीन्द्रनाथ यथार्थवादी बन रहे थे। वह लोक-जीवन में से अपनी कहानियों के पात्र ढूंढ़ते।

सन १८९२ में रवीन्द्र काव्य-सृजन की ओर अधिक प्रवृत हुए। वह हर रोज एक कविता लिख लेते! उन्हें गद्य लेखन की अपेक्षा काव्य-सृजन में अधिक आत्म-तुष्टि प्राप्त होती।

इसी समय रवीन्द्र की एक और पुस्तक 'सोनार तोरी' प्रकाशित हुई। इसमें लम्बी-लम्बी कई सुन्दर कविताएं हैं। "यह मेरी पहली लोक-प्रिय पुस्तक है जिसने बहुत लोगों को मेरा श्रद्धालु बना दिया"। 'सोनारी तोरी' के बाद १८९६ में कविता की एक और पुस्तक 'चित्रा' नाम से प्रकाशित हुई, जिसकी गणना उनकी अच्छी पुस्तकों में की गयी।

एक और कविता 'नदी' भी प्रकाशित्त हुई, जो एक बालोपयोगी कविता है। नाटक 'मालिनी' छपा। इस नाटक में रवीन्द्र ने नाटकीय ढग का समचुति प्रयोग किया और इसे रंगमँच के लिए एक सफल नाटक बना दिया। सन् १८९६ में ही 'चोई तालो' कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ।

यह समय भारत में राजनैतिक उथल-पुथल का था। देश में नई जागृति आ रही थी। लोग स्वतंत्रता-संग्राम में कूदने के लिए तैयार हो गये थे। १८९२ में 'सडोशन' बिल अँग्रेजी सरकार ने पास किया। भारत के सपूत लोकमान्य तिलक को पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया गया। कवि-हृदय तड़प उठा। अब तक वह राजनैतिक क्षत्र से बाहर रहे थे। उन्होंने अपनी लेखनी के जोर से अंग्रेजी सरकार की विरोध-पूर्ण भर्त्सना की और अपनी कविता 'कंठारोध' एक सार्वजनक सभा में पढ़ कर सुनाई। तिलक का मुकदमा लड़ने के लिये रुपया इकट्ठा किया और जब कलकत्ता शहर में बीमारी फैली तो भी उन्होंने लोगों की सहायता के लिए रुपया इकट्ठा किया।

रवीन्द्रनाथ राजनैतिक और सामाजिक गतिविधियों में भी भाग लेने लगे, परन्तु उनकी साहित्यिक रुचियां भी इसी समय समुचित रूप से विकसित हुईं। अब कवि ने दो पुस्तकें 'कथा' और 'कहानी' प्रकाशित कीं। एक कहानी-संग्रह 'नष्टनीड़' और एक उपन्यास चोखेरबली' लिखे।

इसी वर्ष वह अपने बच्चों और पत्नी को सियालदह अपने पास ले आए, जहां बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। अँग्रेजी का एक अध्यापक रख लिया, परन्तु अधिकतः वह स्वयं ही बच्चों को पढ़ाते थे। वह जानते थे कि जिन स्कूलों में वह स्वयं नहीं पढ़ सके वहाँ उनके बच्चे कैसे पढ़ सकते हैं। कवि ने प्राचीन भारत के जंगलों में वृक्षों के नीचे लगने वाले स्कूलों के विषय में सुना हुआ था, जहां अध्यापक और विद्यार्थी में कोई भेद-भाव नहीं होता था, जहां शिक्षा मातृ-भाषा में दी जाती थी। रवीन्द्र ऐसे स्कूल की

स्थापना करना चाहते थे जहां बच्चा अपनी इच्छानुसार विद्या प्राप्त कर सके, जहां न केवल बंगाल और सारे भारत से आकर बच्चे पढ़ें बल्कि सूमूचे विश्व से बच्चे आकर शिक्षा प्राप्त करें।

वे दिसम्बर सन् १९०० में सपरिवार शांतिनिकेतन आ गये। और थोड़े समय के बाद ही अर्थात १९०१ में स्कूल आरम्भ कर दिया, केवल चार विद्यार्थियों के साथ ही।

शान्तिनिकेतन से कवि रवीन्द्र का गहन सम्बन्ध है। इसलिए उसकी विस्तारपूर्ण रूपरेखा अंकित करना आवश्यक है ताकि पाठक उसकी महानता से अवगत हो सकें।

———

७

शान्ति-निकेतन:विश्व-भारती

रवीन्द्रनाथ बचपन में अपनी पढ़ाई किसी भी स्कूल में जारी न रख सके। उन्हें कई स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजा गया, परन्तु उनका मन कहीं भी न लगा। वह स्कूल छोड़ कर घर भाग आते। अंत में फैसला किया गया कि वह घर पर ही विद्या ग्रहण करें। कोई भी स्कूल उनके योग्य न समझा गया और घर पर ही अध्यापक नियुक्त करके उन की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। इसका क्या कारण था? क्या उस समय के बंगाल में कोई अच्छा स्कूल नहीं था। निश्चय ही हर प्रकार के स्कूल होंगे, अंग्रेजी, बंगाली पढ़ाने वाले तथा पब्लिक स्कूल। फिर वह क्यों इन स्कूलों में विद्या प्राप्त न कर सके।

परन्तु ऐसा कोई स्थान नहीं था जिसे भारत की आत्मिक विद्या का घर समझा जाता और जहां विद्यार्थी मिल बैठ

कर विद्या प्राप्त करते और राष्ट्रीय एकता का प्रमाण देते। जहां बालकों को केवल किताबी शिक्षा ही न दी जाय, बल्कि वे अपनी सभ्यता से भी परिचित हों, अपने इतिहास को परखें और ऋषि-मुनियों के पद-चिन्हों पर चलें।

सन् १८९३ में कवीन्द्र रवान्द्र ने अपने एक बँगाली मित्र को लिखा, "जब तक हम अपने आप को अच्छी तरह प्रकट नहीं कर सकते हमें छुपे रहना चाहिए। "रवीन्द्र एक ऐसी जगह बनाना चाहते थे जहां मनुष्य अपने-आप को प्रकट कर सके, जहां वह अपनी रुचियों को विकसित कर सके, जो केवल भारतीय आध्यात्मिकता का घर ही न बने बल्कि जहाँ समूचे विश्व की आध्यात्मिक धाराए समा जाएं। वह शांतिनिकेतन को एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाना चाहते थे।

जब रवीन्द्र बच्चों और पत्नी को सियालदह ले आये तो वहां उन्होंने बच्चों को स्वयं पढ़ाना शुरू कर दिया, किन्तु बच्चों की शिक्षा ठीक ढंग से न हो सकी। उनके मन में विचार आया कि क्यों न शान्तिनिकेतन चल कर वहां प्रयोग के लिए एक स्कूल खोला जाय।

रवीन्द्र ने सोचा कि अंग्रेजी विद्या के स्थान पर यदि भारतीय विद्यार्थियों को एक नये ढग से शिक्षा दी जा सके तो वह अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकती है, वह शिक्षा जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हो। वह प्राचीन और नवीन शिक्षा पद्धतियों के समन्वय से एक नई प्रणाली निकालना चाहते थे।

इन बातों के आधार पर २२ दिसम्बर १९०१ को शांतिनिकेतन का उद्‌घाटन किया गया। स्कूल पांच विद्यार्थियों

से शुरु हुआ जिन में एक कवि का ज्येष्ठ पुत्र था। इतने ही अध्यापक रखे गये जिन में से तीन ईसाई और एक अंग्रेज़ था।

प्रारम्भ में स्कूल को अनेकों आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। रवीन्द्र को अपना मकान और पुस्तकें बेचनी पड़ी। उनकी पत्नी ने अपने आभूषण बेचे ताकि स्कूल का खर्च चलाया जा सके।

उद्घाटन के समय रवीन्द्रनाथ ने कहा—"शान्तिनिकेतन में कोई नई विचार धारा नहीं, बल्कि यह मेरे स्कूल के दिनों की स्मृति है।" स्कूल की स्थापना कवि के लिए एक उद्देश्य था, एक गंतव्य था जिस पर पहुंचने के लिए वह सब कुछ न्यौछावर कर सकता था। उन्होंने स्कूल-मास्टर बनना स्वीकार किया कलकत्ता का ऐश्वर्यपूर्ण जीवन छोड़ कर शान्तिनिकेतन में ग्रामीण जीवन अपनाया। यह कोई साधारण बात न थी।

प्रारम्भ में रवीन्द्रनाथ को स्कूल को आत्म-निर्भर बनाने के लिए बहुत कुछ करना पड़ा। वह सारी व्यवस्था का स्वयं ख्याल रखते, खुद भी बच्चों को पढ़ाते, नई पुस्तकें लिखते। उस समय उन्होंने विद्यार्थियों के लिए कई गीत और कविताएं लिखे।

स्कूल दिन-प्रति-दिन आत्म-निर्भर बनता गया। रवीन्द्र ने इसे रक्त और स्वेद से सींचा। इसकी नींहों में अपनी चर्बी को ढाला।

बाद में शांतिनिकेतन में पढ़ाने के लिए उस समय के उच्च कोटि के कई विद्वान आये जिनमें विदेशी विद्वान भी थे। विदेशियों में श्री सी०एफ० एँड्रूज़ और डबल्यू डबल्यू पीयर्सन

अधिक प्रसिद्ध हैं। इन दोनों विद्वानों ने शान्तिनिकेतन के जीवन में एक आत्मा भरी और कवि को विश्वास दिलाया कि शांतिनिकेतन में पढ़ाने के लिए दुनिया भर के विद्वान आ सकते हैं और भारत में पुनर्जागरण हो सकता है। इस प्रकार शाँतिनिकेतन आगे बढ़ता गया और जिस उद्देश्य के लिए है यह संस्था बनी थी, उसकी पूर्ति स्पष्ट दिखाई दे रही थी। सी. एफ. एंड्र्यूज़ ने लिखा "यह महायुद्ध के दिनों की बात जब दुनियाँ मृत्यु के विकराल मुंह के आगे खड़ी थी, कवि रवीन्द्रनाथ ने अंतर्राष्ट्रीय मित्रता और संस्कृति के आदान-प्रदान की भावना शांतिनिकेतन में प्रकट की है।"

शांतिनिकेतन में न केवल बंगाल से बल्कि समूचे भारत से विद्यार्थी आकर शिक्षा प्राप्त करते थे जो एक नये ढंग की शिक्षा थी। १९१८ तक गुजरात प्रदेश से काफी विद्यार्थी आये और उन्होंने सोचा कि शान्तिनिकेतन प्रान्तीयता और साम्प्रादायक सीमाओं से बाहर रहना चाहिए। उस समय गुजरात के सेठों ने रवीन्द्र को आर्थिक सहायता की। इस धन से कवि ने एक नये भवन का निर्माण किया। उपयुक्त समय पर यदि यह आर्थिक सहायता न मिलती तो आज शांति-निकेतन का रूप कुछ और ही होता।

२२ दिसम्बर १९१८ को जब शांतिनिकेतन की वर्षगाँठ मनायी गयी तो भारत के प्रसिद्ध पुरुषों और महिलाओं ने अपने-अपने धर्मानुसार रस्में पूरी कीं। इससे लोगों की आंखें खुल गयीं। २२ दिसम्बर १९२१ को रवीन्द्र की मनोकामना पूरी हुई जब शांतिनिकेतन में विश्वभारती अन्तर-राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का उद्घाटन किया गया।

अब शाँतिनिकेतन में उच्च शिक्षा, प्राचीन साहित्य और आधुनिक विज्ञान की पढ़ाई का प्रबन्ध किया गया। इन विषयों के प्रकांड पँडित नियुक्त किये गये। उन्होंने अपने रक्त और स्वेद से कवि की इच्छाओं को मूर्त रूप दिया। उन्होंने अपना जीवन संस्था को अर्पण कर दिया।

विश्वभारती के उद्घाटन के समय कवि ने ये विचार प्रकट किये, "विश्वभारती उस भारत का प्रतिनिधित्व करता है जिसके पास असीम बौद्धिक पूंजी है और जो सब के लिए सांझी है। विश्वभारती भारत की महान सम्भता विश्व को देगा और दूसरों की सम्भ ताओं से बहुत कुछ ग्रहण करेगा।'

शांतिनिकेतन एक बहुत सुन्दर और रमणीक स्थान है, जहां प्रकृति के गोद में वास्तव में ही मनुष्य के मन को शांति मिलती है। यह बोलपुर से दो मील की दूरी पर है और इसके आसपास खुले मैदान हैं। बीच में नदियां और नाले, सामने शाल के वृक्ष और पश्चिम में खजूर के वृक्षों की पँक्तियां हैं। इस स्थान का बंगाली जीवन से गहन सम्बन्ध है। परवर्ती प्रदेश का जीवन बँगाली ग्रामों जैसा है। दूर-दूर तक फैले हुए छोटे-छोटे मकान, जिन में बसता है बंगाल का मेहनती किसान, जो धरती से अन्न पैदा करता है, मानवता को जीवित रखता है।'"

शान्तिनिकेतन का इतिहास कवीन्द्र के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ से शुरू होता है जब उन्होंने बोलपुर में दो वृक्षों के नीचे जगह बना कर तपस्या की थी। यही जगह बाद में एक आश्रम में परिणत हो गयी और कुछ समय के बाद संसार की एक महान संस्था ने जन्म लिया।

शान्तिनिकेतन में बच्चे बाहर बैठ कर पढ़ते हैं केवल वर्षा

के दिनों को छोड़ कर। समय-समय पर रवीन्द्रनाथ के लिखे हुए नाटक भी अभिनीत होते हैं, जिससे विद्यार्थियों को कलात्मक रुचियों का परिष्कार होता है।

शान्तिनिकेतन के प्रारम्भ से ही कवि वहां रहे, अतएव उनके जीवन का वहाँ के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता रहा। वह स्वयं पढ़ाते थे और स्कूल के लिए पुस्तकें लिखते थे। उन्होंने अपने विदेश के अनुभवों को भी शान्तिनिकेतन की उन्नति के लिये अधिक-से-अधिक प्रयोग में लाया। मुक्तवातावरण में बच्चों का बैठना, अध्यापक और विद्यार्थी में गहरा सबंध स्थापित करना—ये भारतीय परम्पराएं हैं। रवीन्द्रनाथ शांति-निकेतन के विद्यार्थियों को स्वतन्त्र बना के उन में आत्म-विश्वास भरना चाहते थे ताकि ये आत्म-निर्भर बन सकें और भविष्य जीवन में सफल हो सकें। आत्मविश्वास से मनुष्य अपना जीवन नये सांचे में ढाल सकता है। वह जीवन की धारा जिधर चाहे मोड़ सकता है। इस लिए शाँतिनिकेतन में सम्पूर्ण स्वतन्त्रता पर अधिक ज़ोर दिया गया। बच्चों को आवश्यकता की सभी चीज़ें मिलतीं। शांतिनिकेतन की व्यवस्था एक गणतंत्र की भान्ति थी। अपना दूध का फार्म, कृषि-फार्म, हस्पताल, डाक घर और वर्कशाप थे। एक छापाखाना लगाया ताकि पुस्तकों की छपाई सुन्दर और सस्ती की जा सके।

शान्तिनिकेतन में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है जो दुनिया भर की पुस्तकों से भरा पड़ा है। यह पुस्तकालय साहित्यिक पुस्तकों का भंडार है। योरूप और अम्रीका से रवीन्द्र को ढेर सी पुस्तकें भेंट स्वरूप प्राप्त हुईं,जो इसी पुस्तकालय में रखी गयीं। विद्या-र्थियों के लिये खेलों का पूरा प्रबन्ध है। वे बड़े उत्साह से

इनमें भाग लेते है, जीतते-हारते हैं और शारीरिक एवं आत्मिक शक्ति प्राप्त करते हैं।

शान्तिनिकेतन में लड़के-लड़कियाँ इकट्ठे पढ़ते हैं, इकट्ठे खेलते हैं और परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। कोई मतभेद नहीं, सभी भाई-बहनों की तरह रहते हैं। आयु के अनुसार एक दूसरे को ददा और दादी कह कर सम्बोन्धित किया जाता है। विद्यार्थी सामूहिक जीवन लोकराज्य की परम्पराओं के अनुसार व्यतीत करते हैं।

लड़कियों के लिए गृहोपयोगी विषयों का अलग प्रबन्ध है। छोटे बच्चों की देखभाल बड़ी लड़कियाँ करती हैं और रसोई में काम करना तो उनकी दिनचर्या का एक भाग है।

शान्तिनिकेतन में तीन शिक्षा विभाग हैं, जैसे स्कूलविभाग (पाठ-भवन) कालेज विभाग (शिक्षा-भवन) और अनुसंध विभाग (विद्या-भवन)।

स्कूल में पढ़ाई के साथ-साथ बच्चों को ड्राइंग, संगीत और शिल्प की शिक्षा भी दी जाती है ताकि वे पढ़-लिख कर समाज पर भार न बनें, बल्कि उसकी कुछ सेवा कर सकें।

कालेज विभाग में दशम कक्षा में सफल हो चुके विद्यार्थी दाखिल किये जाते हैं। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार चाहे विश्वभारती कोर्स शुरू करें चाहे कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा दें।

अनुसंधान विभाग (विद्या भवन) अन्वेषकों और वैज्ञानिकों के लिए है। खोज के बड़े साधन हैं। पुस्तकें हैं, हस्तलिखित पांडुलिपियां हैं जिनमें डेढ़ लाख के लगभग चीनी पुस्तकें भी शामिल हैं। विद्या भवन की बड़ी महानता है। यहां समूचे

विश्व से विद्यार्थी खोज के लिए और अपने ज्ञान-भंडार में वृद्धि करने के लिए आते हैं।

शांतिनिकेतन कला और संस्कृति का केन्द्र है। कला-भवन में संगीत नृत्य और चित्रकला आदि की शिक्षा दी जाती है। पांच वर्ष के बाद विश्वभारती डिप्लोमा मिल जाता है। संगीत भवन में सारी दुनिया से विद्यार्थी आते हैं। एक अलग चीनी-भवन भी है जिस में बुद्ध मत सम्बन्धी ज्ञान दिया जाता है।

गांधी जी और अन्य महापुरुषों ने भी शांतिनिकेतन में जा कर अपने ज्ञान में वृद्धि की। हमारे देश के प्रधान मन्त्री वहाँ कई बार गये और वह अब भी विश्व-भारती के आचार्य हैं। भारत के पहले राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसादको 'विज़टर' की प्रतिष्ठा प्रदान की गयी।

यह है शान्तिनिकेतन और विश्वभारती का संक्षिप्त वर्णन। इसके निर्माण के लिए हैदराबाद के निजाम, बड़ौदा नरेश और अन्य भारतीय धनिकों ने आर्थिक सहायता की। चीन ईरान, योरोप और अफ्रीका के लोगों ने भी दिल खोल कर चन्दे भेजे।

रवीन्द्रनाथ ने शान्तिनिकेतन को बहुत कुछ दिया। उन्होंने इसे अपने खून पसीने से सींचा। प्रत्युतर में शान्तिनिकेतन ने कवि को क्या दिया? रवीन्द्र को एक ऐसा स्थान मिला जहां उनके तपते हृदय को शान्ति मिल सकी। कवि के चारों ओर मित्र थे जो उनसे प्रेरणा लेते थे। कवि के पास समय था, वह पढ़-लिख सकते थे। वातावरण ही ऐसा था कि कविता सहज ही प्रस्फुटित होती थी। कविता के लिए नित नूतन

विचार मिलते। वह रात को बहुत कम सोते और चांदनी रातों में प्रकृति से प्रेरणा लेते।

अवकाश के दिनों में रवीन्द्रनाथ से मिलने के लिए देश-विदेश से लोग आते। कवीन्द्र उनसे भा प्रेरणा लेते। उन के निकट ही उनके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ जो उच्च कोटि के विद्वान चिन्तक और समाज-सेवो थे, रहते थे। इन से कवि को मार्ग-निर्देशन मिलता।

शांतिनिकेतन स्मृतियों से भरपूर स्थान है। यहां उनका घर बिल्कुल उनकी मानसिक अवस्था के अनुकूल था, क्योंकि इसी काल में कवि को घरेलू कष्टों का सामना करना पड़ा परिवार में कई प्रियजनों की मृत्यु देखी। उनका मन दुखी था। उनकी आत्मा तड़प रही थी। उनके मन और मस्तिष्क पर एक भारी बोझ था जो सम्भवतः सहन करना कठिन हो जाता यदि उन्हें शांतिनिकेतन जैसी जगह न मिलती। और उनके मन में देश-सेवा की भावना जाग्रत न होती।

कवि की इस समय की कविताएँ भी वेदना और दुख की टीस से परिपूर्ण हैं। सहज कविता मन से प्रस्फुटित होतो है और कवि का मन अत्यन्त दुखी था। यहां रह कर रवीन्द्र ने चार कविता-सँग्रह और चार उपन्यास प्रकाशित करवाये।

———

८

कवि टैगोर तथा ग्राम उत्थान श्रीनिकेतन

भारत गांव में रहता है, इस की ८० प्रतिशत जनता हमारे पांच लाख गांव में रहती है। खेती करना इन का मुख्य धंधा है। ग्रामीण लोग देश के लिए अन्न पैदा करते हैं। देशवासियों का पेट भरने के लिए, उन्हें स्वस्थ रखने के लिए भारतीय किसान दिन-रात परिश्रम करता है। गर्मी और शीत की अवहेलना करते हुए वह अपने खून पसीने से धरती पर परिश्रम करता है ताकि वह अपना पेट भर सके, उसके देशवासी भरपेट रोटी खा सकें।

पर यह जो किसान दूसरों के लिए मरता है, परिश्रम करता है, वह स्वय भूखा है, नंगा है; निरक्षर है, बिना चिकित्सा के मर जाता है, कोई उसके मुँह में पानी डालने वाला नहीं।

अंग्रेज के समय में जब यहां उनका राज्य था, इस गरीब किसान का बहुत शोषण हुआ। अंग्रेज जानबूझ कर

भूखा मारना चाहते थे क्योंकि वे जानते थे कि समृद्ध किसान उस के विरुद्ध क्रान्ति करेगा, वह विदेशी शासन को सहन नहीं कर सकेगा।

कवि टैगोर का बँगाली ग्रामीण जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध था। उन्हें स्वयं कुछ समय अपनी जमीन की देखभाल करने के लिए गांव में रहना पड़ा। उन्होंने गांव के स्वप्न को देखा, उनके नदों नालों से प्यार किया, दूर-दूर तक फैले खेतों से प्यार किया। वह ग्रामीण जीवन से घुलमिल जाना चाहते थे। वह लोगों से मिलजुल कर रहना चाहते थे पर वह लोगों के कष्ट नहीं देख सकते थे। उन की बीमारी और निरक्षरता उन के लिए सहनोय नहीं थी। वह चाहते थे कि ग्रामीण भारत में नये जीवन का संचार किया जाए ताकि भारत को इस आत्मा का सुचारू रूप से विकास होता रहे और देश प्रगति करता रहे।

कवि टैगोर ने ग्रामीण भारत सम्बन्धी अपने विचार कई स्थानों पर प्रकट किए। आज हम सामूहिक विकास के द्वारा देश के गांव का पुनरुत्थान करना चाहते हैं। सरकार सामूहिक विकास के द्वारा देश को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील है। सरकार ने कवि टैगोर के विचारों से बहुत शिक्षा ग्रहण को और उन्हें सामूहिक विकास योजनाएं बनाते समय सामने रखा।

कवि टैगोर ने सन् १९०१ में शान्तिनिकेतन की नींव रखी। तदनन्तर यह विश्वभारती विश्वविद्यालय बन गया। शांतिनिकेतन की एक शाखा थी श्रीनिकेतन, जहाँ ग्राम उत्थान सम्बन्धी कवि के विचारों का प्रचार होता था और जहां के

विद्यार्थी गांव में जा कर लोक-सेवा करते थे तथा लोगों की कृषि सम्बन्धी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते थे। श्रीनिकेतन अर्थात् शांति निकेतन का ग्रामोत्थान-विभाग १९१४ में खोला गया।

कवि टैगोर ग्रामोत्थान में रुचि लेते रहे और अपना समय गाँव में जा कर बिताते, लोगों के दुःख सुनते, उन से विचार-विमर्श करते और आवश्यकतानुसार उनकी सहायता भी करते थे। एक स्थान पर उन्होने लिखा है, "मेरे पास एक मिनट भी खाली नहीं। मैं क्या करता था, आप पूछेंगे। हां तो मैं देहातों की सहकारी संस्था, अन्य ग्रामीण संस्थाओं, ग्रामीण शिक्षा, गृहोद्योग, लोक-साहित्य तथा लोक कला में परिवर्तन लाने के लिए दिन रात व्यस्त रहता था।"

१९०८ में बंगाल प्रांतीय सम्मेलन में जो पटना में हुआ था, कवि ने नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए कहा, "मिल कर कार्य करो, गांव में जा कर लोक-सेवा का कार्य करो।" १९१९ से उन्होंने एक ऐसी ही संस्था से अपना सम्बन्ध जोड़ा और देहातों में जा कर कार्य करने का कार्यक्रम बनाया। इसमें वयस्क शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य, मलेरिया की रोकथाम, पीने के लिए पानी का प्रबन्ध, सहकारी संस्थाओं की स्थापना आदि कार्य सम्मिलित किए गए।

कवि ने ग्रामोउत्थान के कार्यक्रम में नवीनता लाई जब उन्होंने विचार प्रकट किया, "क्या अब का हमारा ग्रामीण जीवन खुशियों से दूर है। इस के लिए जब भी कोई काम करो, इस में खुशी का संचार करो। जब कोई सड़क बनानी अथवा कुंआ खोदना हो, तो इकट्ठे होकर सहर्ष कार्य आरम्भ करो। सड़क के दोनों ओर खिले हुए गुलाब के फूल ग्राम की

शोभा द्विगुणित कर देंगे।" कवि टैगोर पुराने मेलों का महत्व जानते थे कि कैसे इन के द्वारा भाईचारा तथा सहकारिताबढ़ती है, कैसे लोग इकट्ठे होकर खुशियां मनाते हैं, हंसते गाते हैं। वे कुछ देर के लिए भूल जाते हैं कि उनका जीवन कितना कठोर है, उन्हें जीवित रहने के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है। इसी लिए कवि ने कई बार शांतिनिकेतन में मेले आयोजित किये तथा अन्य त्योहार मनाए। मेले के द्वारा कवि लोक सभ्यता लोक-कला, लोक संगीत, लोक-नृत्य आदि को पुनर्जीवित करना चाहते थे। प्रकट है कि हमारी सरकार को कवि के इन विचारों से बहुत सहायता मिली है। कवि के स्वप्न को आज हमारी सरकार साकार करने में मग्न है।

कवि टैगोर देहातों में जा कर स्वयं अपने हाथों से परिश्रम करते थे ताकि लोगों में भी उत्साह उत्पन्न किया जा सके। उन्होंने लोगों को 'अपनी सहायता स्वयं करो' की शिक्षा दी ताकि वे अपना आर्थिक स्तर ऊँचा कर सकें। कवि ने कहा है "हमारे देहातों का कोई खबर नहीं लेता, वे गिरते जा रहे हैं। हमारे ग्रामीणों में उत्साह लुप्त हो रहा है।"

इसीलिए शायद कवि ने श्रीनिकेतन की नींव रखी ताकि भारत का पुनरुत्थान किया जा सके।

श्रीनिकेतन के उद्देश्य यों कहते गए है:—

१ देहातों में अधिक रुचि लेनी, लोगों की समस्याओं का समाधान करना।

२ स्कूलों में ग्रामीण समस्याओं सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करनी और फिर ज्ञान से देहातों में लाभ उठाना।

३ ग्रामीणों को लोक सेवा के बारे में ज्ञान देना।

४ विद्यार्थियों में समाज-सेवा तथा कुर्बानी की भावना उत्पन्न करना।

५ विद्यार्थियों को ग्रामीण-उद्योगों की शिक्षा देना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ७०० एकड़ का खेती का फार्म बनाया गया जहां खेती बाड़ी सुधरे हुए तरीकों से की जाती, अच्छे बीज डाले जाते, खादें डाली जातीं ताकि अधिक से अधिक फ़सल उत्पन्न की जा सके तथा फार्म आत्म-निर्भर हो।

इन तरीकों अर्थात उन्नत तरीकों का प्रचार गांव-गांव में किया जाता ताकि लोग इनको अपनाकर अधिक अन्न उत्पन्न कर सकें तथा हर गांव आत्मनिभर हो सके। श्रीनिकेतन में छोटे-छोटे उद्यान, दूध तथा मुर्गियों के फार्म स्थापित किए गए ताकि इन मामलों में सस्था आत्म—निर्भर हो सके।

शांतिनिकेतन की भांति श्रीनिकेतन के भी कई भाग थे। शिल्प-भवन में कताई, बुनाई, चमड़ा रंगना, चमड़े की चीज़ें बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, लुहार तथा बढ़ई के कामों की शिक्षा दी जाती है। कोर्स तीन महीनों से लेकर दो साल तक नियत किए गए हैं।

श्रीनिकेतन का ग्राम-सेवा विभाग लोगों को ग्राम-स्वास्थ्य के बारे ज्ञानकारी देता है ताकि गांव में सफ़ाई रखी जाए तथा लोग बीमारियों से रहित हो जाएं। एक अस्पताल बनाया गया है जहाँ समाज-सेवकों तथा नर्सों को शिक्षा दी जाती है।

लोगों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए उनको खेती

बाड़ी के बिना अन्य कार्य करने की प्रेरणा दी जाती है। कई शिक्षा कैम्प लगाए जाते हैं।

श्रीनिकेतन में ग्रामीण–उत्थान के महान प्रयोग किए गए जिन से सरकार तथा लोगों ने लाभ उठाया। श्रीनिकेतन में हुए कार्य की प्रशंसा सभी सरकारी और गैर सरकारी व्यक्ति करते हैं। हम श्रीनिकेतन से बहुत कुछ सीखते हैं तथा यह हमारे लिए ग्राम उत्थान के क्षेत्र में एक प्रकाश-स्तम्भ है।

——

६

कवि का मध्य काल
१९०८ से १९२१
(विश्वभारती तक)

अब कवि परिवार सहित आ कर रहने लगे। उसने छोटा सा घर बना कर निवास किया तथा मन में प्रण कर लिया कि वह अब यहीं पर अपना शेष जीवन व्यतीत करेंगे। कवि ने स्कूल का प्रबन्ध आप सम्भाल लिया तथा स्कूल कवि की छत्रछाया के नीचे चलने लगा। यहां आकर कवि का मन शान्त था। उनको न केवल एकान्त स्थान रहने को ही मिल गया बल्कि ऐसा वातावरण मिला जिस में वह अपनी साहित्यिक रुचियों का विकास तथा परिष्कार कर सकते थे।

परन्तु भाव को कुछ और स्वीकार था। कवि अभी वहां पर टिके हो कि थे उनको प्यारी पत्नी बहुत बीमार हो गयी। ऐसी बीमार हुई कि फिर कभी राजी न हुई। कवि को अपनी पत्नी को कलकत्ते ले जाना पड़ा। उसने अपनी पत्नी

की जो भर कर सेवा शुश्रुषा की, उसको अकेले छोड़ कर कहीं भी न गए, दिन रात उसकी सेवा में जुटे रहते। कई बार सारा-सारा दिन कवि अपनी पत्नी को हवा करते रहते। स्वयं ही उस को अपने हाथों से दवाई पिलाते, स्वयँ ही उस को हौसला देते तथा स्वयं ही उसका दुःख बंटाते।

कवि यह सब कुछ क्यों न करते? उन के हृदय में पत्नी के लिए प्यार और दर्द था। इस पत्नी ने २० वर्ष कवि की देख भाल की, पतिव्रता रही तथा पति का विश्वास प्राप्त किया, उस कवि को पांच प्यारे प्यारे बच्चे दिए। चाहे वह ऊच्च वर्ग में रहती थी, बड़े लोगों से मेल मिलाप था पर वह अपना पहरावा सादा रखती, आभूषण आदि पहनने तो उसने छोड़ ही दिए।

मृणालिनी देवी चाहे प्रारम्भ में पढ़ी लिखी नहीं थी परन्तु शीघ्र ही उसने शिक्षा प्राप्त कर ली। उसने न केवल अपनी मातृ भाषा बंगला ही सीखी बल्कि अंग्रेजी तथा संस्कृत में भी शिक्षा प्राप्त की। उस ने अपने पति के कहने पर रामायण का सँस्कृत में से बंगला में अनुवाद किया। उसने कवि के नाटक राजा और रानी में भाग लिया तथा अपना अभिनय सुन्दर किया।

२३ नवम्बर १९०२ को मृणालिनि देवी स्वर्गबास हो गयी। भावी को कौन टाल सकता था, इस के आगे सब को सिर निवाना पड़ता है। जिस दिन उसने प्राण त्याग किया कवि रात भर बाग में फिरता रहा, उसने एक क्षण भर के लिए भी आराम न किया। उनकी आत्मा को बहुत कष्ट पहुंचा, उनको सदमा पहुंचा तथा उन्हें यों लगा जैसे उन का सब कुछ गुम हो गया हो। कवि ने अपना यह दर्द उस

समय कविताओं में प्रकट किया जो उस के हृदय की गहराइयों से प्रस्फुटित हुई थीं। "मेरी रात दुःख के सिरहाने बीती, मैं थका हुआ था।" ये कविताएँ 'स्मृति' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई। कवि ने अनुभव किया कि उसकी पत्नी समय से पूर्व ही मर गयी है, वह तो अभी तक ? भी नहा था हुआ। "उसकी रात्री प्रातः में परिणत हो गयी, ईश्वर ने उसे अपने आलिंगन में ले लिया, अब मैं उसे उपहार ईश्वर को ही समर्पित करता हूं।"

कवि कितनी देर घर के कमरे में फिर कर उसको देख-भाल करते रहे, गुम हुई चीज़ को ढूंढते रहे, परन्तु खोई हुई आत्मा कहाँ मिल सकती है ? अभी कवि अपनी पत्नी की मृत्यु की पीड़ा नहीं भुला सका था कि सितम्बर १९०३ में कवि की पुत्री रेणुका १३ वर्ष की आयु में मर गयी। यह कवि की अति प्यारी बच्ची थी। कवि की पीड़ा और बढ़ गयी, वह उदास रहने लगा। जब यह लड़की बीमार हुई तो डाक्टरों के कहने पर कवि इस को वायु परिवर्तन के लिए अल्मोड़ा ले गए। कवि के साथ उनके दूसरे बच्चे 'मीरा' तथा समचेन्द्र भी थे। कवि न केवल रोगिनी की ही देखभाल करते बल्कि उन्हें बच्चों के लिए मां भी बनना पड़ता। बच्चों को मां के प्यार की आवश्यकता थी तथा कवि उनको सब कुछ देता। बच्चों को प्रसन्न रखने के लिए वह अपने चेहरे पर उदासी की एक रेखा भी न लाते। पिता को उदास देख कर बच्चे कहीं मौत के भयानक रूप से सहम न जाएं।

कवि ने इस मनःस्थिति में जो कविताएं लिखीं वे 'शिशु' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में बच्चों तथा बच्चों के मनोविज्ञान सम्बन्धी बहुत सुन्दर कविताएं संगृहीत

हैं। ये कविताएं विश्व साहित्य में अपने ढंग की अनोखी कविताएँ मानी गयीं। इन कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद, 'The Crescent Moon' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। कवि ने अपनी दुःखी आत्मा को दूसरी ओर लगाने के लिए इस समय में बहुत साहित्य रचना की। साहित्यिक पत्र 'बंगाल दर्शन' के पृष्ठ कवि की रचनाओं से रचने लगे। कवि ने एक उन्यास 'नौका डूबी' लिखा जिसका अंग्रेजी अनुवाद The Wreck के नाम से प्रकाशित हुआ। उस से पूर्व इस उपन्यास के कई अध्यायं बँगदर्शन में प्रकाशित हुए।

सन् १९०३ में गीतों का एक और संग्रह 'उत्सर्ग' नाम में प्रकाशित हुआ। उसमें ४९ गीत थे। कई बहुत सुन्दर गीत थे। कुछ सौनेट भी थे।

समय बीतता रहा, कवि के जीवन में और दुःखदायक घटनाएँ हुई। कवि के एक और साथी कवि सतीश राय, जिनको कवि पुत्रों की भाँति प्यार करते थे, तथा शांति-निकेतन में अध्यापक थे, की सहसा चेचक से मृत्यु हो गयी।

१९ जनवरी १९०५ को एक और दुर्घटना हुई, कवि के पिता महार्षि देवेद्र नाथ स्वर्गवास हो गए। इन की मृत्यु से भारतीय इतिहास में एक युग समाप्त हो गया। धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागृति लाने में महाऋषि का नाम अमर रहेगा।

१९०५ का वर्ष बंगाल के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। भारत के अंग्रेज वाइसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन करने की घोषणा की। हिन्दु और मुसलमानों,

भारतीय कौम के दो अंगों को अलग करने के यत्न किए गए। यह भारतीय राष्ट्रीयता पर एक गहरी चोट थी। इस लिए लोगों ने इसको बहुत बुरा समझा तथा सारे बंगाल में हल चल मच गयी। अंग्रेज का यह अन्याय देख कर लोग घबरा उठे। सारा बंगाल जाग उठा। लोग अपनी भावनाओं को वश में न रख सके, अतः क्रांति की आग सारे बंगाल में फैल गयी। लार्ड कर्ज़न की नीति का विरोध किया गया। स्थान स्थान पर रोष प्रकट किए गए लोग, इस विभाजन को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं थे।

अब तक जो कवि अपनी साहित्यिक गतिविधियों में व्यस्त थे, कार्य क्षेत्र में उतर आए। बंग विभाजन के विरुद्ध आवाज़ उठाई और लोगों का नेतृत्व किया। कवि जलसों में बंग विभाजन के विरुद्ध अपनी कविताएँ पढ़ते और जब लोगों को पता चल जाता की कवि, जलसे में आ रहे हैं तो लोग हजारों संख्या में एकत्र होते। कवि बड़े भड़कीले भाषण देते तथा इस अवसर के लिए लिखे विशेष गीत सुनाते; कई जुलूसों का नेतृत्व कवि ने स्वयं किया। कवि के गीत, बंगलार माटी, बँगला जल' कलकत्ता की गलियों तथा सड़कों पर गूंज उठे। परिणाम स्वरूप हिन्दु और मुसलमानों ने एक दूसरे के राखी बांधी, आलिंगन किए तथा एकता का पूरा प्रमाण प्रस्तुत किया।

आन्दोलन में भाग लेने वाले छात्रों को स्कूलों और कालिजों से निकाल दिया गया। उनका कोई दोष नहीं था। केवल राष्ट्रीय गीत गाने का यह पुरस्कार दिया गया। इस लिए निष्कासित विद्यार्थियों की विद्या का प्रबन्ध करना आवश्यक था। कवि तथा कुछ अन्य लोगों ने मिल कर राष्ट्रीय

विद्या की योजना बनाई तथा एक परिषद की स्थापना की जिस के प्रिंसिपल प्रसिद्ध दर्शनिक योगी अरविंद घोष नियत हुए। कवि टैगोर ने इस परिषद के विद्यार्थियों के आगे कई भाषण किए, जिन का विषय था 'साहित्य सिद्धान्त'। तदनन्तर यह भाषण साहित्य में प्रकाशित किए गए। कवि की इच्छा थी कि लोगों में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न की जाए। कवि ने अहिंसा तथा असहयोग सम्बन्धी कई सिद्धांत निकाले, जिन में गांधी जी ने बाद में कुछ परिवर्तन किए।

इस समय कवि ने कई लेख, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर, विद्या पर, साहित्यिक समीक्षा, लोक साहित्य आदि पर लिखे। कवि की एक पुस्तक 'खैय्या' प्रकाशित हुई। 'मेरे मास्तिष्क में मृत्यु सागर पार करने के विचार भरे हुए थे। इस लिए मैंने इस पुस्तक का नाम 'खैय्या' रखा। कविताओं का वातावरण स्वप्नमय है। कवि का अन्तर थका हुआ तथा निढाल था। इस पुस्तक में कुछ गीत भी थे। इस समय में लिखे गए गीत तथा कविताएं गार्डनर, फ़रूट गैदरिंग, एवज़ं गिफ़्ट आदि पुस्तकों में प्रकाशित हुई।

कवि का जीवन दुःखों से भरता जा रहा था। घर में कई मौतें होने के कारण कवि का मन अत्यन्त दुःखी था। नवम्बर १९७ में कवि का छोटा पुत्र समीन्द्र, जो कवि से कुछ कुछ मिलता था, अनायास हैज़े का शिकार हो कर मर गया। यह वही दिन था जब पाँच वर्ष पूर्व कवि की पत्नी स्वर्गवास हुई थी। पत्नी गयी, दो प्यारे प्यारे बच्चे गए,

बड़ी लड़की की शादी हो गई, जो अपने पति के साथ बंगाल से बाहर रहती थी, बड़ा पुत्र कृषि उच्च शिक्षा लेने के लिए अमरीका चला गया तथा तीसरी पुत्री मीरा का विवाह कुछ मास हुए हो गया था। छोटे पुत्र के मरने से कवि सर्वथा एकाकी हो गया। कवि का मन बहुत ही उदास रहता तथा वह हर समय विचार मग्न रहता, अपने जीवन के बारे में विचार करता रहता। यदि संसार के अन्य लोग जो पास रहते हों, सुख पूर्वक रहते हों हंसी खुशी से अपना जीवन यापन करते हों तो दुःखी मन और भी दुःखी हो जाता है। इस लिए कवि ने सोचा कि क्यों न किसी एकान्त स्थान पर जा कर रहा जाए ताकि मन को शांति मिले। कवि अपनी ज़मीन पर चला गया। कवि की दुःखी भावनाएँ उस समय की कविता के माध्यम से प्रकट हुईं। कवि भगवान की याद में लीन रहने लगा तथा कविताओं के द्वारा ईश्वर चिन्तन करने लगा। कवि का धर्म में विश्वास और दृढ़ हो गया। जीवन तथा धरती से प्यार बढ़ता गया। वह मानवता से प्यार करने लगा, समस्त प्राणियों से प्यार करने लगा। उसका एक पुत्र चला गया, उसको शांतिनिकेतन में कई पुत्र मिल गए। अब कवि को न केवल शांतिनिकेतन के बालक विश्व भर के बच्चे अपने लगने लगे। वह बच्चों में घुलमिल जाना चाहता था। १९०९ में कवि ने एक सुन्दर नाटक 'शारोध उत्सव' लिखा, केवल अपने प्यारे बच्चों के लिए ही। इस में जीवन से प्यार करना सिखाया गया। यह नाटक अब तक बच्चों में लोकप्रिय है, जो शान्तिनिकेतन में प्रायः खेला जाता है। नाटक गद्य में है, कहीं कहीं गीत भी हैं। रंगमंच में बहुत सफल रहा है।

१९१० में कवि ने एक और नाटक 'प्रायश्चित' लिखा, जिस का वातावरण पहले नाटक से सर्वथा भिन्न है। इस की कथावस्तु कवि ने अपने ही लघु-उपन्यास 'बहोठाकरनीर-हाट' में से ली है।

इसी वर्ष अर्थात १९१० में कवि का एक और नाटक 'राजा' प्रकाशित हुआ, जिसका अँग्रेज़ी में अनुवाद 'दी किंग ऑव दी डार्क चैम्बर' नाम से किया गया। यद्यपि इस नाटक में रंगमंच विषयक कुछ कठिनाइयां थीं तथापि यह नाटक न केवल बंगाल में कई स्थानों पर सफलता पूर्वक खेला गया बल्कि जर्मनी, पैरिस तथा न्यूयार्क आदि में भी लोगों ने इस को बहुत पसन्द किया। इस के बाद सन् १९१२ में कवि का प्रसिद्ध नाटक 'डाक घर' प्रकाशित हुआ, जिस का अंग्रेजी अनुवाद 'पोस्ट-आफिस' के नाम से प्रकाशित हुआ। यह नाटक कवि की बहुत सुन्दर रचनाओं में से है। नाटक गद्य में है तथा इसमें एक भी गीत नहीं। यह कवि का सब से प्यारा नाटक है, जो विश्व में कई रचनाओं पर अभिनीत किया गया है। लन्दन तथा जर्मनी में भी इसे पसन्द किया गया। नाटक भाव पूर्ण है गत महायुद्ध के अवसर पर जब पैरिस में बम गिर रहे थे तो उस समय यह नाटक वहां के एक थियटर में खेला जा रहा था। कवि का 'डाक घर' के बाद का नाटक 'अचलात न' था जो केवल बँगला में ही प्रकाशित हुआ।

सन् १९१० में कवि की प्रसिद्ध पुस्तक 'गीताञ्जलि' (बँगला) प्रकाशित हुई। उसमें १५७ गीत थे, जिन में से बाद में कवि ने ५१ गीतों का अनुवाद करके अँग्रेजी गीताञ्जली प्रकाशित कर वाई।

जिस समय कवि का नाटक 'डाक घर' तथा गीत संग्रह 'गीताञ्जलि' (अँग्रेजी) प्रकाशित हुई, कवि के मन की अवस्था अद्भुत थी। उस के मन में शांति नहीं थी तथा वह बेचैन रहता था, "मैं बहुत उद्विग्न था, जैसे मैं अब हूं। इस उदासी में से मुझे बच्चे की स्वतंत्रता के लिये विश्वास का विचार प्राप्त हुआ, पर सँसार इस को अपनी चंगुल में रखना चाहता था। मैं सँसार को समझने के लिए उतावला था। मैंने अनुभव किया कि पश्चिम में मानवता की आत्मा के प्रयोग किए जा रहे हैं तथा वहाँ हो यह आत्मा प्रकट हो रही है। मैं और उद्विग्न हो गया। तीन चार दिन में डाक घर की रचना को तथा इसी समय गीताञ्जलि के लिए कुछ गीत लिखे। बहुत कुछ शान्तिनिकेतन में रह कर ही लिखा गया। मैं दिन भर लिखता रहा था तथा कई बार रात को भी लिखता था। मैं इन्हें प्रकाश में लाना नहीं चाहता था। में समझता था कि लोग निराश हो जाएंगे और कहेंगे कि 'मेनार तोरी' के बाद मेरी यह रचनाएँ घटिया हैं पर मैं जानता था कि ये मेरी अपनो थीं।"

जो लोग उस समय कवि के साथ शान्तिनिकेतन में रहते थे जानते हैं कि उस समय कवि कैसे रात की चान्दनी में आमों की वल्लरियों में घूमते थे। कवि बहुत कम सोते थे, केवल तीन चार घंटे ही। चान्द की चान्दनी उन को बाहर बुला लेती थी।

'गीताञ्जली' के गीत संसार भर में प्रसिद्ध हुए। कवि ने गीतों में ताज़गी भरी तथा स्वयं कवि प्रवृति के निकट आ गया। गीतों को पढ़ने से गाने में अधिक आनन्द आता है। गीतों की भाषा सरल तथा विचार उच्च हैं।

इन गीतों के प्रकाशित होने से कवि का नाम संसार के साहित्यिक क्षेत्र में चमका तथा कवि का इस क्षेत्र में स्थान बन गया। लोग चकित हो गए कि एक भारतीय कवि भी ऐसे गीत लिख सकता है, जो हृदय की गहराइयों में से निःसृत हुए हों।

सन् १९११ में कवि ५० वर्ष का हो गया। इन वर्षों में कवि के जीवन में कई घटनाएं हुईं, कवि अब प्रसिद्धि की चोटी पर खड़ा था। अब कवि का नया जोवन आरम्भ होने लगा तथा वह नये जीवन का साक्षात्कार करने के लिए तत्पर था। ऐसे में कवि ने अपने गत जीवन की घटनाओं पर प्रकाश डालना चाहा तथा उसने इस उद्देश्य से 'जीवन स्मृति' की रचना की। इस में कवि ने अपने यौवन का तीन चौथाई भाग लिया। यह कहना कठिन है कि कवि ने अपने जीवन के स्वर्गिय पृष्ट छोड़ दिए। कवि ने इस पुस्तक का परिचय देते हुए स्वयं लिखा है "जीवन की स्मृतियां जीवन का इतिहास नहीं बल्कि एक कलाकार की मौलिक रचना है।"

कवि ने बीते समय की स्मृतियाँ बहुत सम्भाल कर रखीं तथा जीवन की घटनाओं का वर्णन बड़े सुन्दर ढग से किया। कवि ने जो कुछ अनुभव किया, वह चित्रित कर दिया।

अब कवि का नाम बंगाल के साहित्यिक क्षेत्र में बहुत से लोग जान गए थे। कवि ने भारतोय साहित्य का नाम रौशन किया और संसार को प्रकट कर दिया कि 'भारत भी एक महान सुपुत्र उत्पन्न कर सकता है, जिसका काव्य आकाश में तारों की नाई चमक सकता है।

पच्चास वर्षों की आयु में ही कवि निढाल हो गया, वह शारीरक तथा मानसिक रूप से बीमार था, वह टूटा टूटा सा प्रतीत होता था, न शरीर में प्राण न और जीवन की तृष्णा, ऐसे लगता था कि कवि शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा, आकाश पर देदीप्यमान यह तारा डूब जाएगा पर व्यक्ति आज के अनुसार ही जीवित रहता है। कवि एक बार पुन: स्वस्थ हो गया। उसने साहित्य के क्षेत्र में पुन: प्रवेश किया।

यह कहना ठीक नहीं कि नोबल पुरस्कार मिलने से पूर्व भारत में कवि का आदर सत्कार नहीं किया गया था। इससे बहुत समय पूर्व कवि के गीत बच्चे बच्चे की जिह्वा पर थे। गलियों और सड़कों से उसके गीतों की गूंज सुनाई देती थी। इससे पूर्व कवि का आदर तब से ही होने लगा था, जब वह अभी बच्चा ही था। बंगाला साहित्य सम्राट बंकिम चन्द्र चैटर्जी कवि की रचनाओं से बहुत प्रभावित हुए।

सन् १९१२ में बंगाल के पढ़े लिखे तथा सयाने लोगों ने कवि का सम्मान करने का निश्चय कर लिया। २८ जनवरी १९१२ को कलकत्ते के टाउन हाल में कवि की जुबली मनाने के लिए एक समारोह किया गया जिसका प्रबन्ध 'बंग साहित्य परिषद' ने किया। हाल श्रोताओं से भरा हुआ था। हर प्रकार के भिन्न-भिन्न विचार रखने वाले लोग वहां पर कवि को श्रद्धांन्जलि अर्पित करने के लिए इकठ्ठे हुए। कवि की साहित्यिक उपलब्धियों की प्रशंसा की गयी तथा उसकी इन सफलताओं की श्लाघा की गई।

उस समारोह में एक प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया गया तथा भारत सतकार से प्राथना की गयी कि कवि की साहित्यिक सेवाओं को सामने रखते हुए कवि को सर की

उपाधि दी जाए। यह प्रस्ताव श्री द्विजेन्द्र लाल राय, प्रसिद्ध नाटककार की ओर से पेश किया गया, जो स्वयं कवि के समालोचकों में से थे।

अब कवि के मन में पुनः पश्चिम की ओर जाने की चाह उत्पन्न हुई, वह पश्चिमी सभ्यता से कुछ और सीखना चाहते थे, वह शीघ्र ही कुछ प्राप्त करना चाहते थे क्योंकि वह जानते थे कि वह शीघ्र ही कुछ लौटा भी सकते हैं। कवि ने तीसरी बार यूरोप जाने की तैयारी कर ली। उन्होंने २९ मार्च १९१२ को कलकत्ते से चलना था, सारे प्रबन्ध पूरे हो चुके थे पर एक रात पहले कवि सख्त बीमार हो गए तथा डाक्टरों ने उनकी यात्रा स्थगित कर दी। कवि का सामान जो पहले ही मद्रास पहुंच चुका था वापिस मंगवाया गया। इस अप्रत्याशित परिवर्तन से कवि के मन को बहुत कष्ट पहुंचा तथा उन्हें बहुत निराशा हुई। कवि का मन भर गया तथा शान्ति प्राप्त करने के लिए शीलाइधा चले गए और अपनी साहित्यिक गतिविधियों में लीन हो गए। कवि ने गीताञ्जलि के गीतों का अंग्रेजी अनुवाद करना आरम्भ किया। उन्होंने लिखा है, "मैंने अपना समय काटने के लिए ही गीताञ्जलि के गीतों का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया। ये गीत मेरे बड़े प्यारे गीत थे इस लिए मैं उन्हें दूसरी बार पढ़ कर खुशी प्राप्त करना चाहता था। मैंने अनुभव किया कि मेरे अनुवाद स्कूल के विद्यार्थी के अभ्यास सरीखे हैं। लोगों ने उन्हें पसन्द किया।" मैं जहाज़ में बैठ कर भी गीतों का अनुवाद करता रहा और आनन्द प्राप्त करता रहा। मैं लन्दन पहुंच कर होटल में ठहरा, यहां आकर मुझे बहुत निराशा हुई। जलपान के बाद होटल खाली हो जाता और मैं शोर भरे बाज़ारों की ओर

देखता रहता। मैं घबरा गया और वापिस लौटने की सोचने लगा। मानवता सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करनी असम्भव है। मैंने सोचा क्यों न रोथनस्टाइन को मिला जाए, जिसको पहले मैं अम्बींद्र नाथ के घर मिल चुका था, पर उसे किसी ने नहीं बताया कि मैं कवि हूं। वह मुझे नाम मात्र ही जानता था और केवल इतना ही कि मेरा टैगोर परिवार से सम्बन्ध है। मैंने उसे टेलीफ़ोन किया। वह तुरन्त आ गया और मेरे रहने का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। मुझे अपने घर के साथ का मकान दिला दिया। वह मेरा पड़ोसी बन गया तथा बहुत बार मेरे घर आता था। एक दिन उस ने कहा कि "मैंने सुना है कि आप कवि हैं। क्या आप मुझे अपनी रचनाओं के बारे में बता सकते हैं? मैंने उसे बताया कि मेरे पास कुछ रचनाओं के अनुवाद हैं पर अनुवाद अच्छा नहीं, परन्तु वे अनुवादों को अपने साथ ले गए।

दो दिनों के पश्चात वह लौट कर कहने लगे, 'ये अति सुन्दर रचनाएं है और ऐसी रचनाए उन्होंने पहले कभी नहीं पढ़ीं।" मैंने समझा था कि वह कलाकार है और साहित्य सम्बन्धी कुछ नहीं जानता। वह मेरे मुख की ओर देख कर समझा कि मुझे विश्वास नहीं आ रहा। उसने रचनाओं की प्रतिलिपियां टाइप करवा के यीटस, ब्रैडले तथा ब्रुक को भिजवा दीं। ब्रैडले ने उत्तर दिया कि उसे वास्तविक कवि ढूंढने की आशा कम थी। अन्य दो भी उत्साहित हो गए। रोथनस्टाइन ने रचना घर पर पढ़ कर सुनाई। कई सज्जन हाज़िर थे। यहाँ ही मेरा मेल सी.एफ. एण्ड्रयू के साथ हुआ, मैंने उन से पहले कभी भेंट नहीं की थी। यीट्स ने कुछ लघु कविताएं पढ़ीं; मैं घबरा गया, इस के साथ इन पर प्रभाव

कैसे पड़ सकता है ? मैंने पूछा वह अपने मन में क्या सोचेंगे ? उन्होंने मुँह पर कोई चिह्न प्रकट नहीं होने दिया। मैं निराश हुआ कि यीटस ने मेरे साथ अन्याय किया है। अगले दिन मुझे कई पत्र प्राप्त हुए, मेरा भय निकल गया, उनका यह रंगरूप देख कर। मुझे धीरे धीरे पता चला कि वे प्रशंसक हैं।'

कवि ने लन्दन से अपनी भतीजी इन्दिरा को गीताञ्जलो के अनुवादों के बारे में लिखा, "मुझे अब तक समझ नहीं आता कि लोगों ने इन्हें कैसे पसन्द किया है। यह तो सभी जानते ही हैं कि मुझे अंग्रेजी लिखना नहीं आती और यह बताने में मैंने भी कभी संकोच नहीं किया।"

कवि शीलाइधा में कुछ देर बीमार रहा। इस समय कवि ने कुछ और गीत भी लिखे जो 'गीति माल' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए। इन में १७ गीत उस गीताञ्जलि के अंग्रेज़ी संकलन में सम्मिलित कर दिए। कई गीतों में कवि की निराशा स्पष्ट प्रकट होती है "मैं दरिया के किनारे बैठ कर अपना समय काटता रहता था। नौका की प्रतीक्षा करता था पर वह नहीं आती।" यह पुस्तक भी गीतों की बहुत सुन्दर पुस्तक है। कवि भगवान के अस्तित्व में विश्वास प्रकट करता है और प्राकृतिक सौन्दर्य का उपासक है।

अन्त में कवि २७ मई १९१२ को कवि अपनी विदेश यात्रा के लिए रवाना हुआ। उसके साथ उसका पुत्र रथीन्द्र नाथ और पुत्री प्रोतिमा थी। जब कवि लन्दन पहुंचा तो उसको वहाँ कोई नहीं जानता था। कवि बिना समय निर्धारित किए रोथनस्टाइन को मिलने के लिए चला गया

और कैसे उन्होंने अपनी अनूदित रचनाएं उसको दीं, इसकी चर्चा की जा चुकी है।

यीट्स ने जब रोथनस्टाइन के द्वारा गीताञ्जलि के गीतों के अनुवादों का अध्ययन किया तो चकित हो गया। उसने पुस्तक अंग्रेजी संकलन की भूमिका में लिखा, "मैं कई दिन इन गीतों को अपने पास रखा और रेल में, बसों में और होटलों में बैठ कर इन्हें पढ़ता रहा। कई बार मुझे कापी बन्द कर देनी पड़ती ताकि कोई अपरिचित मनुष्य न जानें कि मैं कैसे प्रभावित हो रहा हूं।"

रोथनस्टाइन ने इंडिया सोसायटी को परामर्श दिया कि 'गीताञ्जलि' का अँग्रेज़ी संकलन प्रकाशित किया जाए, भूमिका लिखनी यीट्स ने स्वीकार कर ली है। सोसायटी ने सुझाव स्वीकार कर लिया और पुस्तक प्रकाशित करवाने का प्रबन्ध होने लगा।

अक्तूबर १९१२ में कवि अमरीका चला गया, उसका पुत्र तथा पुत्र वधु भी साथ थीं। यहां कवि ने अपने पुत्र के परामर्श पर हावर्ड विश्वविद्यालय में लेक्चर दिए जो बाद में साधना शीर्षक से प्रकाशित हुए। इन भाषणों में कवि ने 'प्राचीन भारत की आत्मा, सम्बन्धी व्याख्यान दिया। अभी कवि अमरीका ही थे कि लन्दन में गीताञ्जलि का अँग्रेजी सँस्करण इँडिया सीसायटी की ओर से प्रकाशित किया गया। पहले केवल ७५० प्रतियां ही प्रकाशित हुईं। तदनन्तर मैकमिलन कम्पनी की ओर से और प्रतियां प्रकाशित की गयीं।

पुस्तक प्रकाशित होने की देर थी कि विश्व भर के साहि-

त्यिक क्षेत्र में हलचल मच गयी, कहीं प्रशंसा हुई तो कहीं निन्दा। लोग चकित हो गए कि कोई ऐसे मधुर सुन्दर तथा प्यारे प्यारे गीत लिख सकता है। गीत पढ़ कर लोगों की आंखें चुँधिया गयीं : स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि कवि सफ़लता प्राप्त कर रहा है। कवि की महानता की अब कोई बराबरी नहीं कर सकता, वह आकाश पर प्रकाशित होने लगा।

अज़रा पाऊँड ने विचार प्रकट किया,' मुझे यीट्स को मिले लगभग एक मास हो गया है। वह बहुत उत्साहशील था, इस महान कवि के मिलने पर 'हम सब से महान'। यदि इन गीतों में कोई दोष है, मैं नहीं मानता कि कोई है, पर यदि इन में कोई गुण है तो वह यह कि आप साधारण पुरुष इन को समझने में असमर्थ हैं।"

अमरीका में 'टाइम्स' ने लिखा, "हम में से कुछ भारतीय कवि के जादू में फंसने से इनकार करेंगे क्योंकि यह दर्शन-विज्ञान उन के दर्शन विज्ञान की भाँति नहीं। यदि काव्य हमें विदेशी तथा अनोखा लगता है तो हमें पहले अपने पर एक प्रश्न करना चाहिए कि दर्शन विज्ञान है क्या? हमारे अपने विचारों में बहुत व्याकुलता है अतः हमारे पास कुछ भी नहीं जिसका कवि वर्णन कर सकें।"

लन्दन के लोगों ने तो कवि के गीतों की बहुत प्रशंसा की और कवि यह सुन कर स्वाभाविक रूप से बहुत पसन्द था।
भारत में और भारतीयों की ओर से तो प्रसन्नता प्राप्त होनी आवश्यक थी।

वसंत कुमार राय ने, जो उस समय अमरीका में ही थे,

कवि को मिल कर सुझाव दिया कि उन्हें अपनी अन्य रचनाओं का अनुवाद भी अंग्रेजी में प्रस्तुत करना चाहिए क्योंकि पहले या बाद में कवि को साहित्य का नोबल पुरस्कार तो मिल हो जाना है।

जनवरी १९१३ में कवि शिकागो गए और 'भारत की प्राचीन सभ्यता के सिद्धाँत' तथा बुराई की समस्या पर व्याख्यान दिए। फिर न्यूयार्क से हो कर अप्रैल १९१३ में कवि लन्दन वापिस आ गए, जहां कैक्सटन हाल में भाषण दिए। अब लन्दन में कवि परदेसी नहीं था क्योंकि उस की तीन पुस्तकें दी गार्डनर, दी क्रैसेट मून और 'चित्रा' प्रकाशित हो चुकी थीं।

सितम्बर १९१३ में जब "मैं शान्तिनिकेतन था कि अचानक कुछ शोर सा सुना और कुछ मास्टर भागते हुए आए जिन्होंने कुछ तारें उठाई हुई थीं। हमारे पास एक महान समाचार है, कवि को नोबल पुरस्कार मिल गया है। यह सब के लिए हर्ष का विषय है। विद्यार्थियों को पता नहीं था कि नोबल पुरस्कार क्या है परन्तु वह इतना अवश्य समझ गए थे कि उन के गुरुदेव ने कोई महान कार्य किया है। उन्होंने शांतिनिकेतन का चक्कर काटते हुए 'आमाधेर शांतिनिकेतन' गीत कई बार गया। छात्रों ने उनके पाँव छुए और आशीर्वाद प्राप्त किया। सभी प्रसन्न थे। सारा वातावरण खुशी से भर गया, गुरुदेव ने महान कार्य जो किया था।

कवि स्वयं भी प्रसन्न था। हर मनुष्य अपनी प्रसन्नता सुन कर प्रसन्न होता है, यदि वह नहीं होता तो मनुष्य ही नहीं। कवि ने भारत का नाम सारे संसार में चमका दिया, रौशन कर दिया।

कवि को नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ, उनकी योग्यता की वजह से। पश्चिम ने उनकी महानता को स्वीकार किया। एशिया में भी एक ऐसा सुपूत जन्म ले सकता है, पश्चिम वासियों को पता लग गया। कवि प्रसिद्धि की अन्तिम सीढ़ी भी चढ़ गया। वह उस सिखर पर पहुंच गया जहां से पतन होना असम्भव होता है। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक डिस्कवरी आफ़ इण्डिया में लिखा "धीरे धीरे कवि का स्थान इतना ऊँचा हो गया जहां उसको कोई ललकार नहीं सकता था। उसने न केवल बंगाल में ही, जिस भाषा में वह लिखता था, स्थान बनाया, बल्कि कुछ सीमांतर समस्त भाषाओं को नये साँचे में ढाला।"

कवि यूरोप तथा अमरीका से वापिस आया तो उस का दृष्टिकोण विशाल हो गया। वह अब सम्पूर्ण विश्व का नागरिक बन गया, वह अब सम्पूर्ण संसार का अपना बन गया, निरा भारत का ही न रहा। वह न केवल संसार में ही प्रसिद्ध हो गया बल्कि संसार से अनुभव प्राप्त करने लगा। संसारके किसी भी कोने में होने वाला अन्याय कवि सहन नहीं कर सकता था, जैसे शरीर के किसी एक अंग पर हुई पीड़ा सारे शरीर को कष्ट पहुंचाती है, इसी प्रकार संसार के किसी भी कोने में पीड़ा और अन्याय को देख कर उसकी आत्मा तड़प उठती, उसका शरीर काँप उठता।

इस समय कवि के दो विदेशी मित्र सी. एफ. एण्डरिऊज तथा डब्लू. डब्लू. पीयर्सन शान्ति निकेतन आ टिके तथा सेवा भाव से अपना सम्पूर्ण जीवन संस्था को अर्पित कर दिया।

सन् १९२३ के अन्त में एक विशेष कान्वोकेशन कर के

कवि को डाक्ट्रेट दी गई। कवि की साहित्य सेवा दृष्टिगत रखते हुए कवि को यह सम्मान दिया गया।

इस वर्ष कवि जहाँ भी गए लोगों ने उन का गर्मजोशी से स्वागत किया पर कवि साहित्य रचना की ओर बहुत ध्यान न दे सके। शायद यही एक वर्ष है, जब कवि की कोई पुस्तक बँगाली में प्रकाशित न हुई। कवि ने कुछ गीत अवश्य लिखे थे कुछ यूरोप में भ्रमण करते समय, कुछ शान्तिनिकेतन आकर। यह गीत बाद में 'गीत माला' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए। ये गीत कवि की ईश्वर में आस्था प्रकट करते हैं।

मैं जानता हूं, यह एक दिन बीत जाएगा,
यह दिन बीत जाएगा।
कि एक दिन, किसी दिन,
सूरज कोमल हंसी के साथ
मेरे मुंह की ओर देखेगा,
और विदा कर जाएगा।

इस समय कवि ने कहानियाँ लिखीं जिन में वह ताजगी न भरी जा सकी जो कवि की पहली कहानियों में मिलती है क्योंकि कवि की पुन: स्थिति कुछ और तरह की थी। पद्मा नदी के किनारे बैठ कर लिखी कहानियाँ कवि को अति सुन्दर कहानियां थीं। अब कवि ने मध्यवर्ग के लोगों का वर्णन अपनी कहानियों में किया। इन कहानियों में पत्नी की चिट्ठी 'अपराजिता' तथा 'बोशतमी' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

शान्ति निकेतन में गर्मी की छुट्टियां हुईं तो कवि रामगढ़ चले गए। पहले थोड़ी देर तो बहुत प्रसन्न रहे पर शीघ्र ही उनका दिल उक्ता गया और वह वापिस आने के लिए उता-

चले हो गये। कवि का मन बहुत दुःखी था और उन्हें समझ नहीं आता था कि वह क्या करे ? जो पत्र उन्होंने अपने मित्रों को लिखे उन में से इसी स्थिति का पता चलता है।

इस व्याकुलता की स्थिति में कवि एक स्थान से दूसरे स्थान घूमते रहे, कभी शान्ति निकेतन आ जाते कभी दार्जीलिंग, कभी आगरा और कभी इलाहाबाद चले जाते।

यूरोप में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ तो सारा यूरोप युद्ध की लपेट में आ गया। कवि ने इस युद्ध को मानवता के हृदय का नासूर समझा। कवि ने अपने ये भाव शान्तिनिकेतन में विधार्थियों के समक्ष भाषणों में व्यक्त किये।

मार्च १९१५ का दिन भारत के इतिहास में इस लिए याद रखा जाएगा कि इस दिन कवि और महात्मा गांधी की प्रथम भेंट हुई। यह भेंट ऐतिहासक है। गांधी जी दक्षिणि अफ्रीका से अभी अभी लौटे थे। और भारत में अभी अच्छी तरह टिके भी न थे। इस से पूर्व गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका से २० विधार्थी भारत भेजे थे। सी. एफ. एण्ड्रयू के सुझाव पर कवि ने इन विद्यार्थियों को शान्ति निरोतन में रखना स्वीकार कर लिया। गाँधी जी इन छात्रों से भेंट करने के लिए आये। कवि ने गाँधी जी के इन विद्यार्थियों से बड़ा प्यार किया और इन को बड़े आराम से रखा।

गाँधी जी लगभग एक सप्ताह शान्तिनिकेतन रहे। विद्यार्थियों पर उनके व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा। अभी गांधी जी को महात्मा भी नहीं कहा जाता था। कवि तथा गांधी जी की घनिष्ट मित्रता हो गयी, इनकी मैत्री कायम रही।

गांधी जी ने कवि को सुझाव दिया कि शान्तिनिकेतन में

छात्रों को अपना कार्य स्वयं करना चाहिये। मजदूरी देकर कराने वाले सारे कार्य उन्हें स्वयं करने चाहिये। वे अपने वर्तन स्वयँ साफ करें, अपने कपड़े धोएं तथा अन्य सफाई भी वे स्वयं ही करें। समस्त छात्रों और अध्यापकों ने इस सुझाव को स्वीकार करने की इच्छा प्रकट को, जब सारे कवि के पास गये तो उन्होंने हंस कर कहा कि प्रयोग अवश्य करना चाहिये। प्रयोग हुआ परन्तु कुछ कारणों मे सफल न हो सका। फिर भी वर्ष में एक दिन १० माच को जब प्रयोग किया गया गांधी पूर्णिमा मनाई जाती है। इस दिन सब नौकरों को छुट्टी दी जाती है और विद्यार्थी अपना समस्त कार्य स्वयं करते हैं, जिस में भारतीय सभ्यता का प्रमाण भो मिलता है।

२० मार्च १९१५ को लार्ड माइकल जिन्होंने १९१४ में स्वीडिवा अकादमी की ओर से नोबल पुरस्कार डिप्लोमा तथा मैडल दिया था, शान्तिनिकेतन आए क्योंकि पश्चिमी देशों से सम्मान प्राप्त करने के बाद अंग्रेजों ने कवि का बहुत आदर करना आरम्भ कर दिया था। बंगाल के बड़े सरकारी अफसर शान्तिनिकेतन आये। लार्ड माइकल के सम्मान का पूरा प्रबन्ध किया गया। लार्ड का शाही स्वागत किया गया। कई देश भक्तों ने कवि के इस व्यवहार की निन्दा की। पर कवि के हर व्यवहार की निन्दा करना कई लोगों का धर्म बन गया था। कवि जो भी करता उसको आलोचना की जाती, उस कवि की जो स्वदेश की मिट्टी से भी प्यार करता था, उस कवि की जिसने भारत में जन्म ले कर ही अपना जीवन सार्थक समझा था।

इसी वर्ष कवि के दो उपन्यास प्रकाशित हुए। 'घरे बाहरे' उपन्यास में नये तथा पुराने की टक्कर है सच्चाई तथा

सिद्धान्त की टक्कर है।

सन् १९१४ तथा १९१६ के बीच कवि ने जो गीत लिखे वे 'बालेका' नामक पत्रका में प्रकाशित हुए। यह उस समय की बात है जब कवि लोक प्रियता के शिखर पर खड़ा था।

जनवरी १९१६ में कवि का प्रसिद्ध नाटक 'राजा और रानी' प्रकाशित हुआ जो रंगमचं पर खेला गया। वहां तिल धरने को भी स्थान न था। क्योंकि इस नाटक में शान्तिनिकेतन के छात्रों तथा कवि-परिवार के सदस्यों ने स्वयं भाग लिया था। गीतों के लिए कवि ने संगीत रचना भी स्वयं की।

मई १९१६ में जब कि अभी यूरोप में महान युद्ध छिड़ा हुआ था कवि ने अपना विदेश यात्रा आरम्भ की। सर्व प्रथम वह जापान गये। 'प्रवासी' पत्रिका में उन्होंने 'जापान की यात्रा' शीर्षक लेख प्रकाशित किए। कवि ने 'प्रवृति का प्रतिशोध', 'कुर्बानी' 'राजा और रानी' 'मलीनी' आदि रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया। सारे अनुवाद सप्ताह भर में पूरे किये गये। यह कवि का बहुत श्लाहनीय कार्य था।

कवि के साथ एण्ड्रयू तथा पियर्सन भी जापान गये। कवि जापान में लगभग तीन मास रहे। उन्होंने जापानियों के जीवन का कई पक्षों से अध्ययन किया। कवि वहां के लोगों के अनुशासन से बहुत प्रभावित हुए। इसका वर्णन उन्होंने अपने लेखों में किया। यहां पर लिखे गये गीत कवि की 'सट्रे-बर्डल' नाम पुस्तक में संगृहीत है। साहित्यिक दृष्टि से ये गीत चाहे जैसे हों परन्तु हैं बहुत रोचक।

जापानियों ने कवि का उत्साह से स्वागत किया, परन्तु

जब कवि ने अपने भाषणों में जापानियों को कुछ चेतावनी दी तो यह उत्साह मन्द पड़ गया।

सितम्बर १९१६ में कवि जापान से अमरीका चले गये, यह उनकी दूसरी अमरीका यात्रा थी। यहां पर दिये गये भाषण राष्ट्रवाद तथा व्यक्तित्व Nationalism and Personality नामक पुस्तक में संगृहीत है। कवि के अमरीकी राष्ट्रवाद की निन्दा अमरीकियों को न अच्छी लगी और कुछ अन्य कारणों से कवि जनवरी १९१७ में अमरीका से जापान लौट आये। और वहां से मार्च १९१८ में भारत लौट आए।

भारत में यह समय राजनीतिक उथल पुथल का था। जब भारतीय युवक किसी अन्य राष्ट्रवाद की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहूति दे रहे थे, इस देश में राष्ट्रवाद को कुचला जा रहा था। भारत की स्वतन्त्रता की इच्छुक एक स्त्रि को सरकार ने नज़रबन्द कर दिया। वह स्त्री थी एनी। बसन्त जो निर्भय हो कर अंग्रेरेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ी। कविने इस स्त्री की नज़रबन्धी के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने पुनः राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया। जब कवि के देशवासियों पर अत्याचार हो रहे हों तो वह चुप कैसे रह सकता है? कलकत्ता में एक जलसा हुआ जिसमें कवि ने एक राष्ट्रीय गीत गाया। श्रोतागण चकित हो गये और कवि की राष्ट्रवादी भावनाएं प्रकट हुई।

भारत में राजनैतिक अवस्था अधिकार से बाहर हो रही थी। अँग्रेज का विश्वास दृढ़ हो गया था कि वह अब महान युद्ध में विजय प्राप्त कर लेगा, इसलिए उन्होंने अब

भारतीओं को और दबाना शुरु कर दिया। अत्याचार शिखर पर पहुंच गया और सारे देश में हाहाकार मच गया। कवि देश में हुई घटनाओं को दूर नहीं रह सकते थे। देशवासियों पर अत्याचार देख कर कवि की आत्मा तड़पती रहती। इसी समय कवि ने अपने भाव इस भांति पकट किए। कितना देश प्यार है,कैसे अंगड़ाईयें ले रहा है देश प्यार।"मैं भारत में पुनः पुनः जन्मू उसकी निर्धनता, अज्ञान और अशिक्षित होने पर भी मैं उसे दिल से प्यार करता हूं।"

सन् १९१७ में कवि की बड़ी पुत्री सख्त बीमार हो गई। कवि की मृत्यु के भयानिका से भय लगने लगा। कवि ने कैसे अपने परिवार में हुई मौतों को सहन किया कोई महान व्यक्ति ही सहन कर सकता है। कवि का प्यारी पुत्री सन १९१८ में आकर मर गई। जब लोग और कवि के मित्र कवि के पास अफ़सोस करने गए तब वह अपनी आत्मा को शान्त रखने के लिए इधर उधर की बातें करते रहे। जो परेशानी के दिन कवि ने घर व्यतीत किए इन दिनों की स्मृतियां उसने अपनी पुस्तक 'पलेटाके' में प्रकट किए।

अब कवि का स्वास्थय गिरना शुरु हो गया। वह बीमार रहने लगे। अधिक कार्य करना कठिन हो गया। परन्तु कवि को अब विश्राम कहां, वह तो अब अपनी धुन में मग्न थे, अपने उदेश्य को पूर्ण करना चाहते थे।

तेरह अप्रैल १९१९ का दिन भारत के इतिहास में 'काला दिन' माना गया है। इस दिन जलियांवाले बाग का हत्याकांड हुआ। महायुद्ध के दिनों में अंग्रेज ने भारतीओं के साथ कुछ वचन किये थे कि युद्ध समाप्त होने पर वह अवश्य कुछ न कुछ उन्हें देगा। पूर्ण स्वाराज्य नहीं तो कम से कम स्वतंत्रता के

माग पर अवश्य भारत को चलाऐगा, परन्तु हुआ इसके विपरीत। स्वाराज माँगने वालों को लाठियां और गोलियां मिली। वैसाखी वाले दिन अमृतसर में जलियांवाले में जनरल डायर द्वारा निहत्थे और निराश्रित लोगों पर ऐसा गोलीयाँ बरसाई गईं कि उसकी चोट से मनुष्यता लज्जित हो जाती है। रक्त की होली खेली गई, हजारों शहीद हो गए, बच्चे यतीम हो गए, स्त्रीयों के सिन्दूर पुछ गए।

अंग्रेज ने समाचार पत्रों पर रोक लगा दी। कोई इस हत्याकॉड का समाचार नहीं छाप सकते थे। परन्तु पहुंचते २ यह समाचार कवि तक शान्तिनिकेतन पहुंच ही गया। यह सतंभित और परेशान हो गए। निहत्थों पर इतना अत्याचार ! उनकी आत्मा तड़प उठी कवि अपनी माताओं और बहिनों का हुआ निरादर सहन न कर सके। स्वतन्त्रा मांगने वालों, स्वाभिमानी जीवन मांगने वालों की छातीआं में धड़ाधड़ बजती गोलियां की आवाज कवि की आत्मा को चीरने लगा। विधवा माताओं और अनाथ बच्चों और नवविवाहत युवतियों का चीत्कार कवि के कानों को फाड़ने लगा। इस अवस्था में कवि कैसे प्यार और स्नेह के गीत गा सकता था ? चन्द्रमा की चाँदनी और प्रतिदिन उदय होता सूर्य कवि को भूल गया, उनकी आत्मा झनझना उठी, शरीर का अंग २ थरकने लगा, अत्याचारियों का अत्याचार देख कर।

कवि ने मन में निर्णय कर लिया कि वह अब अंग्रेज की ओर से दी गई 'सर' की उपाधि वापिस कर देंगे। कवि ने उपाधि लौटाते समय वायसराय को एक पत्र लिखा जो इतिहास में स्मृतिचिन्ह बना रहेगा। इस घटना का होना था

कि देश की राष्ट्रीय उमंग को नया उत्साह और जोश मिला, जलियां वाले बाग की घटना समस्त देश को राष्ट्रीय घटना बन गई। साम्राज्यवादी सोचने लगे और विश्व के निरपक्ष लोगों का ध्यान इस बड़े अत्याचार को ओर दिलाया। इसी वर्ष १९१९ में कवि ने एक और पुस्तक "लिपीका" लिखी। इसमें केवल छोटे२ चित्र हो थे जो हैं तो गद्य में परन्तु उनमें लय और सुन्दरता कविता जैसी है।

कवि १५ मई १९२० में फिर अपनी योरुप यात्रा पर चल पड़े। उनके साथ उनका पुत्र व पुत्रबधु भी थी। लन्दन पहुंच कर कवि अपने पुराने मित्रों से मिले परन्तु कवि ने अब अनुभव किया कि वातावरण अब और तरह का है। अंग्रेज़ कवि के 'सर' की उपाधि वापिस करने पर सन्देह भरी दृष्टि से देखने लग गए थे। अब उसका वह स्वागत न किया गया जो पहले हुआ करता था।

लन्दन से कवि पैरिस पहुंचा। जहां कवि प्रसिद्ध दार्शनिक बरगसन और प्रोफैसर 'साईवेन लेवी' को मिला, पैरिस से हालैंड जहां कवि ने श्रोतों से भरे हुए हाल में भाषण दिया। बैलजियम में कवि का बादशाह की ओर से स्वागत किया गया। लन्दन पहुंच कर कवि ने अमेरिका जाने का निर्णय कर लिया। उसे अमेरिका आवश्य जाना चाहिए और पूर्व की प्रार्थना को सुनना ही चाहिऐ।

न्युयार्क पहुंच कर कवि ने कई स्थानों पर भाषण दिये। भीड़ इतनी होती थी कि कितने श्रोते स्थान न मिलने के कारण निराश हो कर लौट जाते। मार्च १९२१ में कवि लन्दन लौटे, जहां से हवाई जहाज में बैठ कर पैरिस पहुंचे। वहां वह रोमन रोलैंड से मिले। सटैरसबरग, जनेवा, स्वीडन,जैकोसलेवेकिया

आदि योरुपीयन देशोंमें होते हुए कवि जुलाई १९२१ में भारत लौट आए । इसी वर्ष जरमनी में कवि का जनम दिन मनाया गया और विशेष सभा की ओर से बहुत सी पुस्तकें कवि को शान्ति निकेतन के लिए भेट की गई ।

कवि अपने इस योरुपीय दौरे से बहुत प्रभावित हुआ । अब उसके सुपने पूरे होने वाले थे । कवि की इच्छा, कि अन्तर-राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना और संसार में सभ्यता के आदान प्रदान के साथ ही मनुष्यता आगे बढ़ सकती है, पूर्ण हुई, और २३ दिसम्बर १९२१ को शान्ति-निकेतन में विश्वभारती अन्तरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय का उदघाटन किया गया । जिसके विषय में विस्तार से वर्णन पहिले किया गया है

१०

कवि टैगोर के अन्तिम वर्ष

(१९२२--१९४१)

सन् १९२२ में कवि को आयु ६२ वर्ष की हो चुकी थी और उनकी प्रसिद्धी शिखर पर पहुंच चुकी थी। इस वर्ष कवि ने दक्षिणी भारत और लंका की यात्रा की। १९२३ में वह सिन्ध और पच्छिमी भारत को रियास्तों में गए और कुछ समय पश्चात उन्हें पीरु गणतँत्र की ओर से निमंत्रण पत्र आ गया ताकि वह देश की स्वतँत्रता शताब्दी में भाग से सकें। कवि ने जाना स्वीकार कर लिया और तैय्यारी प्रारम्भ कर दी, परन्तु भाग्य ने उसका साथ न दिया और वह बीमार पड़ गए।

सन् १९२५ में कवि इटली गए जहां वह मसोलनी से मिले। वहाँ के लोगों ने कवि का हार्दिक स्वागत किया, स्थान२ पर समारोह किए गए, पुष्पों के हार पहनाये गये और

कवि की जय जयकार हुई वह बहुत प्रभावित हुए। वह शायद प्रथम अवसर था जब कि किसी विदेशी का इटली को प्रथ्वी पर इतना शानदार स्वागत किया गया हो। प्यार में ओत प्रोत मनुष्यों ने उन्हें घेरे रखा, वह इटली का दौरा करते रहे, लोगों से मिलते रहे। उस देश के विषय में परिचय प्राप्त किया और वहां के साहित्य को पढ़ा।

ऐक दिन कवि स्कूल के छात्रों के ससक्ष भाषण देने गए, लगभग एक डेढ़ हजार बच्चों की उपस्थिति होगी, परन्तु दर्शक होंगे तीस चालीस हजार के लगभग। मानवीय सिर ही सिर। सभी लोगों ने प्यार भरे दिल से कवि का हार्दिक स्वागत किया जिसका कवि के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। सभी ने प्रसन्नता के गीत मिलकर गाए अत्यन्त मनमोहक दृश्य था सुन्दर दृश्य। जाने के समय सभी ने उठ कर रोमन ढग से कवि को अलविदा कही। कवि ने बच्चों को आशीर्वाद दिया और मधुर स्मृतियों संभालते हुए वहां से चल पड़े।

कवि ने अपना प्रसिद्ध नाटक "चित्तरनंगदा" चुनवें दर्शकों के समक्ष खिलवाया, रोम विश्व विद्यालय युनिवरसिटी) के चांसलर ने इस अवसरका वर्णन इस भाँति किया "बड़े दरबाजे के सामने भीड़ इतनी अधिक थी कि कवि तथा स्त्रीयों को पिछले दरवाजे से गुजरना पड़ा। कवि बोलने के लिऐ उठे तो उनका लोगों ने तालियों से स्वागत किया। जब तक वह बोलते रहे हाल तालियों से गूंजता रहा। बाहर लोग हजारों की संख्या में प्रतीक्षा करते रहे ताकि कवि गुजरे और वे उनके दर्शन करें तथा श्रद्धांजली भेट करें।" कवि इस यात्रा में स्वीटज़रलैंड, अस्ट्रीया, नार्वे, डेन्मार्क, जर्मनी, जैकोस्लवेकिया, युगोस्लवा-

किया, रुमानिया, ग्रीस तथा मिश्र भी गए।

देश देशानतर कवि घूमे। योरुप का कोई भी देश न रहा जहाँ कवि ने अपने चरणकमल न धरे हों। जहां जाते लोग उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ते, कई २ घण्टे कवि के दर्शन के लिए प्रतीक्षा करते। कई स्थानों पर कवि का प्रसिद्ध नाटक 'डाकघर' खेला गया, जिसको लोग अत्यन्त पसन्द करते तथा हजारों की संख्या में एकत्रित होते। कवि सारा दिन लोगों से मिलते, समारोह तथा स्वागत समागमों में भाषण देते। इस भाँति अत्याअधिक श्रम के कारण कवि बीमार पड़ गए। 'वीन' पहुंच कर कवि को ज्वर, खांसी तथा जुकाम ने घेर लिया, परन्तु कवि शीघ्र ही स्वस्थ हो गए तथा फिर दूसरी यात्रा आरम्भ की। डाक्टर ने कवि को विश्राम करने को कहा पर विश्राम कहां। वह जहां कहीं जाते इक्ट्ठे हुए लोग उन्हें भाषण देने के लिए विवश कर देते। उन्हें बोलना पड़ता। कई बार दिन में दो २ तीन २ बार भी। वह थकान अनुभव करते, उनके शरीर में बल घटता जा रहा था पर चैन और विश्राम कहाँ। इस यात्रा में कवि का सबसे हार्दिक स्वागत बुढ़ापैस्ट में हुआ कवि का मन मानों मर गया। वह जहाँ भी जाते राज्यसरकारें उनके लिए विशेष रेलवे सैलून (गाड़ी का विशेष डिब्बा) का प्रबन्ध कर देती जिसके कारण उनकी यात्रा शीघ्र तथा आराम से कट जाती।

बलगेरिया में भी कवि का शानदार स्वागत किया गया। वह सारा विश्व क्यों कवि के दर्शनों के लिए पागल हुआ घूम रहा था ? उस में अवश्य ही कोई विशेष गुण है, विश्व के महम साहित्यकारों में एक मधुरभाषी, मनमोहक, लोग उनके मुखकमल से दो शब्द सुनने के लिए कई २ मील से आते,

कितनी देर तक प्रतीक्षा करते, कवि की केवल एक झलक लेने के लिए, कवि के मुख से दो शब्द सुनने के लिए। कवि के बोले हुए शब्द लोगों को अन्धेरे में भटकने से बचाते, उन्हेंएक नया मार्ग दिखाते जिस पर चलकर मनुष्य शान्ति के साथ जी सकता है। विश्व में शाँति छा सकती, जलता विश्व शान्त हो सकता है हम लोग महम साहित्यकार से परामर्श करते, उससे प्रेरणा लेते।

कवि इसी वर्ष के अन्त में सोफिया, जो बलकान की रियासत है, गए। यहाँ उन्होंने देखा कि उस देश को साधारण दशा भारत की भांति थी, पिछड़ी हुई किस्मत थी, लोग भारतियों की भांति ही कृषि करते, कारखाने देश में बहुत कम, कला तथा संगीत भारतीयों के साथ मिलते थे।

यहां कवि का लोगों ने हार्दिक स्वागत किया। उनकी जयजयकार हुई जिसके साथ आकाश गूंज उठा। पशु पक्षी भी प्रसन्नता में नृत्य मग्न हो गीत गा रहे थे।

कवि ने जिस दिन वहाँ पहुंचना था समस्त देश में सरकारी रूप में छुटी कर दी गई, सभी विश्व विद्यालय तथा कालिज बन्द थे। विश्व के महान साहित्यकार का स्वागत करने के लिए लोगों ने जलूस निकाले जिसमें हजारों की संख्या में लोग सम्मिलित हुए, कवि का हृदय खिल उठा, उनका मन प्रसन्नता से नाच उठा। कवि ने प्रथम वार अनुभव किया कि उसका भी विश्व में कोई स्थान है, संसार के लोग उससे कुछ सीखना चाहते हैं। सन् १९२७ में कवि ने लन्दन तथा पैरिस की यात्रा की, वह जहां भी गए सभाओं में, साहित्यक गोष्ठियों में भाषण देते रहे। लोग उनका हार्दिक स्वागत करते रहे, हार्दिक सम्मान करते रहे।

जुलाई सन् १९२७ में कवि नवीं बार विदेश यात्रा के लिए निकले तथा मलाया, जावा, बाली तथा श्याम आदि पूर्वीय देशों की यात्रा की। वहां के लोगों से मिले, उनसे परिचय किया, वहां के साहित्य को पढ़ा। यह उनकी संक्षिप्त यात्रा थी और वह शीघ्र ही लौट आए।

जनवरी सन् १९२९ में अंग्रेजी वायसराय लार्ड कर्जन को शान्ति निकेतन बुलाया और उनका सम्मान किया। यह घटना भी स्मृति चिन्ह है क्योंकि जब १९१९ में जलियां वाला' में हत्याकांड के पश्चात कवि ने 'सर' की उपाधि लौटा दी थी, तब से अँग्रेज कवि के साथ कुछ खिचे २ से रहते थे, उनके मन में कुछ छिपा हुआ था, वह समझते थे कि कवि ने अपाधि लौटा कर उनका निरादर किया था। अब फिर लार्ड कर्जन शान्ति निकेतन पधारे, कवि के साथ मित्रता बनाने, विचार विमर्श करने, गिले शिकवे दूर करने के लिए। लार्ड कर्जन अपनी इस यात्रा में बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने विश्वभारती विश्वविद्यालय के कार्य को देखा और श्लाघा की।

अब कवि को कैनेडा सरकार की ओर से निमंत्रण पत्र मिला ताकि वह वहां विद्या सम्बन्धि एक सभा में भाग ले सकें। कैनेडा सरकार की ओर से यह बहुत बड़ा सम्मान था जो किसी विदेशी को दिया गया। मार्ग में कवि जापान भी गए, यह उनकी दसवीं विदेश यात्रा थी। जापान में उन्होंने कई स्थानों पर भाषण दिये, जिनमें से 'खाली रहने का फलसफा' (The Philosophy of Leisure) बहुत प्रसिद्ध है, जो उन्होंने कौंसिल के सदस्यों के समक्ष दिया। दूसरे दिन उन्होंने 'साहित्य के सिद्धान्तों'(The Principles of Literature) पर भाषण दिया। उन्हें हारवर्ड और कोलिम्बिया

युनिवर्वसिटी की ओर से भी निमंत्रित किया गया परन्तु वह कारणवश जा न सके। वह वापिस कलकत्ता लौट आए और यहां फिर आकर शान्ति निकेतन में चरण कमल रक्खे ।

सन् १९३० का साल कवि के जीवन में नवीन परिवर्तन लाया और कवि को प्रवृतियों का विकास एक और तरफ भाव चित्रकारा की ओर हुआ। कवि ने ७० वर्ष की अवस्था में आकर चित्रकारी प्रारम्भ की। इतनी बड़ी अवस्था में पहुंच कर कवि टैगोर ही कोमल कला को हाथ डाल सकते थे कवि का यह कार्य देखकर लोग चकित रह गए और कवि की प्रसंशा करने लगे। कवि को चारों ओर से शलाघा मिली। कवि ने अपनी चित्रकारा को प्रदर्शनी बहुत से देशों में की और प्रसंशा प्राप्त की।

इसी वर्ष भाव १९३० ई० में आप वाहरवीं विदेशी यात्रा पर निकले। यह यात्रा विशेष महत्व रखती है। कवि मार्च मास में घर से निकले और फ्राँस, जकोस्लोवेकिया, इंगलैंड, जर्मनी और डेन्मार्क होते हुए रूस पहुंचे। पैरिस में उन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की और उसमें १२५ चित्र प्रस्तुत किए। इसी शहर में उनका जन्म दिन बड़ो धूमधाम और उत्साह से मनाया गया। विलायत में उन्होंने आक्सफोर्ड युनिवर्संटी के छात्रों के समक्ष भाषण दिए जो पश्चात में 'मनुष्य का धर्म' (Religion of man) नाम शोषक के अर्न्तगत प्रकाशित हुए। २६ मई को उन्होंने अपने अन्तिम भाषण मानचैस्टर कालिज में दिया जिसके पश्चात कालिज के प्रिंसीपल माईकल मैडनर ने कवि को सम्बोधित करते हुए कहा. "हम आक्सफोर्ड निवासी कभी नहीं भूलेंगे जो आपने हमें दिया है और जो प्ररेणा हमें मिली है।"

दो जून को बर्मिन्घम में कवि ने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की।

जुलाई १९३० ई० में कवि जर्मनी पहुंच गए जहां उनका नागरिकों ने अभिनन्दन किया। तत्पश्चात कवि घूमते घूमते डेन्मार्क पहुंचे, वहां भी उन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की।

सितम्बर में जैनेवा से होते हुए कवि रूस गये। कवि की रूस यात्रा एक स्मृतिचिन्ह है और एक विशेष महत्त्व रखता है यह अपने ढंग की विचित्र यात्रा थी जिसने कवि को विशेष रूप से प्रभावित किया। कवि जब रूस पहुंचे तब वहां की पहली पंच वर्षिय योजन अभी शुरू ही हुई थी, देश ने उन्नति के पथ पर चलने के लिए अभी प्रथम पग ही उठाया था। इधर हमारे देश में वह समय था जब रूस के विषय में परिचय प्राप्त करना भी असम्भव था, रूस का नाम लेने वाले भी सरकार के कोपभाजन बनते थे। इस वातावरण में कवि ने रूस की यात्रा करने का निर्णय किया, वह काफी समय से रूस जाने के इच्छुक थे, उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा, 'वह समय जब कि आपके लोग पहले से बहुत आगे बढ़ चुके हैं, यही मेरे मित्र मुझे बताते हैं, इसलिए मेरी रूस देखने की बड़ी इच्छा है, मैं आपके सँगीत के विषय में, आपके नाटकों के विषय में, आपके नृत्य के विषय में,आपके साहित्य के विषय में जानना चाहता हूं।' इसके पश्चात कवि ने ऐक बार कहा कि, 'मैं रूस को देखे बिना मरना नहीं चाहता।'

इसलिए कवि की रूस यात्रा एतिहासिक महत्त्व रखती है, इसके साथ रूसियों और भारतीयों में सद्भावना पैदा हुई, मित्रता बढ़ी और आगे सहयोग का मार्ग खुला।

रूसी कवि का नाम बहुत पहले सुन चुके थे। महान रूसी क्रान्ति से भी पहले कवि की कुछ रचनाओं का अनुवाद १९१३ ई० में छप चुका था। सन् १९२६ में एक बड़ी पुस्तक ऐस. आई तुबेयनसकी की ओर से प्रकाशित हुई।

कवि टैगोर दो सप्ताह के लगभग रूस ठहरे। इतने थोड़े समय में भी उन्होंने रूस का कई पक्षों से परिचय प्राप्त करने का प्रयास किया, वह श्रमिकों को, किसानों को, लेखकों को, वैज्ञानिकों को, कलाकारों को, अध्यापकों को, नेताओं को और विद्यार्थियों को मिले।

कवि ने रूसी लेखकों को सम्बोधित करते हुए कहा, "मैं इस बात से बहुत उत्साहित हुआ हूं कि आपने सर्वप्रथम लोगों को पढ़ने लिखने का अवसर दिया है, स्कूलों के, अजायब घरों के और थियेटरों के दरवाजे खोल दिए हैं।"

कवि ने रूसी कृषकों के समक्ष भाषण देते हुए कहा, 'यदि हम आपके अनुभवों से लाभ उठाएं तब हम अपने देश में किसानों की समस्या को बड़ी अच्छी तरह सुलझा सकते हैं।

कवि ने रूस से कई पत्र लिखे जिनका वर्णन यहां करना अति आवश्यक है क्योंकि इनका विशेष महत्त्व है। यह पत्र १९३१ में प्रकाशित हुए। एक पत्र में वह लिखते हैं, 'रूस की यात्रा समाप्त कर अब मैं अमेरिका जा रहा हूं परन्तु अभी तक मैं रूस की याद में भीगा हुआ हूं, क्योंकि जितने देश भी मैंने देखे, मुझे किसी ने इतना प्रभावित नहीं किया जितना रूस ने किया है। सभी वस्तुओं का एक सा उद्देश्य हैं, आत्माओं की इतनी गहरी एकता अपनी जायदाद वाले देशों में सम्भव नहीं। कवि अपने एक और पत्र में लिखते हैं, 'रूस में शिक्षा के

दरवाजे साधारण जनता के लिए खोल दिये गये हैं। विज्ञान की नई खोजों के लाभ लोगों को बताए जा रहे हैं। यहाँ के सिनेमाघर लोगों से भरे होते हैं, श्रमिकों और कृषकों से, सबका यहां सम्मान होता है।'

कवि रूस में रह कर अति प्रसन्न हुए, प्रत्येक स्थान पर उनका स्वागत किया गया, हार्दिक स्वागत, जैसा पहले किसी का न हुआ हो। उन्हें सम्मान मिला रूसी श्रमिकों की ओर से, कृषकों की ओर से, छात्रों की ओर से, कलाकारों और लेखकों की ओर से। उन्होंने कवि का दिल से सम्मान किया। उनकी रचनाओं को रूस में प्रचलित किया। कवि बहुत उत्साहित हुए। उन्होंने २४ सितम्बर १९३० ई० को रूस से चलते समय अपने विदाई वाले भाषण में कहा, 'जो कुछ भी मैंने थोड़ा बहुत देखा है, उसके साथ मुझे निश्चय हो गया है कि देश में बहुत ही उन्नति हुई है। यह किसी भी चमत्कार से कम नहीं।'

२५ सितम्बर १९३० ई० को कवि रूस से चल कर अमेरिका पहुंचे। वहां भी उनका बड़ा सम्मान हुआ, उन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की जिन्हें बहुत पसन्द किया गया।

अमेरिका से कवि इंगलैंड होते हुए भारत लौटे जनवरी १९३१ ई० में। इस वर्ष कवि ७० वर्ष के हो चुके थे और देश भर में उनका जन्म दिवस मनाने की तैयारियां हो रही। थीं कवि ने भी देश भर की यात्रा की। कवि को सम्मान देने के बहुत से प्रोग्राम बनाए गये, कवि के जीवन सम्बन्धि घटनाओं के विषय में प्रदर्शनी लगने का भी निर्णय किया गया कवि के लिखे कई नाटक खेले जाते थे। विदेशों से लोग कवि

को श्रद्धांजली अर्पित करने भारत आए. कई नेताओं ने अपनी शुभकामनाए भेजी। परन्तु यह सब कुछ मध्य में ही रह गया जब अंग्रेजी सरकार ने अपना दमन चक्र चलाया, गांधी जी और अन्य नेताओं को पकड़ कर जेलों में बन्द कर दिया गया। स्वतन्त्रता संग्राम पूर्ण शिखर पर था। अंग्रेजों के साथ डटकर टक्कर ली गई, गांधी जी के नेतृत्व के नीचे देश भक्त परवाने आगे बढ़ रहे थे। देश की स्वतन्त्रता के लिए वह रक्त वहाने के लिए भी तैय्यार थे। अंग्रेजों की आर से कानून और शांति के नाम के नीचे हुए अत्याचार ने कवि की आत्मा का झंकृत कर दिया, कवि के दिल को ठेस लगी, वह पुकार उठे उनके कानों में सनसनाती गोलियों की आवाज सुनाई देती थी। कवि से सहन न हुआ और कवि ने अपना जन्म दिन मनाना बन्द कर दिया।

जन्म दिन पर जो एक मास पश्चात मनाया गया, समस्त देश वासियों ने कवि को श्रद्धा के फूल भेंट किये और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि कवि की साहित्य क्षेत्र में सेवायों को मुख्य रख कर कवि को 'टगोर की सुनहरी पुस्तकें (The Golden Book of Tagor) भेंट का गई। इस पुस्तक को सँकलित करने में तीन विदेशियों, चार्लस औंड्रोडज, रोमन रोनाल्ड, और आईनस्टाईन और दो भारतीयों जगदीश चन्द्र बोस और महात्मा गांधो ने सब से अधिक भाग लिया। इसके अतिरिक्त कोस्टस पामस (Kostes palams) जवाहर लाल नेहरू, बर्टरैंड रस्ल (Bertrand Russel) ने कवि के सम्मान में लेख लिखे। एक पुस्तक बँगाली में 'जयनती उत्सर्ग' भी प्रकाशित की गई। इस समय कवि का यश चोटो तक पहुंच चुका था, समस्त विश्व में कवि की साहित्य रचना की प्रसंशा

हो रही थी सम्पूर्ण विश्व के साहित्यकारों और राजनैतिक नेताओं ने मिलकर कवि की प्रसंशा में लेख लिखे, उनका सम्मान किया गया।

बरनार्ड शा, दुनिया के महान साहित्यकार ने क्यों कवि टेगोर के श्रद्धा के पुष्प अर्पित न किए। इसका क्या कारण हो सकता है।? क्योंकि वह कवि के बड़े श्रद्धालुओं में से थे, हो सकता है शा किसी का जन्म दिन मनाने में विश्वास न रखते हों और न वह किसी का जन्मदिन मनाते और न अपना।

जैसा कि उपर वर्णन किया गया है, कवि को लोगों को अपना जन्मदिन मनाने से मना करना पडा। देश की राजनैतिक अवस्था को देख कर, गांधी जी और दूसरे राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी का कवि के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और कवि की दुःखी आत्मा प्रकट हुई उनकी कविता, "यह दुर्दिन" (This evil day) में।

टैगोर की सुनहरी पुस्तक में से कुछ पँक्तियां यहां देनी उचित हैं ताकि हम उनकी महानता का अनुमान भलिभांति लगा सकें।

"राष्ट्रवाद विशेषयता तब जब यह हमें स्वतंत्रता संग्राम के लिए उकसाता है, महान है और हमें जीवन प्रदान करता है परन्तु साधारण ढंग से इसका दृष्टिकोण सकीर्ण हो जाता है जब कि मनुष्य अपने वहुपक्षी जीवन को भूल जाता है, परन्तु टैगोर ने हमारे राष्ट्रवाद को अन्तरराष्ट्रवाद का रुप दिया है। इसको अपनी कला, संगीत और अक्षरों की जादूगरी के साथ भरपूर किया है जो भारत में जागृति का चिन्ह बन गया है"।

—(जवाहरलाल नेहरु)

रविन्द्र नाथ टैगोर में प्रतिभा के सम्पूण गुण थे, वह एक ही समय कवि, फिलासफर, विद्यादाता और मानवसखा हैं।"

जेन अैडमस (Jane Addams)

साफ़ प्रकट है कि कवि अब साहित्यक क्षेत्र में वहां पहुंच चुके थे जहां सम्भव है और कोई न पहुंच सके। विश्व की ओर से कवि का किया गया सम्मान, उनका सम्मान नहीं, भारतीय कविता, कला और साहित्य का सम्मान है।

सन् १९३२ में परशिया के बादशाह का निमँत्रण आने पर कवि अपने बाहरवीं विदेशी यात्रा पर निकले। वहां की सरकार और लोगों ने उनका प्यार भरे दिलों से शानदार स्वागत किया। कवि स्वयं अपनी इस यात्रा के विषय में लिखते हैं, "जब से हम यहाँ पहुंचे हैं हमारे सम्मान में बहुत से समाराह किए गए हैं तथा और करने का प्रबन्ध किया गया है। मेरा सम्मान क्यों किया जा रहा है। कितनी बार मुझे समझ नहीं आती।

"मैं लोगों के लिए क्या हूं? मेरे साहित्य, विचारों और जीवन से वह परिचित नहीं, जब मैं योरुप गया तब लोग जानते थे कि मैं कवि हूं, उन्होंने मेरी कविताएं पढ़ी हुई थी और वह देख सकते थे कि मैं क्या हूं। चाहे यह लोग भी मुझे कवि समझते हैं परन्तु इनकी कल्पना में ही मैं कवि हूं। वह यह नहीं जानते कि मैं किस भाँति का कवि हूं। यहां के लोग कविता के प्रेमी हैं कविओं का सम्मान करते हैं।

मुझे समरण आता है कि जब मैं मिश्र गया वहां क्या हुआ। एक नेता ने जो मेरा स्वागत करने आया, मुझे बताया कि पार्लियामैंट की बैठक आगे कर दी गई है क्योंकि मैं देश में

या हूं। एसी बात केवल किसी पूर्वी देश में ही हो सकती है क्योंकि उन्होंने अनुभव किया होगा कि मेरा सम्मान करने से, उनके अपने देश का सम्मान है।"

१६ अप्रैल को कवि ने आगे चल कर लिखा, "हमने सीराज जाने के लिए प्राता: सात वजे चलना था, इसी लिए चाहे मैं थका हुआ था, मैं शीघ्र ही जाग गया, परन्तु मेरे साथी अभी नहीं थे जागे, इजलिए हमारे तय्यार होने तक ९ बज गए।

"सड़क जिस पर हम जा रहे थे कच्ची थी, और मोटर में बैठे बड़े हिचकोले लग रहे थे, और हमारी हड्डिओं में भी दर्द हो रहा था। मैदान ही मैदान आता गया, न कोई वृक्ष और न कोई घर।"

परशिआ देश का बहुत सा भाग पहाड़ो है समुन्द्र के तल से कई हज़ार फुट ऊंचा। चारों ओर पहाड़िआँ और इस भाग में यहां से हम गुजर रहे थे, बर्षा भी नहीं होती। कुछ पहाड़ी नाले यहां तक पहुंचते हैं और धरती की सिचाई उनके द्वारा की जाती है परन्तु यह शीघ्र ही रेगिस्तान में रिस जाते हैं।

"हमारे रात के खाने का प्रबन्ध बाग में किया गया पर मैं अभी वहां जाने का आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता था क्योंकि मैं थका हुआ था। उन्होंने मुझे एक कमरा दिया जिसमें दरी पर चारपाई बिछी हुई थी। मैं चारपाई पर जा कर सो गया और खुली खिड़की में से बाहर पड़ी ओस मेरी आंखों को ठंढक पहुंचा रही थी।"

"थोड़ी देर पश्चात मैं अपने विस्तर से उठ कर बाग में

गया जहां वृक्षों के नीचे बड़े २ पतीलों में खाना बन रहा था। उसी तरह जैसे भारत में धार्मिक और दूसरे उत्सवों के समय बनता है।

"हमारे आने पर सारे देश में छुटी कर दी गई थी परन्तु भीड़ जो बड़ी देर से हमारी प्रतीक्षा कर रही थी, कम हो गई थी क्योंकि हम देर से पहुंचे थे, अन्त में हमने बिजली के प्रकाश में खाना प्रारम्भ किया। मेरे मेजबान ने मुझे थका जान कर कमरे में ही खाने के लिए कहा पर मैंने सब के साथ मिल कर खाने में खुशी अनुभव की खाना बडा स्वादिष्ट था। पीलू कबाब जो हमारे बंगाली मुगलई के साथ मिलता है जी भर कर खाया। लोग अपने बादशाह पर बहुत प्रसन्न थे कि कैसे उसने थोड़े से समय में देश का नक्शा बदल दिया हैं।"

इससे कवि की परशिया के प्रति श्रद्धा प्रतीत होती है। कवि अपनी परशिया की यात्रा समाप्त कर हवाई जहाज द्वारा भारत लौटे।

भारत आकर शीघ्र ही बाद में कवि कलकत्ता विश्व-विद्यालय में बंगाली के प्रोफैसर लग गए तथा उन्हों ने विश्व विद्यालय के छात्रों के सामने "मनुष्य का धर्म" के बारे भाषण भी दिये। अगस्त सन १९३२ में विश्व विद्यालय की ओर से कवि का सम्मान किया गया।

यह समय भारत में राजनैतिक उथल पुथल का था। देश वासियों में अत्यधिक असन्तोष पाया जाता था। स्वतंत्रता संग्राम पूरे यौवन पर था। मैक डानलड की ओर से कमयूनल ऐवारड (Communal Award) की घोषणा की गई, जिस ऊपर न हिन्दु खुश थे और ना मुसलमान। हिन्दुओं ने समझा कि

हमें बर्बादी और पतनकी ओर धकेला गया है,मुसलमान समझते थे कि जो हमारा अधिकार है वह हमें नहीं मिला। साधारण जनता ने यह समझा कि यह अंग्रेज की चाल है,फूट डालो और राज्य करो, भाव यह कि देश में निराशा के बादल छा गये,कोई सुझाव नहीं सूझता था।

महात्मा गान्धी और दूसरे नेता जेल में बन्द थे। कोई नेतृत्व करने वाला नहीं था, लोग निराश्रय थे, इस लिये, कवि मैदान में उतरे। वह इतनी बड़ी लोक तरंग से कैसे प्रभावित न होते, कवि ने ऐवार्ड की जी भर कर विरोधता की, और लोगों से कहा कि वे अपनी शक्ति पर विश्वास रखें। सरकार की ओर से न्याय की कोई आशा न रखें और उद्योग धन्धों की ओर जुट जायें तथा राष्ट्रीय एकता और मातृ भाव पैदा करें।

एवार्ड को सुन कर जेल में महात्मा गान्धी की आत्मा तड़प उठी। उन्हों ने इसे भारतीय राष्ट्र के ऊपर एक बहुत बड़ी चोट समझा, इस के साथ राष्ट्रीयता छिन्न भिन्न हो जायेगी, एकता नष्ट हो जायेगी, मानवीय दिल बिछुड़ जायेंगे, जिन्हें तोड़ना असम्भव हो जायेगा।

महात्मा गान्धी जी का जेलमें मरन व्रत शुरु हो गया। देश में खलबली मच गई, लोगों का क्रोद्ध और जोश सहन नहीं किया जा सकता था। विलायत में अंग्रेजी साम्राज्य की दीवारें हिलने लगीं, अन्त में पूना पैक्ट किया गया। महात्मा जी ने कवि टैगोर के हाथ से जो अब जेल में पहुच चुके थे, व्रत खोला। गान्धी जी ने फलों के रस का गिलास कवि के हाथों से पिया।

दिसम्बर सन १९३२ में राजा राम मोहन राय की

शताब्दी मनाई गई। हम आगे लिख चुके हैं कि कवि के मन में राजा जी की कितनी कदर थी। शताब्दी के एक समारोह का उद्घाटन कवि ने स्वयं किया और उस उत्सव के लिए लिखी अपनी विशेष कविता 'आज़ादी' (Freedom) सुनाई।

सन् १९३४ में कवि ने लंका और मद्रास की यात्रा की। आन्ध्र विश्व विद्यालय की समस्याओं में कवि विशेष रुचि लेते थे। सन १९३५, ३६ में कवि ने उतर प्रदेश के नगरों इलाहाबाद, मेरठ, पंजाब में लाहौर और हैदराबाद 'दक्षिण' की यात्रा की। स्थान स्थान पर कवि का स्वागत किया गया। लाहौर में जब वह विद्यार्थियों को सभा में भाषण देने के लिये पधारे तब भीड़ काबू से बाहर हो गई। हज़ारों लोग उनके दर्शन करने के लिए आये, उनके मुख कमल से दो शब्द सुनने के लिए।

अब कवि अधिक आयु होने के कारण बहुत निर्बल होते जा रहे थे। उनकी शक्ति घटती जा रही थी और वह बिमार रहने लग गये थे। सितम्बर सन् १९३९ में वह सख्त बिमार हो गये। उन्हें इलाज के लिए कलकता लाया गया, सारे देश में उनके स्वास्थ्य के लिऐ प्रार्थनाएं की गईं। वह अपने कलकत्ता वाले पुराने घर जोड़ा शंके में विराजमान थे, उनके मित्र व सम्बन्धि उनका हाल पूछने आते, सारे देश में क्या सम्पूर्ण विश्व में गम्भीर चिन्ता छा गई। महात्मा गाँधी और जवाहर लाल नेहरू, भारत मां के सपुत्र, स्वयं चल कर कवि के स्वास्थ्य के विषय में पूछने आए, वह कवि से मिले और सेवा आदि पूछी। सर्व भारतीय कांग्रेस कमेटी ने कवि के स्वास्थ्य के विषय में मत पास किया, कई और दूसरी धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं की ओर से मत पास किए गए,

समस्त देश उत्सुक था कि किसी भांति कवि स्वास्थ्य हो जाए देश के आसमान पर यह अद्भुत सितारा चमकता रहे। कवि गम्भीर बीमारो से तो स्वस्थय हो गए और चलने फिरने लग गए परन्तु सन १९३८ में वह कहीं बाहर न जा सके और अपने घर ही रहे।

सन १९३९ में वह फिर देश यात्रा पर निकले और इस वर्ष फिर उनका जन्म दिन खूब धूमधाम से मनाया गया। सबसे बड़ा सम्मान उन्हें उड़ीसा को राजधानी पुरी में मिला। जहां मुख्य मँत्री ने उनके सम्मान में समारोह किया। अब देश वासी भी उनके गुणों, साहित्यक और सामाजिक सेवाओं को जान गए थे। उनमें लोगों को अपना मित्र, फिलास्फर और नेता दृष्टिगोचर हुआ। वह अब भारत के एक तरह से बेताज सम्राट बन चुके थे। वह लोगों के दिलों के बादशाह थे। उनका यश दुनिया में चोटी पर पहुंच चुका था। अब स्थान स्थान और देश विदेश में उनके नाटक खेले जाते, चित्रों की प्रदर्शनीआं की जाती, वह साहित्य और सामाजिक सभाओं की प्रधानता करते, भाषण देते और अपने विचार प्रकट करते रहे।

इस वर्ष पंडित जवाहर लाल फिर कवि से कलकत्ता मिलने आये। वह चीन जा रहे थे कि मार्ग में कवि से मिलने का निर्णय कर लिया। जवाहर लाल और कवि का गहरा सम्बन्ध और हार्दिक मित्रता थी। जवाहर लाल नेहरू के लिए वह वास्तविक गुरु थे। जब कभी भी नेहरू किसी राजनीतिक उलझन में फंस जाते और उनके मन को शान्ति की आवश्यकता होती, वह शन्ति निकेतन आ जाते, थोड़ी देर

रहते और मन शान्त कर लौट जाते।

नेहरू शान्ति निकेतन के प्रबन्ध, शासन और विद्या विधि से इतने प्रभावित हुए कि अपनी एक मात्र सपुत्री इन्द्रा को यहां दाखिल करवा दिया ताकि वह पुस्तक ज्ञान के साथ २ संसारिक ज्ञान भी प्राप्त कर ले। यह शायद शान्ति निकेतन की पढ़ाई का ही प्रभाव है कि इन्द्रा इतनी प्रतिभाशाली और सूझ बूझ वाली, निर्भय देश और समाज सेविका बन गई है।

सन १९४० में गांधी जी फिर शान्ति निकेतन गए, कवि का और उनका यह मिलन एतिहासिक कहा जा सकता है। दोनों ने अपने विचारों का आदान प्रदान किया, देश के भविष्य सम्बन्धि विचार किया और गांधी जी ने कवि को महान प्रहरी का नाम दिया। वह भारत का चिन्ह बन चुके थे। अब वह आश्रम के एक कोने में बैठ कर केवल प्रार्थना ही नहीं करना चाहते थे, बल्कि सम्पूर्ण विश्व को हर पक्ष से देखना चाहते थे। उन्होंने सारे संसार का-काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार में फंसे से नेतृत्व किया। जल रहे संसार को आग की लपटों से बचाने का प्रयत्न किया।

चाहे कवि और गांधी जी के विचारों में गहरा मतभेद था परन्तु दोनों हार्दिक मित्र थे। दोनों सच्चे देश प्रेमी थे, दोनों देश की सवतंत्रता के इच्छुक थे। देश को शीघ्रातिशीघ्र सवतँत्र कराने के इच्छुक थे। जब गाँधी जी और उनकी धरमपत्नी कस्तुरबा शान्ति निकेतन गए तब उनके सम्मान में एक समारोह किया गया। गांधी जी ने कहा 'हम आपको अपने बीच में से ही समझते हैं, आप सारी मनुष्यता के रक्षक हैं, मेरा यहाँ आना चाहे एक यात्रा से कम नहीं, परन्तु मैं यहां कोई अजनबी नहीं, मैं अनुभव करता हूं कि मैं अपने घर आ गया

हूं और मुझे गुरु देव से आशीर्वाद प्राप्त कर ख़ुशी हुई है ।"

कवि एक निर्भय लेखक थे,वह अपने विचार निर्भय होकर प्रकट कर देते, जो कुछ उनके मन में होता कह देते, कोई छिपाव नहीं, कोई प्रभाव नहीं किसी का । वह पूर्व और पश्चिम दोनों की विरोधता कर देते, जब कोई गलत मार्ग पर चलता । उन्होंने पूर्व और पश्चिम दोनों की कुरीतियों का बड़े जोरदार शब्दों में भंडा फोड़ किया ।

हम पहले भी देख चुके हैं कि प्रसिद्ध अंग्रेजी विद्वान सी. अैफ. अैंड्रीउज़ कवि के घनिष्ट मित्र थे । उनका परस्पर बड़ा प्यार था वह एक दूसरे का सम्मान करते थे । इस लिए किसी ऐसे मित्र की मृत्यु कितनी दुखदायक हो सकती है । सी अैफ. अैंड्रीउज ५ अप्रैल १९४० को स्वर्ग सिधार गए, कवि के मन को गहरा सदमा पहुंचा । वह अत्यन्त दुखी हुए, उनकी आत्मा दुखी हुई । एक मित्र का बिछड़ जाना कोई साधारण घटना नहीं थी । शान्ति निकेतन में एक विशेष शोकसभा बैठी,मन्दिर में प्रार्थना की गई और इस अवसर पर कवि ने अपने विचार इस भांति प्रकट किए, "मैंने किसी मनुष्य में ईसाई धर्म के इतने गुण नहीं देखे जितने इनमें देखे थे । उनके बलिदान, पूर्णत्या अपना बलिदान, हमारे मनों में सदा निवास रखेंगी । अैंड्रीउज़ जैसे मेरे ही मित्र नहीं सारी मानवता के मित्र हैं ।"

अब कवि के मन की अवस्था आसाधारण सी थी । समस्त विश्व महायुद्ध की लपेट में आ गया । सारी दुनिया जल रही थी, सारी मानवता जल रही थी । अपने देश क अवस्था भ कवि को उद्विग्न कर रही थी, वह अत्यन्त दुःखी थे ।

कवि इस समय तक दुनिया के लगभग समस्त देशों की यात्रा कर चुके थे। संसार का शायद ही कोई अन्य मनुष्य इतना घुमा हो, वह जहां भी गए, उनका शानदार स्वागत किया गया, सम्मान किया गया, वह देश के गैर-सरकारी राजदूत थे, समस्त दुनिया में, पर उनका सम्मान सरकारी राजदूतों से अधिक था। वह समस्त विश्व के नागरिक थे। वह प्यार, मित्रता और भातृभाव का सन्देश लेकर जाते अन्धेरे में भटकते लोग उनके पास से रोशनी ढूंढ़ते, मार्ग पूछते वह जलती और तपती दुनियाँ में से निकल कर कहाँ जाएँ। उन्होंने दुनिया के देशों में भारत का सम्मान बढ़ाया, दुनिया को बताया कि भारत भी ऐसा ही सपुत्र पैदा कर सकता हैं। वह समस्त विश्व के लिए जीते थे, सारी मानवता के लिए जीते थे।

हमने जैसा पहले देखा है कि कवि दुनिया की प्रसिद्ध युनिवर्सटी 'आक्सफोर्ड' में कितनी बार गए, वहाँ भाषण भी दिए, इनका स्वागत भी किया गया, परन्तु अभी तक उन्हें युनिवर्सटी की ओर से डाक्टरेट की उपाधि क्यों न दी गई, इसका क्याकारण था, क्या कवि एक पराधीन देश के नागरिक थे? कहते हैं कि एक बार जब कवि को उपाधि देने का सुझाव युनिवर्सटी के कर्मचारियों के आगे आया तब लार्ड कर्जन ने जो उस समय चांसलर थे कहा, "भारत में टैगोर से भी अधिक बुद्धिमान विद्वान बैठे हुए हैं। चाहे उन्होंने विद्वानों का नाम बताने का कष्ट नहीं किया, परन्तु अँग्रेजों की ओर से यह दलील दी जाती कि जब कवि ने अंग्रेजों को दी 'सर' की उपाधि लौटा दी तब क्या पता वह डिग्री भी स्वीकार करें या न।

अस्तु सन् १९४० में आकर कवि का नाम संसार के साहित्यक क्षेत्र में इतना चमक चुका था कि आक्सफोर्ड युनिवर्सटी को कवि को डिग्री देने का निर्णय करना ही पड़ा और उन्होंने अपने नियमों को एक ओर रख कर मोरिस और अैस. राधाकृष्णन को शान्तिनिकेतन भेजा, जिन्होंने यहाँ आकर युनिवर्सटी की कानवोकेशन की और कवि को डिग्री देकर साहित्य का डाक्टर बना दिया गया। यह न केवल कवि की प्रशंसा व सम्मान था बल्कि यह उस देश का सम्मान था जिसने कवि को जन्म दिया।

२७ सितम्बर सन् १९४० को कवि फिर यात्रा पर निकले, परन्तु अभी वह अपने पहले पड़ाव कालम पाग ही पहुंचे थे कि दुबारा सख्त बीमार हो गए और वहांसे ही कलकत्ता लौट आए, वहां उनको चिकित्सा को गई। वहां थोड़ा बहुत ठीक हुए और शान्तिनिकेतन पहुंच गएं। वह शारीरिक रूप से बीमार थे, चल फिर नहीं सकते थे, बुढ़ापा कुछ नहीं करने देता था परन्तु मानसिक ढंग से उनको चेतनता स्थिर रही और उन्होंने इस बीमारी की अवस्था में भी दो पुस्तकें लिख मारी, यह उनकी प्रतिभा का प्रमाण था।

अन्त में १९४१ का वर्ष आ गया; भारत के इतिहास में अमंगल वर्ष, जिस वर्ष लोगों का प्यारा कवि संसार को छोड़ गया।

यह वर्ष संसार के इतिहास में विशेष महानता रखता है। योरुप का महायुद्ध जो १९३९ में आरम्भ हो चुका था अब पूरे यौवन पर था। नाज़ो पूरी शान से बढ़ते जा रहे थे। योरुप के देश एक के पश्चात दूसरा गिर रहे थे। सारा विश्व

लड़ाई की लपेट में आ चुका था, मानवता जल रही थी, हजारों बच्चे यतीम हो रहे थे स्त्रीयों के सुहाग लुट रहे थे, सभ्यताएं समाप्त हो रही थीं, लोगों के घर, व्यापार इतिहास सभ्यता, कला, संगीत तथा कितना कुछ और मिट्टी में मिल रहा था। प्रतिदिन नाजियों के अत्याचारों के समाचार आते, बमों और मशीनगन्नों की आवाज ने कवि को बेचैन कर दिया विधवा स्त्रीयों तथा यतीम बच्चों की कुरलाहट कवि के कानों में गूंजने लगी। कवि चाहे बीमार थे परन्तु इस अवस्था को सहन करना उनके लिए कठिन हो गया। उन्होंने कलम दवात उठाई और पश्चमी देशों को ललकारा, जो विश्व को फूक डालना चाहते थे, राख कर डालना चाहते थे।

कवि ने अपनी मृत्यु शैय्या से लिखा "सभ्यता में संकट" (The Crisis in Civlisation) इस लेख का छपना था कि सारे विश्व में हलचल मच गई, दुनिया के देश जो युद्ध में भाग ले रहे थे बड़े दुःखी हुऐ, सच्चाई को पीना कठिन लग रहा था। परन्तु कवि ने वह कुछ कहा जो उनके मन में था। वह उनकी तड़प रही आत्मा की आवाज थी। वह उनके दिल की गहराईयों से निकली हुई हुक थी।

कवि ने "सभ्यता में संकट" नामक लेख में लिखा, "आज मेरे जीवन के अस्सी वर्ष पूर्ण हो गए हैं, जब मैं इन व्यतीत हुऐ वर्षो पर नजर मारता हूं, और बुद्धि से विचार करता हूं मेरे अपने कार्यो और देश वासियों के मनोविज्ञान में हुऐं परिवर्तनों से मेरा माथा ठनकता है। यह परिवर्तन गम्भीर है।"

"इतिहास में हमारा अंग्रजों के साथ सम्बन्ध बढ़ने के साथ सारी मानवता के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया।

वह हमारे पास महान साहित्यक सूझ बूझ के साथ आए और उन्हों ने अपनी इन रुचियों का प्रमाण दिया। उन दिनों में जो कुछ हमने पढ़ा बड़ा कम था, विज्ञान हमारी पहुंच से बाहर थी। हमने अँग्रेजी साहित्य को खूब पढ़ा तथा इसकी प्रसंशा हमारी सभ्यता बन गई।

"हम अपने अधिकारों के कार्यो पर गर्व करते थे, इस की प्रसशा की जाती थी। हम आंखों से देख सकते ते,बनावटी भलाई को विदेशियों में,फिर भी हम उनकी प्रसंशा करते थे,उन्हें श्रद्धांजलि भेंट करते थे। मानविय विरासत में मिला सुन्दर गुण किसी विशेष देश या मनुष्य की मलकीयत नहीं बन सकता न ही वह किसी कंजूश का गुप्त खज़ाना बन सकता है जो कभी समाप्त नहीं होता। भाव यह है कि इस अंग्रेज़ी साहित्य में से हमें असली पदार्थ मिला जिस ने हमें अभी तक प्रभावित किए रखा।

"अंग्रेज़ी अक्षर 'सभ्यता' के समान कोई अक्षर बंगाली में ढूढ़ना कठिन है। हमारे प्राचीन समय में मनु ने हमारी सभ्यता को सदाचार का नाम दिया-योग्य आचार-इसमें कुछ नियम सम्मिलत थे, जो सामाजिक मर्यादा बन गए। मेरे बचपन के दिनों में अंग्रेज़ी पढ़ लिखे लोगों ने इस कठोर मर्यादा के विरुद्ध बगावत की और उस समय के बंगाली साहित्य में इसके चिन्ह मिलते हैं। इस मर्यादा के स्थान पर हम 'सभ्यता के सिद्धान्त को जो अंग्रेज़ी अक्षर का सूचक है मान लिया।

"मेरे अपने घर में यह परिवर्तन साफ प्रकट हुया और इसका प्रभाव सिद्धान्तों में और कार्य रुप में प्रत्यक्ष हुआ और

इस तरह के वातावरण में उत्पन्न हुआ।

"मेरा प्रारम्भिक जीवन श्रमों के दर्द में समाप्त हुआ, मुझे धीरे २ मालूम होता गया कि जो 'सभ्यता' का सब से अधिक प्रचार करते हैं, वह उसे दूर फेंक सकते हैं जब उनकी राष्ट्रीयता को चोट लगती है।

"मेरे जीवन में इस भांति का समय भी आया जब मुझे साहित्य से दूर रहना पड़ा क्योंकि मुझ से निर्धन भारतियों की दशा सहन नहीं की जाती थी। मैंने अनुभव किया कि किसी भी राज्य में प्रजा को उनके जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं से वंचित नहीं रखा गया, फिर भी हमारे साधनों से अर्चित किया गया धन अंग्रेजों को दिन प्रतिदिन धनी बना रहा था, मैं अंग्रेजी सभ्यता के उजले रुप में गुम हो गया, मैं यह कभी सोच भी नहीं सकता था कि देशी सभ्यता को तोड़ मरोड़ कर मलत मूल्य प्रकट किए जा सकता है। मुझे अन्त में पता चला कि यह तोड़ मरोड़ किसी समय जाति का हमारे करोड़ों देशवासियों की ओर कठोरता और घृणा का चिन्ह हो सकता है।

इस निराश्रय देश को मशीनों से दूर रखा गया जिसके साथ साथ अंग्रेज जाति दुनियां की शक्तिशाली जाति बन गई। इसी भांति जापान मशीनों के प्रयोग द्वारा उन्नतिपथ पर बढ़ता गया। मैंने अपनी आंखों से जापान की उन्नति देखी है। मैंने देखा कि रुस वालों के अनथक प्रयत्नों के साथ कैसे देश में से बीमारी, अशिक्षा तथा लज्जा जनक अन्य बातों को दूर किया गया है। रुसियों ने कैसे जातीय मतभेद को भुला कर मनुष्यों में मातृभाव पैदा किया। उन्होंने इतनी शीघ्रता से चकित कर

देनें वाली उन्नति की है कि मुझे खुशी भी होती है तथा चाव भी आता है।

"मैं ईरान भी गया हूं जो कभी योरुप के बलवान देशों के प्रभाव नीचे दबा हुआ था और अब स्वतन्त्र हो गया है। अब वह उन्नति के पथ पर चल पड़ा है, जब मैं अभी २ वहां गया मुझे देख कर अत्यन्त प्रसन्ता हुई कि जोरेसटेरियन जो कभी दूसरी जाति के रहम पर थे अब जुल्म से बच निकले थे। ईरान का नया जीवन तब से प्रारम्भ होता है जब कि उन्होंनें योरुपीय देशों की कुटिल नीति से स्वाधीनता प्राप्त की। मैं ईरान को हार्दिक शुभ इच्छाएं भेजता हूं।"

"अफ़गानिस्तान ने जो हमारा पड़ोसी देश है अभीविद्या और सामाजिक विकास के क्षेत्र में बहुत कुछ करना है फिर भी उन्ननि के चिन्ह प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं क्योंकि अब तक कोई भी योरुपीय देश इस पर अपना अधिकार नहीं जमा पाया।

"भारत अंग्रेज़ी राज्य के भार नीचे दबा रहने के कारण आलसी बना हुआ है ओर आगे बढ़ने के यत्न नहीं कर सकता। में चीन की ओर देखता हूं,उसके दुःखदायक इतिहास पर दृष्टि डालता हूं, जिसकी सभ्यता महान और प्राचीन है।

अंग्रेजों ने इस देश के लोगों को अफीमी कहा और उस पर प्रांतीय अधिकार जमाए रखे। यह यादें अभी भूली नहीं थी कि एक और दुर्घटना हो गई। जापान ने उत्तरी चीन पर अधिकार करना शुरु कर दिया और इस इतनें बड़े अत्याचार को अंग्रेज़ी नीतिज्ञों ने एक छोटी सी घटना के रुप में वर्णन किया। बाद में इन्हीं नीतिज्ञों ने स्पेन के गुरुतन्त्र को तबाह

और बरबाद करने के प्रयत्न किए।

"इसके विपरीत मैं अंग्रेज शूरवीरों को जानता हूं जिन्हों ने स्पेन में स्वतन्त्रता संग्राम लड़ते २ अपनी जानें कुर्बान कर दीं, यह भी सत्य है कि जब एशिया के एक देश चीन को तबाही का सामना करना पड़ा तब किसी अंग्रेज के मन में दर्द और सहानुभूति पैदा न हुई। अंग्रेजों का राष्ट्रीय प्यार तब जगा जब अन्य देशों की स्वाधीनता की समस्या उनके सामने आई मैं इस राष्ट्रीय प्यार को श्रद्धांजली अर्पित करता रहा, इस परिवर्तन ने मुझे चकाचौंध कर दिया और मुझे विवश हो कर पश्चमी सभ्यता में अपने टूट रहे विश्वास की कहानी दुनियां को बतानी पड़ी।"

"यहां भारत में इस सभ्य राज्य की झलक तब दृष्टि गोचर होती है, जब हम देखते हैं कि हमारे देशवासिकों के लिए न खाने का, न वस्त्रों का, न विद्या का और न स्वास्थय सेवायों का प्रबन्ध किया गया। इससे भी भयानक बात जो उन्होंने की है देशवासियों को दो भागों में बांट दिया गया, परस्पर लड़ा दिया गया, भाई-भाई को शत्रु बना दिया गया। इसका उत्तरदायित्व उन हमारी सामाजिक त्रुटियों पर डाल दी गई और स्वयं इस दुर्दशा को लाने से दूर रहे। यह कुरीतियें हमारे देश में कभी न आतीं यदि देश के शासक गुप्त रूप में इनकी सहायता न करते।"

"मैंने यह कभी भी नहीं माना कि हम भारतीय विद्वता और बुद्धिमता में किसी भांति जापानियों से कम हैं, फिर हम क्यों इतने पिछड़े हुए और वह इतने आगे बढ़े हुए हैं। इसका एक मात्र कारण यह है कि हम सदा ही अंग्रेजों के रहम पर रहे,

जब जापान सदा ही स्वाधीन रहा। वहां किसी विदेशी ने शासन नहीं किया। हम जानते हैं कि हमारा सब कुछ कैसे लुट गया है, हमें इस नाम मात्र के सभ्य देश के राज्य ने केवल कानून और शांति देकर पुलीस राज्य की स्थापना की। स्वतन्त्रता को शक्ति तथा राज्यमद के नीचे दबा दिया गया।"

"फिर भी मैं इस भांति के विशाल हृदय अंग्रेज़ों से मिला हूं जिसके दिलों में भलाई थी, दुखियों के लिए सहानुभूति थी, इनके कारण ही मुझे उस जाति पर विश्वास रहा जिनके वह सपुत्र थे। उदाहरणतया ऐंड्रीऊज़ का नाम लिया जा सकता है जो मेरे अंग्रेज़ मित्र थे। एक सच्चा ईसाई तथा सज्जन मनुष्य, आज उसकी मृत्यु हो गई है। परन्तु उसके गुण और चमक आए हैं। हम भारतीय उनके प्यार और बलिदान के लिए कृतज्ञ हैं, पर जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं उनका बहुत ऋणी हूं क्योंकि उन्होंने मेरा अपने अन्तिम समय में अंग्रेज़ों से प्यार जगाए रखा जो मेरे जीवन में उनका साहित्य पढ़ कर उतपन्न हुआ था। ऐंड्रीऊज़ की याद मुझे अंग्रेजों की सज्जनता की याद दिलाती है। मैं इस भांति के कई मित्रों से परिचित हूं जो सारी मानवता के मित्र हैं। इस भांति के मित्रों को जान कर मेरा जीवन सफल हुआ, यह इस भाँति के लोग ही हैं जो अंग्रेजों को बर्बादी से बचाएँगे और उनका सम्मान ऊंचा करेंगे। यदि कभी मैं ऐसे लोगों से परिचित होता तब पश्चमी लोगों के लिए मेरे मन से यह भ्रम कभी भी न निकलता।'

'फिर सारे योरुप में दानवता फैल गई, चारों और भय तथा सहम फैल गया, भयानक खुले दाँत व पंजे लोगों को अपनी पकड़ में लेने लगे। एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक

वातावरण अत्याचार तथा अनर्थ से भर गया, हिंसा जो पश्चिम वालों में कूट २ कर भरी हुई है, मनुष्य की आतमा को समाप्त करने पर जुटो हुई है।"

'एक दिन अवश्य आएगा जब अंग्रेज़ के भाग्य का चक्कर बदलेगा और उसे विवश हो कर भारत छोड़ना पड़ेगा, परन्तु वह किस भांति का भारत छोड़ कर जाएगे, अन्धकार कुटिलता और निराश्रय लोग, जब उनका दो शताब्दीयों का राज्य यहा से समाप्त होगा तब कूड़ा करकट चारों ओर दृष्टीगोचर होगा, जो हमारी विवशता को कहानो सुनाएगा। कोई ऐसा भी समय था जब मेरा विश्वास था कि सच्ची सभ्यता के स्त्रोत योरुपीय दिलों में से फूटेंगे परन्तु आज जबकि मैं दुनियां छोड़ने वाला हूं, मेरा यह विश्वास छिन्न भिन्न हो गया है।'

आज मैं इस आशा पर जीवित हूं कि बचाने वाला आ रहा है परन्तु वह पैदा होगा, निर्धन व विवश भारत को मिट्टी में से, मैं उस सन्देश को प्रतिक्षा करूँगा जो वह अपने साथ लाएगा। वह लोगों को विश्वास और भरोसा दिलाता पूर्व से बोलेगा और जो यह सन्देश सुनेगा उन्हें शक्ति तथा विश्वास प्राप्त होगा।'

'जब मैं अपने पिछले जीवन पर नज़र मारता हूं तब देखता हूं कि इतिहास में सभ्यता की बर्बादो के चिन्हों के समूह हैं। इतना कुछ होने पर भो मैं मनुष्य को महानता पर विश्वास नहीं खो सकता तथा इसको अब वालो पराजय को इसका अन्त नहीं मान सकता। जब यह अन्धकार समाप्त हो जाएगा और आकाश साफ हो जाएगा तब इतिहास बदलेगा।'

'इधर एक नया प्रातः उदय होगा, पूर्व की ओर से जिस

ओर सूर्य उदय होता है। तब मनुष्य अपनी विजय की भावना मिटाएगा तथा फिर अपनी वस्तु को प्राप्त करेगा।'

हम ने देखा कि कैसे कवि ने योरुप में हो रहे अत्याचार, जुल्म तथा अन्याय विरुद्ध निर्भय होकर आवाज़ उठाई। कवि ने पक्षचमी सभ्यता को दिल खोल कर बुरा भला कहा, कवि ने अनुभव किया कि यह पक्षचमी सभ्यता ही नहीं जो अन्धेरे में भटक रही दुनियां को मार्ग दिखा सकती है बल्कि पूर्वी सभ्यता को भी सम्मान प्राप्त हो सकता है।

कवि के इन विचारों का प्रकट होना था कि अंग्रेज़ों में हलचल मच गई। उन्होंने बहुत बुरा माना तथा कवि का विरोध किया। चाहे अंग्रेज योरुप में हो रही बर्बादी का एक भाग हैं परन्तु वह अपने इस कार्य से अनभिज्ञ थे। लड़ाई के दिन थे, सारा योरुप आग में जल रहा था इस लिए अंग्रेज अपने सम्बन्धि हुई किसी आलोचना को सहन नहीं कर सकते थे।

सन् १९४१ का वर्ष भारत के इतिहास में एक अमंगल वर्ष माना जाएगा। यह वह साल है जब उसका एक महान व्यक्ति, एक महान सपुत्र, लोक प्रिय कवि तथा अनथक समाज सेवक इस दुनियां को छोड़ जाता है।

अगस्त मास आरम्भ हुआ, कवि बहुत कमजोर हो गए, वह अब चल भी नहीं सकते थे, हाथ में कलम पकड़नी कठिन थी, स्पष्ट था कि अन्त निकट है। कवि एक बार शान्ति निकेतन से गए बस गए, फिर वह लौट कर वहाँ नहीं आए, शान्ति निकेतन के वृक्ष तथा पक्षी भी उदास थे। वह कवि के वियोग का अनुभव कर आँसू गिरा रहे थे।

अब कवि अपने पुराने जोड़ाशंकु घर में विराजमान थे। कवि की पूरी २ देख भाल हो रही थी, वह ही घर जहाँ ८० वर्ष पूर्व कवि ने आंखें खोली थी, जहाँ बालक रवि कभी खेला था, जहां वह युवक हुआ था, जहां उसके शौक तथा अरमान पूर्ण हुये थे।

पांच अगस्त को कवि बेसुध हो गए, वह बेहोशी की दशा में लेटे हुए थे तथा मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका मनुष्य की महानता में विश्वास स्थिर था। वह ही मनुष्य जो एक दिन विश्व में अमन और शान्ति लाएगा, एक दिन विश्व को आग से बचाएगा, अन्धेरे से निकालेगा, नवप्रभात का उदय करेगा, नई प्रभात लाएगा।

सात अगस्त का दिन आ गया, अनहोनी को कौन टाल सकता था, कवि ने आँखें बन्द कर लीं। रेडियो पर समाचार आया, सारे देश में शोक छा गया, एक महान व्यक्ति इस संसार से चला गया है, अपना शरीर छोड़ गया है। आज इतने बड़े घर में कवि टैगोर नहीं जहाँ बाल रवि चाव से घूमता था, आज केवल उसकी आत्मा ही रह गई है।

सारा भारत प्रतीक्षा कर रहा था, सम्पूर्ण विश्व प्रतीक्षा कर रहा था, दुनियां के शान्ति प्रिय लोग, साहित्य प्रेमी प्रतीक्षा कर रहे थे कि कवि ठीक हो जाएंगे। कवि फिर कलम उठाएंगे और दुनिय को प्रकाश देंगे, परन्तु रेडियो के समाचार ने उन्हें निराश कर दिया उनका विश्वास तोड़ दिया।

जोड़ाशंकु का घर दुःखी लोगों की भीड़ से भर गया, हजारों व्यक्ति एकत्रित हो गए, क्योंकि साहित्याकाश का एक सितारा अलोप हो गया था। कवि ने अपनी मृत्यु से कुछ

दिन पूर्व एक गीत लिखा था और इच्छा प्रकट की थी कि यह उसकी मृत्यु पर गाया जाए।

'मेरे सामने शान्ति का समुन्द्र है'
नौका वाले, इसमें मेरी नौका डाल दो'

तब कवि का अपना प्यारा भगवान् मलाह बना और उस की नौका समुन्द्र में चल पड़ी, किसी अनदेखे स्थान पर पहुंचने के लिए, जहां से कोई लौट कर नहीं आता।

लोगों की भीड़ दिन भर दर्शनों के लिए आती रही, पंक्तिएं लगी रही, लोग कवि का मृतक शरीर देख कर संतुष्ठता प्राप्त: करते। उनके मन को शान्ति मिलती, फूलों के ढ़ेर लग गए। कवि का शरीर फूलों से गुम हो गया।

दोपहर को अर्थी उठाई गई उनके शरीर को केसरी सिल्क में लपेटा गया विमान को शान्ति निकेतन के प्रसिद्ध चित्रकार श्री नन्द लाल बोस ने सजाया। हजारों लोग ॠग वेद में से श्लोक पढ़ते गए। कवि की आत्मा को शान्ति पहुंचाने के लिए, उनकी आत्मा को खुश करने के लिए। अर्थी जा रही थी, गुलाब के अर्क की वर्षा हो रही थी, श्लोक पढ़े जा रहे थे। मार्ग में मनुष्यों का ठाठें मारता समुन्द्र दिखाई देता था और अर्थी नीमतेला शमशान घाट पर जा कर रुकी। भीड़ बहुत अधिक थी, चारों ओर मनुष्य ही मनुष्य जो कवि की आत्मा को शान्ति पहुंचाने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। अब रात पड़ गई थी, अन्त में अर्थी को नीचे उतारा गया। लकड़ियों पर कवि के मृतक शरीर को रखा गया, श्लोक पढ़ते हुए कवि के पौत्र सविन्द्र नाथ टैगोर ने कवि के शरीर को आग लगाई और देखते २ कवि का शरीर भस्म हो गया, राख हो गया,

जल कर राख हो गया। उसी आग ने कवि के शरीर को भस्म कर दिया जिसकी वह प्रसंशा किया करते थे। मिट्टी मिट्टी के साथ मिल गई, और कवि का शरीर मिट्टी में मिल गया।

कवि के सपुत्र, रविन्द्र नाथ कवि के फूलों को लेकर शान्ति निकेतन पहुंचे। कवि का श्राद्ध रचाया गया। उसी स्थान पर जो कवि ने बड़े चाव से बनाया था और थामसन के कथना— नुसार जिस में भारत की आत्मा निवास करता है।

सारी दुनियां ने कवि को श्रद्धाजलि अर्पित की। विलायत तथा अन्य योरुपीय देशों में शोक समारोह किए गए। थामसन ने जो कवि के घनिष्ट मित्र थे सन्देश में कहा कि 'आज मैं अपने मित्र के श्राद्ध में ही भाग नहीं ले रहा बल्कि एक युग के श्राद्ध में भाग ले रहा हूं।'

श्री तेज बहादुर सप्रू ने कहा कि 'कवि ने संसार में भारत का स्थान बनायाहै।'

पंजाब के साथ क्योंकि कवि का घनिष्ट तथा अटूट सम्बन्ध था, उनका पंजाबीयों से आत्मीय नाता था इस लिए पंजाब में कवि की मृत्यु पर बहुत शोक मनाया गया, कई स्थानों पर समारोह हुए और मत पास किए गए।

१४ वां अध्याय

कवि टैगोर और राष्ट्रवाद

कवि टैगोर को हम साधारणतः कवि, साहित्यकार, चित्र कार और समाज–सेवक के रुप में ही जानते हैं। उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में अति अल्प भाग लिया और वह अपने जीवन में राजनैतिक उलझनों में अधिक नहीं फंसे और इनसे दूर रह कर देश और समाज की सेवा अपने ढंग से ही करते रहे। परन्तु इसका यह भाव नहीं कि उन्होंने देश की कठिना-इयों में कोई रुचि नहीं दिखलाई और देश में घटित घटनाओं को तटस्थ रह कर देखा। जब कभी भी देश में कोई संकट आया वे मैदान में कूद पड़े और दृढ़ हो कर अपने देशवासियों का पक्ष लेते हुये अपने राष्ट्रवाद का पूरा पूरा प्रमाण दिया और भारतीयों के मनों में स्थान बना लिया।

परन्तु कवि टैगोर का राष्ट्रवाद भी अपने ढंग का अनोखा ही था और उस में भेष से विलक्षणता स्पष्ट प्रतीत होती है। राष्ट्रवाद से भाव लिया जाता है, 'राष्ट्रीय-सेवा' अथवा 'देश-सेवा' करना, चाहे मनुष्य कोई भी विचार रखता हो और

किसी भी ढंग से देश सेवा करे। एक अच्छा साहित्यकार जो देश की कुरीतियों का दृढ़ता से मुकाबला करता है, लोगों को छोटी छोटी बातों से ऊपर उठने को कहता है और प्रदेसियों को चेतावनी देता है उनके अत्याचारों के लिये, वह भी राष्ट्र-वादी हो सकता है,सच्चा राष्ट्रवादी बन सकता है चाहे उसके राजनैतिक विचार कुछ भी हों।

कवि टैगोर का राष्ट्रवाद उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ। उन के पिता महा-ऋषि देविन्द्र नाथ टैगोर सच्चे राष्ट्रवादी थे। उनके मन में देश-प्रेम कूट कूट कर भरा हुआ था तथा देश-वासियों की सेवा के लिये वे सदैव तत्पर रहते। वे प्रत्येक बाधा के समय लोगों की सहायता अगवाई करते।

महाँ-ऋषि प्रथम भारतीय थे जो ब्रिटश इंडियन एसोसीए-शन के सैक्रेट्री बने। यह संस्था बंगाल के बड़े२ ज़िमीदारों की बनाई हुई थी और अपने ढंग से देश सेवा करती थी। यह संस्था अपने स्वतन्त्र विचारों के लिये देश भर में प्रसिद्ध थी। राज नारायण बासु अपनी स्व-जीवनी में महा-ऋषि सम्बन्धी लिखते हैं, "वे अंग्रेजों से सहचार बहुत कम रखा करते थे, वे उन से दूर दूर रहना अधिक पसंद करते थे और उनके साथ घुल-मिल बैठना उचित ख्याल नहीं करते थे। अतःस्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रवाद में इन्हों ने अपने विचारों द्वारा परिवर्तन किया। महा-ऋषि क्यों अंग्रेज़ों से सहचार रखना नहीं चाहते थे। क्यों कि भारतीय समस्याओं के सभाधान में, उनमें और अंग्रेजों में मत-भेद था।

वे कई बार इन मत-भेदों के कारण अंग्रेज़ों से विवाद भी करने और उनका रोष मूल लेते। इससे उनके मन को संतुष्टता

होती, उनके मन को शान्ति मिलती। अतः हम ने देखा कि महां-ऋषि, कवि टैगोर के पिता, के विचार कितने ऊंचे थे। उस पिता का पुत्र, जिसका उसके जीवन पर गहरा प्रभाव हो, राष्ट्रवाद से कैसे वंचित रह सकता था। राष्ट्रवाद उसे खून से मिलता है और उसके शरीर में रच जाता है।

अतः कवि टैगोर के मन में राष्ट्रवाद के लिए श्रद्धा थी। वे राष्ट्रवाद के उपासक बन गये। वे इसके पुजारी थे, इसीकी पूजा किया करते थे।

सन् १८९६ में इंडियन नेशनल कांग्रेस के अधिवेषण कलकत्ते में हुआ जिसके सभा-पति दादा भाई नारो जी थे। भाई टैगोर ने इस अवसर हित विशेष बिद्यिय गीत, "अभड़ा भिले छी आँच आचार डाके' लिखा जो कि कवि ने स्वंय पढ़ कर सुनाया। गीत को बहुत पसंद किया गया और कवि का राष्ट्र वाद विकसित हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में जब बंकिम चन्द्र चैट्र जी जीवित थे,कवि ने एक निबन्ध 'अग्रेज़ और भारतीय' लिखा जो उन्हो ने एक सभा में जिसके सभा-पति बंकिम चन्द्र जी थे, पढ़ कर सुनाया। निबन्ध में कवि का राष्ट्रवाद प्रत्यक्ष था। यह कवि और बंकिम चन्द्र जी का अन्तिम मिलन था। इस निबन्ध के अतिरिक्त इसी समय कवि ने कुछ अन्य निबन्ध भी लिखे जैसे अग्रेजों का भय' 'न्याय हित अधिकार' 'राजा और प्रजा' 'राजनीतिक झिझक' आदि। निबन्धों के प्रत्येक पंक्ति में राष्ट्रवाद झलकता है।

सन् १८९८ में जब राज्य सरकार गैर जिमेवार रचनाएं बन्द करने के लिये सडीशन बिल पास करने लगा तो बिल को

स्वीकृति के एक दिन पूर्व कलकत्ते के टाऊन हाल में एक भारी समारोह हुआ। इस में कवि ने अपना प्रसिद्ध निबन्ध 'कंठारोध' पढ़ कर सुनाया जिस में उन्हों ने बतलाया, 'राजा का निषेध करने को राज-द्रोह कहा जाता है पर प्रजा बिरुद्ध राजे के अत्याचार को 'प्रजा-द्रोही' क्यों नहीं कहा जाता। कवि के इन अक्षरों को बहुत कठोर समझा गया। कुछ दिन उपरांत ढाके में एक राजनैतिक समारोह हुआ जिसके सभापति कालोचरण बैनर जी थे जिन्होंने उस समय की रीति अनुसार अपना भाषण अंग्रेज़ी में पढ़ा परन्तु कवि ने उसका अनुवाद बंगला में किया और लम्मेलन का आरम्भक गीत बंगला में गाया। उस समय जब अंग्रेज़ी रचनाओं के प्रकाश से भारतियों की दृष्टि चुँधिया गई थी, कवि संभवतः प्रथम भारतीय थे जिन्होंने मातृ-भाषा में शिक्षा देने का मनोभाव प्रकट किया। बंगला में शिक्षा देने का साहस करना अति महान कार्य था। कवि ने शिक्षा संबन्धी एक विशाल निबन्ध में सुचिन्तक आलोचना की। इस निबन्ध को पढ़ कर उस समय के महान साहित्यकारों सर गुरदास बैनर जी, आनन्द मोहत बसु आदि ने कवि को धन्यवाद भेजा।

सन् १९०५ में जब लार्ड करज़न ने बंगाल विभाजन की घोषणा की तो समस्त बंगाल में हिल-जुल हो गई। लोग घबरा उठे, लोगों के मन विद्रोह कर उठे और वे अपनी भावनाओं को नियन्त्रित न कर पाये। समस्त बंगाल जाग पड़ा, लार्ड करज़न के भाईयों की विभाजन के निर्णय की विरोधता की गई, रोष प्रकट किया गया। हिन्दु और मुसलमान, एक ही शरीर की दो आँखों का विभाजन करने के नीति लोगों ने

पसंद न की। उन्हों ने दृढ़ता पूर्वक इस निर्णय को तोड़ने का यत्न किया, कवि जो कि अब तक अपनी साहित्यक रुचियों में लीन थे, इन से ऊपर उठे और कविता द्वारा बगाल-विभाजन के निशेध में आवाज़ उठाई। कविता में बहुत शक्ति होती है। इस द्वारा लोक-जीवन बदल सकता है। उन्हें उभारा जा सकता है,उन में नई आत्मा का संचार किया जा सकता है, कविता लोगों को स्वतन्त्र संग्राम में आगे बढ़ा सकती है, उन का नेतृत्व करती है। कवि के विभाजन पर लिखे गीत'बंगलार माटी''बंगलार जल' कलकत्ते के नगर की सड़कों और गलियों में गूंजने लगे। लोगों में नव–साहस का संचार हुआ और उत्साह बढ़ा।

कवि ने स्थान २ पर भाषण दिये और लोगों को हिंसा से रोका। उन्होंने लोगों को मिल कर रहने की प्रेरणा दी और विभाजन के अवसर को रक्षा–बन्धन मे बदल दिया। हिन्दु और मुसलमानों ने परस्पर रक्षा-बन्धन किया, आलिगंन किया और एकता का प्रमाण दिया। कवि ने अपने सिद्धाँतिक राष्ट्र–वाद को अपनाया।

विभाजन-विरोधी लहर को कवि और आगे ले गये,भातम किये गये और अगस्त सन् १९०५ को कलकत्ते में एक बहुत बड़ा जलूस निकाला गया जिस का नेतृत्व कवि ने स्वयं किया। वे गीत गा रहे थे और लोग उनका साथ दे रहे थे। जलूस के पश्चात् बाग बाज़ार में एक भारी समारोह हुआ जहां टैगोर ने एक ऐतिहासक भाषण दिया और लोगों को अमन और शांति से रह कर बंगाल-विभाजन विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा दी। लोग इतने उत्साहित हुये कि राष्ट्रीय–कोष के लिये ५० हज़ार

रुपये इकत्रित हो गये।

इसी समय अंग्रेज़ी राज्य ने प्रसिद्ध भारतीय राष्ट्रीय गीत 'बन्दे-मातरम' पर पाबंदी लगा दी। इस गीत का गाना गैर-कानूनी बन गया परन्तु कवि की आत्मा इस पर तड़प उठी और उन्होंने नगर की गलियों और बाजारों में इस गीत को लोगों द्वारा गाने की प्रेरणा दी। कवि का राष्ट्रवाद स्पष्ट रुप में हमारे समक्ष आया।

राष्ट्रीय-जागृति लाने में कवि का बहुत भाग है। कवि ने अपनी लेखनी द्वारा देश में चेतना का संचार किया। शायद भारत में प्रथमतः बंगाली साहित्यकारों ने ही अंग्रेज़ी नीति को चेतावनी दी और उनके इस विचार का खंडन किया कि भारत में शान्ति केवल अंग्रेज़ों ने ही स्थापित की है और अंग्रेज़ ही देश में अमन रख सकते हैं। कवि टैगोर इन साहित्य कारों में से एक थे। कवि ने कलकत्ते नगर के पढ़े लिखे लोगों के समक्ष लेख पढ़ा जिस में इस प्रकार विचार प्रस्तुत किये गये थे, "हम देखते हैं कि अंग्रेज हमें एक रयाइत दे रहा है और कल दूसरी, परन्तु कोई नहीं जानता कि कैसे हमें छिप कर चोट लगाई जा रही है। आप अपने लोगों को शिक्षा दें, नागरिकता के नियम सिखलायें, कम से कम एक भारत-वासी को अंग्रेजी अत्याचार से बचाओ, तब लोगों में देश-प्रेम की भावना जागेगी।

कवि रविन्द्र नाथ टैगोर साहित्य द्वारा देश-सेवा करना चाहते थे। अपनी लेखनी के बल से देश-वासियों को उत्साहित करके उन में नव-जागृति का संचार करना चाहते थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में देश में राष्ट्रीय वातावरण पैदा करना

कवि टैगोर जैसे साहित्कारों का ही काय था। कवि ने अपना जीवन भारत माता को अर्पित किया। उसके चरणों में सास झुकाया, उन्होंने अपनी एक कविता में यों लिखा :—

'जब मैं स्वर्गीय—प्रकाश में खड़ा होता हूं,
तो मेरे समस्त भय और आशंका समाप्त हो जाते हैं;
मैं अनुभव करता हूं कि इस संसार में,
मेरे लिये भी कुछ काम करने वाला है,
तो एक प्रभात मैं अपने देश में खड़ा हो
हाथ जोड़ कर प्रार्थना की,
ओ भारत-मां मेरा जीवन स्वीकार करो,

मैं अपने-आप को तेरे पर अर्पन करता हूं। इन्हीं दिनों में कवि ने कई लेख लिखे जिन में पश्चमी सभ्यता को अन्धा-धुन्ध अपनाने का निषेध किया गया। उन्होंने अंग्रेज़ी साम्राज्य के दक्षिणी अफ्रीका में किये अत्याचारों का विरोध किया। उन्होंने भारतीय सभ्यता की प्रशंसा में कई लेख लिखे। और लोगों को अपनी महत्ता से ज्ञात किया।

अंग्रेज़ी शासन था। अतः कई बार कुछ अभिमानी अंग्रेज़ भारतीय सभ्यता और इतिहास के सम्बन्ध में विरोध-पूर्ण बातें करते रहते थे। इसी भाँति एक बार लार्ड करज़न ने कलकत्ता विश्व-विद्यालय में अपने कन्वोकेशन भाषण में पूर्वीय-लोगों की सभ्यता की आलोचना की और कहा, 'पूर्वीय लोगों के आचरण सम्बंधी जो एक बात कही जा सकती है, वह उनका झूठे होना है। कवि टैगोर ने इस प्रकार कठोर रोष प्रकट किया और अंग्रेज़ों को अपने भीतर झाकने के लिये कहा और लोगों को अत्याचार का मुकाबला करने की प्रेरणा दी।

१९०४ में कवि ने एक स्थान पर 'स्वदेशी-समाज' का लेख पढ़ा, जो कवि के प्रसिद्ध लेखों में से है क्योंकि इस से पूर्व 'देश की समस्या क्या है।''''उसका समाधान क्या है ?' किसी ने स्पष्टतः नहीं था कहा राष्ट्रवाद से यह भाव लिया जाता है कि अंग्रेजी भाषामें ही भाषण दे देना,राज्य को लोगों के हस्त्राक्षरित विनय–पत्र भेज देना, समाचार–पत्रों में रोष प्रकट कर देना परन्तु 'स्वदेशी समाज' में कवि ने कहा, 'गांवों में ही देश-शक्ति है, अतः गाँवों में नव-जीवन का संचार करा।' यह नव-जीवन संचरित करने केलिये कवि ने कार्य-कर्म भी नियत कर दिया। परन्तु तत्कालीन राजनैतिक नेता कवि के इन विचारों से सहमत न हुये और गांधी जी के राजनैतिक-क्षेत्र में आगमन द्वारा ही यह परिवतन आया और ग्राम-सुधार को राजनैतिक-

अन्दोलन का लक्ष्य बनाया गया।

तब सन् १९०५ में कवि ने 'बंगिया साहित्य परिषद् की छत्र–छाया में हुये विद्यार्थियों के एक समागम में भाषण देते हुये उन्हें ग्राम-सुधार में जुट जाने की शिक्षा दी। भारत गांवों में निवास करता है,देश को ऊपर उठाना है तो गांवों को ऊपर उठाओ, गांवों में नव-जीवन का संचार करो, प्रत्येक विद्यार्थी एक गाँव को चुन कर वहां काम करे, उन्हें विद्या दो। इस कार्य के लिचे प्रशंसा-प्राप्ति का भाव मन से निकाल दो।'

१४ जून १९०७ को बंगाल के राजनैतिक नेता अरबिंद घोष, पकड़ लिये गये क्योंकि उन पर 'विद्रोही' लेख लिखने का दोष लगाया गया था। कवि टैगोर ने उस समय अपनी प्रसिद्ध कविता 'अरबिंदो राबिन्दे तो नमस्कार' द्वारानेताकोश्रद्धांजलि अर्पित की।

मार्च सन् १९०४ में बंगाल मे बंब फटने की दुर्घटना हुई और कुछ राष्ट्र-सेवकों को पकड़ लिया गया। इस अवसर पर कवि टैगोर ने अपने एक लेख 'पाठोपाठिया' जहां देश-वासियों को हिंसा से रोका और सूचित किया वहां अंग्रेज़ी राज्य के अत्यचारों का भी निषेध किया। लोगों के बलिदान के भाव की सराहना की और सरकार का विरोध किया।

सन् १९१२ में जब कवि जापान की यात्रा पर गए तो उन का विचार था कि वे वहाँ जा कर 'दूसरा जन्म' 'मेरा स्कूल' 'कला क्या है' आदि विषयों पर लेख पढ़ेंगे पर जब उन्हों ने 'जापान की अवस्था देखी तो उन्होंने राष्ट्रवाद का निषेध किया। अफ्रीका पहुंच कवि ने कहा, 'राष्ट्रबाद झूठा ईश्वर है, इसके नाम पर कोई बलिदान न दो। इन विचारों का प्रकट करना था कि केवल अफ्रीका में ही नहीं अपितु समस्त योरुप में कवि की विरोधता होने लगी। राष्ट्रवाद विरुद्ध बोलना और लिखना साहस का कार्य है। कवि अफ्रीका को सम्बोधन करके कहते हैं, "आप का ऐशिया-निवासियों से व्यवहार आप के राष्ट्रीय जीवन का काला पक्ष है।"

कवि जब भारत लौटे तो ये महा-युद्ध के दिन थे। योरुप में प्रथम महां-युद्ध पूरे यौवन पर था परन्तु भारत में अंग्रेज़ा अत्याचार का चक्र चला हुआ था। सभी राजनैतिक नेता जेलों में बन्द थे, अंग्रेज़ विरुद्ध एक शब्द कहना उसके क्रोध का शिकार होना था। कवि चाहे देश की राजनीति में कोई भाग नहीं ले रहे थे, फिर भी उनसे ये अत्याचार सहन न हुए। कवि ने यह लेखनी हाथ में ली और देश की राजनैतिक अवस्था पर कई लेख लिखे जिन में 'करतार इच्धार्य करमा,

(जैसे भगवान को भाये वसे करो)अधिक प्रसिद्ध है।

सन् १९१९ में पंजाब में जलियां-वाले बाग की घटना घटी। अंग्रेज़ी सैनिक जरनैल डायर ने निहत्ये भारतीयों पर गोलियों की वर्षा की। अत्यचार की अति हो गई। कवि को जब सूचना मिली तो उनकी आतमा व्याकुल हो उठी, वे कांप उठे और उन्होंने अंगेज़ी वायसराय को अपना ऐतिहासिक पत्र लिख कर 'सर' की पद्धति लौटा दी।

जुलाई सन् १९२३ में कवि जब अपने परादेषिक दौरे से लौटे तो देश में 'असहयोग अन्दोकन' पूरे यौवन पर था जिस का नेतृत्व महात्मा गांधी कर रहे थे। कवि को इस अन्दोलन में भाग लेने के लिये कहा गया परन्तु कवि इस से सहमत न हुये और उन्होंने गांधी जी को एक पत्र लिखा जिस में उन्होंने असहयोग आन्दोलन के सम्बंध में अपने विचार प्रस्तुत किये। गांधी जी ने इनका उत्तर अपने पत्र 'यंग इंडिया' में दिया और कवि टैगोर का महान प्रहरी (The great seatnial) का नाम दिया।

सन् १९२४ में कवि टैगोर चीन गये, जहां,उन्होंने शिघाई में जापानी क्षाता गणों के समक्ष भाषण देते हुये कहा कि मैं जापान की साम्राज्यी नीति से सहमत नहीं इस लिए उसे पश्चिमी साम्राज्य और राष्ट्रवाद से बच कर रहना चाहिये।

सन् १९३१ में समस्त देश में हिन्दु-मुसिलम फसाद शुरू हो गये, भाई भाई के क्षत्रु बन गए, एक दूसरे का गला काटा जाने लगा, चारों और आग भड़क उठी, कवि ने इस समय अपने कर्त्तव्य से पीछे न रहते हुये कुछ लेख लिखे जो' परबासी में प्रकाशित हुये। कवि ने देश-वासियों को सूचित किया "यदि

आप इसी प्रकार लड़ते रहे तो तीसरे वर्ग को साहस मिलने के अतिरिक्त आप को कोई लाभ न होगा और आपकी पराधीनता की शृंखलाएं दृढ़ हो जायेगी।

१३ अकतूबर सन् १९३१ को हिजली जेल में एक दुर्घटना हो गयी जहाँ प्रहरीयों ने दो राजनैतिक कैदीओं को गोली से मार दिया और कई दूसरों को घायल कर दिया। इस दुर्घटना का होना था कि पुन: समस्त बंगाल में हाहाकार मच गई, लोगों ने इसका बहुत बुरा मनाया और स्थान २ पर रोष-मय समागम किये। कवि टैगोर जिन के मन को शीघ्र ही चोट लगी थी चुप साध कर न बैठ सके। कलकत्ता नगर में कवि की प्रधानगी में एक समागम हुआ जिस में कवि ने दुर्घटना का विरोद्ध किया और कहा 'अन्धकार से लाभ उठा कर निहत्थे बन्दियों पर गोलियां चलाना किसी भी समय सरकार को शोभा नहीं तेता।'

सन् १९३२ में महात्मा गांधी ने अपना ऐतिहासिक मरन-व्रत आरम्भ किया। यह अंग्रेज की उस नीतिके विरुद्ध था जिस द्वारा वे भारत-वासियों को विभाजित करना चाहते वे। उन्हों ने अपने साम्प्रदायक एवार्ड की घोषणा की। गांधी जी नहीं चाहते थे कि भाई परस्पर अलग हो जायें, इन में खाई खुद जाये, अतः गांधी जी ने अपना जीवन दाव पर लगा दिया। इस अवसर पर कवि टैगोर ने गांधी जी को एक पत्र लिखा जिस में उन्होंने कहा "मूल्यवान जीवन देश-ऐकता के लिये बलिदान कर देना चाहिये, मैं नहीं कह सकता कि इस बलिदान का हमारे हाकमों पर क्या प्रभाव पड़े, जो इस की महत्ता को न समझ सकें, परन्तु हमारे देश वासियों के लिये यह अति

महत्व-पूर्ण है और यह बलिदान भारतीय हृदय को प्रभावित करेगा. यही स्वयं नहीं, कवि ने कवि टैगोर कलकत्ते से चल कर स्वयं यरवादा जेल पहुंच गये जहां गांधी जी ने व्रत रखा हुआ था।

वहां पहुंचते ही मि: मेक्डान्लड बर्तानिया के प्रधान मन्त्री को तार दिया और हालात संभालने की प्रार्थना की, जिस के फल-स्वरुप पूना-संधि हुई । गांधी जी ने कवि के हाथों फलों का रस पी कर व्रत खोला। यह बड़ा रमणीय द्रश्य था। कवि साथ ही साथ अपने प्रिय मधुर गीत गा रहे थे और गांधी जी अपनी सफलता की खुशी में विलीन थे।

कवि लग-भग सन् १९३७ तक देश के राजनैतिक क्षेत्र में किसी न किसी ढंग से भाग लेते रहे। उन्होंने सीधे रुप से कभी भी इस में भाग न लिया। वे अंग्रेज़ी अत्याचार की, जब वह अपने भयानक रुप में उनके समक्ष आता, दिल खोल कर विरोद्धता करते और अपने दृढ़ रोष प्रकट करते। उन की लेखनी में बल था, वह अत्याचार का मुख लौटा सकती थी अत: वे विशाल मन से इसका प्रयोग करते अंग्रेज को चेतावनी देते और देश-वासियों की अगवाई करते।

तत्पश्चात् सन् १९३१ से १९४१ तक कवि इस क्षेत्र में बिलकुल ही भाग ना ले पाये। क्योंकि उन का स्वास्थ्य खराब हो गया था और उनके लिये देश के विभिन्न भागों में घूमना कठिन हो गया। परन्तु सन् १९४१ में एक अंग्रेज नारी जिस का नाम मिस राथबौन था और जिसे भारत में तो किसी ने क्या जानना है, विलायत में भी कोई नहीं जानता था और जो बहुत अभिमानिन और कठोर स्त्री नजर आती थी, उसने भारत

वासियों के नाम एक खुला पत्र लिखा जो कई समाचार पत्रों में छपा। यह पत्र देश के नेता जवाहर लाल नेहरु को सम्बोधन कर के लिखा गया था। इस का उत्तर जवाहर लाल अच्छी तरह देते यदि वह जेल में न होते। नेहरु और अन्य नेता जेल में बन्द थे अतः कोई राजनैतिक नेता इस पत्र का उत्तर न दे पाया था।

कवि टैगोर मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। वे न लिख सकते थे, न बिस्तर से उठ पाते थे परन्तु कवि की आत्मा इस पत्र को पढ़ कर व्याकुल हो उठी, वह देश का निरादर न सहन कर पाये। उन्होंने उस अहंकारिन स्त्री को अनुकूल उत्तर दिया ताकि उसे और उस-जैसी अन्य स्त्रीयों को पाठ पढ़ाया जा सके। कवि का वह पत्र जो उन्होंने उस स्त्री को उत्तर में लिखा स्मरणीय पत्र है। अतःइस पत्र का कुछ भाग यहां दिया जाता है ताकि पाठक देख पायें कि कवि के मन में अपनी मातृ-भूमि अपने देश और देश की धूलि के लिये कितना दर्द था। उनका राष्ट्रवाद किस ढंग का था और कैसे उनके मन में देश-प्रेम उबल रहा था।

"मुझे इस राथबौन का भारतियों के नाम खुला पत्र देख कर बड़ा दुःख हुआ है, मैं नहीं जानता कि यह स्त्री कौन है परन्तु मैं यह जान सकता हूं कि उसकी मानसिक अवस्था साधारण अंग्रेज़ी की सी है। उस का पत्र जवाहर लाल के नाम है जो भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का चमकता हुआ सितारा है। मुझे आशा है कि यदि आज नेहरु जेल की काल-कोठड़ी में न होते, जिन्हें इसी नारी के देश-वासियों ने जेल में बन्द किया है, तो वे इस पत्र का अनुकूल उत्तर देते और ऐसी नारियों को मार्ग दिखला देते। वे क्योंकि बोल नहीं सकते

अतः मेरा यह कर्त्तव्य बन जाता है कि मैं बीमार होते हुये भी इसका विरोध करुं और रोष प्रकट करुं । इस स्त्री ने अपने देश-वासियों की कोई सेवा नहीं की। उसने ऐसा अशिष्ट चिट्ठी लिख कर हमारी आत्मा को झंझोड़ा है । उसने यह कह कर कि "भारतीयों ने अंग्रेज़ी विचार-धारा के कुंए से भर-पेट पानी पीया है' अपने आप को कलंक का टीका लगवाया है परन्तु मैं बतलाना चाहता हूं कि हमारे पास अपने देश-वासियों की सेवा करने के लिये कुछ विचार धारा है।'

अंग्रेज़ी विचारधारा द्वारा जहां तक कि इसका पश्चिमी जागृति से सम्बन्ध है, हम ने बहुत कुछ सीखा है, परन्तु मैं यह बतला देना चाहता हूं कि जितना हमारे देश-वासियों ने इस से लाभ उठाया है वह अंग्रेज़ी राज्य का विरोध होने पर भी नहीं उठाया है । हम विदेशी विचार धारा दूसरी यौरपीय भाषायों से भी सीख सकते हैं । क्या संसार के अन्य प्राणी इस बात की प्रतीक्षा करते रहे कि अंग्रेज़ आ कर उन में जागृति लायें । यह हमारे अंग्रेज मित्रों की भूल है यदि वे समझते हैं कि उन्हों ने हमें सभी कुछ सिखलाया है और यदि वे न आते तो हम प्रतिगामी रह जाते । यदि यह मान भी लौं कि केवल अंग्रेज़ी द्वारा हमने जागृति प्राप्त की है और इसी कुएं से पानी पीया है तो स्पष्ट है कि सन् १९३१ में जब कि शताब्दियों से अंग्रेज़ी राज्य स्थापित हो जाने पर भी केवल एक प्रतिशत भारत-वासी अंग्रेजी पढ़ पाये थे जब कि रुस में सन् १९३२ में १५ वर्ष के प्रबन्ध ने ९८ प्रतिशत बालकों को शिक्षित कर दिया था । यह 'आंकड़े' मैं 'सटेटस मैन ईयर बुक' में से लिये हैं जो एक अंग्रेज़ी प्रकाशन है और उस में रुस के पक्ष में कोई गलती

नहीं हो सकती।

'अंग्रेजों ने हमारे लिये क्या किया जब कि उन्होंने हमारे धन को खूब लूटा और निर्धनों का कुछ न बना। मैं चारों ओर नज़र डाल कर देखता हूं जब कि भूखे लोग रोटी के लिये तड़प रहे हैं। मैंने गांवों में देखा कि स्त्रीयां ज़मीन खोद खोद कर निढाल हुई जाती हैं, जल की दो बून्दों के लिते, क्यों कि भारतीय गाँवों में कुयों की अधिक कमी है, स्कूलों में भी। में जानता हूं कि अंग्रेज़ अब स्वय भी भूखे मर रहे हैं, मेरी उन से पूर्ण सहानुभूति है परन्तु जब मैं देखता हूं कि अंग्रेज़ों के अनेक जहाज़ उनके लिये अनाज ढोने में लगे हुये हैं, तब मैं मुकाबला करता हूं कि मेरे देश-वासी तड़प तड़प कर जान दे रहे हैं जबकि उन्हें चावलों का एक दाना भी साथ के प्रांत से मंगवा कर न दिया गया। अंग्रेज़ों का अपने देश में और हमारे देश में कितना अन्तर है। फिर भी हम अंग्रेजों के धन्य-वादी हों। हमें भर पेट रोटी न देने के लिये नहीं अपितु कानून और शांति स्थापित करके।

मैं देखता हूं कि समस्त देश फसादों के घेरे में घिरा हुआ है। हज़ारों भारत-वासी मारे जा रहे हैं, जायदाद लूटी जा रही है, हमारी महलाओं का नारीत्व लूटा जा रहा है; अंग्रेज़ों की बदूंकें और गोलियाँ गतिमय नहीं होती केवल हज़ारों मीलों से अंग्रेज़ी आवाज़ें आती हैं कि हम अपने घर का सुधार नहीं कर सकते। आज विलायत का प्रत्येक नगर अपनी रक्षा के लिये तैयार है और अपने घरों व अपनी जायदाद की रक्षा कर सकता है, पर भारत में लाठी चलाना भी कानून द्वारा बंद है। जान-बूझ कर निहत्था कर दिया गया है ताकि वे अपने

शासकों को दया पर रहें।

अंग्रेज़ नाज़ीयों से घृणा करते हैं केवल इस बात के लिये कि उन्होंने केवल अंग्रेज़ों की शक्ति का विरोध किया परन्तु हमें मिस रथबौन कहती है कि हम उन लोगों के हाथ चूमें इस लिये कि उन्होंने हमें पराधीनता की ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ है। हम अंग्रेज़ों से इस लिए घृणा नहीं करते कि वे विदेशी हैं और उनका हमारे मन में इस लिए स्थान नहीं कि वे अपने आप को हमारी भलाई के रक्षक समझते हैं, उन्होंने हम से विश्वासघात किया है, उन्होंने हमारी जनता की खुशियों को लूटा है। मैं सोचता था कि साधारण अंग्रेज़ ऐसी बात पर चुप रहेंगे परन्तु वे हमारे घावों को छेड़ कर ऊपर नमक छिड़कते हैं, यह शिष्टाचार की सीमा से परे है।''

हमने विस्तार-पूर्वक कवि टैगोर के राष्ट्रवाद और देश-प्रेम का उदाहरण देखा कि कवि के मन में कैसे यह भाव कूट कूट कर भरा हुआ था। इसके अतिरिक्त और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं।

आज का हमारा राष्ट्रीय गीत भी कवि टैगोर की रचना है। हमारी राष्ट्रीय सरकार ने इसे इस लिये अपनाया है कि इस में देश-प्रेम भरा हुआ है। इस गीत में कवि ने एक नया आदर्श प्रस्तुत किया। पहले लोग शासकों को मुख्य समझते थे परन्तु अब जनता स्वयं शासक है।

जन गन मन अधिनायक जय हो
भारत भाग विधाता।

कवि का एक अन्य राष्ट्रीय गीत देश-प्रेम से भरपूर है 'सारथक जन्म अमर, जो जोने भछी ए देशे।''

इस देश में जन्म ले कर ही मेरा जन्म सफल हो गया। इस गीत में इतना जोश है कि एक विद्रोही उलासकर दत्ता को जब फांसी की सज़ा मिली तो वह कचहरी के कमरे में ही यह गीत गा उठा। कविकी कई अन्य रचनाओं से भी राष्ट्रवाद और देश-भक्ति की झलक मिल सकती है। कवि का हम एक छोटा सा गीत दे कर इस अध्याय को समाप्त करते हैं। इस गीत में कवि ने क्या भावना प्रकट की है पाठक स्वय देख लें :–

बढ़ो आगे, बढ़ो आगे, मेरे वीरो
यात्रा में जीवन, काफले से पीछे रह जाना।
तो सच पूछो जीवित ही है मर जाना
केवल जी जी कर मर जाना है नहीं जीवन-उद्देश्य
है जीना नाम आशायों का भरा जाम पीने का
बढ़ो आगे, बढ़ो आगे, बढ़ो आगे !

यह उन का देश-वासियों को संदेश है देश–वासियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा है। उन्हें उत्साहित करना है ताकि वे अपने देश-हित अपने समाज हित कुछ कर सकें। देश को आगे ले जायें। देश में से निर्धनता, अज्ञान और दुःख दूर कर सकें।

अध्याय १५

कवि टैगोर की चित्रकारी

हम टैगोर के नाम से साधारणतया कवि, नाटककार और गल्पकार के रुप में ही परिचित हैं। इन क्षेत्रों में कवि ने अपना नाम पैदा किया और इन्हीं में उनका विशेष स्थान है। बहुत कम लोग जानते हैं कि टैगोर एक चित्रकार भी थे। वे अति सुन्दर और आकर्षक चित्र भी खींच लिया करते थे।

टैगोर की चित्रकारी में न तो किसी विशेष शली को अपनाया गया और न ही कला के किसी आश्रम की परम्परा पर वे चले। उनकी चित्रकारी की यह कला एक अनोखी कला थी जो शायद किसी अन्य कलाकार से मेल नहीं खाती।

कवि ने १९२८ में तुरन्त चित्रकारी आरम्भ कर दी, और कई सुन्दर चित्र बनाए जिन्हें कलाकारों और लोगों ने बड़ा पसन्द किया। यह उन के जीवन में महान और महत्ता-पूर्ण परिवर्तन था। इस समय कवि की आयु ६७ वर्ष की थी। इतनी बडी आयु में एक नवीन कला को अपना लेना कोई साधारण बात न थी।

कवि बाल्यकाल और युवावस्था में चित्रकारी की रुचि अवश्य रखते होंगे और उनके मन में भावना पैदा हुई होगी कि

वे सफल चित्रकार बनें।

उन के प्रारम्भिक चित्र केवल स्याही द्वारा बने हुए ही मिलते हैं। तत्पश्चात् १९२९ में उन्होंने विभिन्न रंगा की स्याही का प्रयोग किया और फिर नोकदार कलम, उंगलियां और कपड़े का प्रयोग किया।

इस का भाव यह हुआ कि कवि ने इन सभी वस्तुओं का प्रयोग करके अपने चित्रों को नई आभा प्रदान की जो शायद मात्र ब्रश द्वारा कभी भी पैदा नहीं हो सकती थी। कवि ने अपनी चित्र-कला के सम्बन्ध में स्वयं यों लिखा है :—

"मेरे चित्र रेखायों में कविता होते हैं। मेरी एक चित्रकार के नाते कोई योग्यता नहीं क्योंकि यह एक अनुभवहीन का प्रयास है उसी भाँति जैसे कोई स्वप्नमें किसी भयावन मार्ग पर चलता है और केवल अस्वाभाविक ही बच जाता है, भय को देख नहीं सकता।"

यह बात कवि पर पूर्णतया लागू होती है। क्योंकि जब कवि ने चित्रकारी आरम्भ की वे शायद नहीं जानते थे कि वे एक सफल चित्रकार बन जायेंगे। जब कवि से पूछा जाता कि क्या उन्होंने चित्रकारी में कोई शिक्षा प्राप्त की है तो वे उतर देते "मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मैंने कविता लिखना तो सीखा है परन्तु चित्रकारी नहीं।"

यह उनका शौक ही था जो उन्हें चित्रकार बना गया। उनके मन की एक उमंग थी जो परिपूर्ण हो गई।

कवि अपने चित्रों के शीर्षक भी कम देते थे, और न ही चित्र बनाने से पूर्व यह सोचते थे कि वे क्या बनाने लगे हैं। इस सम्बन्ध में कवि ने एक बार लिखा, "मेरे लिये अपने चित्रों

के शीर्षक देना अति कठिन बात है। इस का कारण मैं बतला देना चाहता हूं, मैं कवि के चित्र बनाने से पूव विषय के सम-बन्ध में विचार नहीं करता। अकस्मात् ही मेरी आत्मा की नोकदार कलम से किसी अनजाने मनुष्य का चित्र बन जाता है। उदाहरण के लिये समझो जैसे राजा जनक के हल की नोक द्वारा सीता का जन्म हो गया। राजा जनक के लिये इस नव-जात बच्ची का नामकरण करना सरल था परन्तु मेरे चित्रों की बालिकायें अनेक हैं जो बिन बुलाये अतिथि बन जाती हैं। मेरे लिये उन्हें गिणना और पहचानना और इनका हिसाब रखना कठिन कार्य है।"

कवि टैगोर के चित्रों में स्वयं ही प्राकृतिक दृश्य उपस्थित हो जाते थे और वे प्राकृतिक कला का नमूना प्रस्तुत कर देते थे। इसी लिये यों लगता था कि दर्शक स्वयं प्रकृति के साथ क्रीड़ा कर रहा है और उसके दृश्यों का आनन्द उठा रहा है। इस सम्बन्ध में कवि ने अपनी एक प्रदर्शिनी लगाते हुए कहा, „मैंने अपने चित्रों में केवल रेखाएं खींची हैं और यदि उनमें से कोई परिचित सूरत निकल आये तो यह एक अस्वाभाविक बात है।" इस का स्पष्ट भाव यह है कि कवि किसी विषय को मुख्य रख कर चित्र नहीं बनाते थे। उनके मन में जो आ गया, लिख दिया और यह दर्शकों पर छोड़ दिया कि इस में क्या दर्शाया गया है।

टैगोर की चित्र-कला चाहे पूर्णत्या भारतीय कला थी परन्तु इस पर देशी कला का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा क्योंकि १९२६ में जब कवि अपनी यात्रा में इटली, फ्राँस, जर्मनी और विलायत गये तो उन्होंने वहां यूरपिय चित्र-कला का ज्ञान

अवश्य प्राप्त किया होगा। और सम्भव है कि उनकी चित्र-कारी पर यूरोप के चित्रकारों पाल-लीय (Paul klee), एडवर्ड मन्च (Munch) और पिकासो (Picasso) का पर्याप्त प्रभाव पड़ा हो। परन्तु फिर भी टैगोर के चित्रों में भारतीयता स्पष्टतया झलकती है और उन्होंने यत्न किया कि भारतीयता उनकी चित्रों से निकल न जाए। इसके साथ साथ कवि अपनी कला को भारतीयता में सीमित नहीं रखना चाहते थे। तथा इसे समस्त संसार की कला बनाने के इच्छुक थे।

कवि के चित्रों में से 'धेचा बाबा' 'नारी मिलन' 'मां-पुत्र' और 'प्रतीक्षा' अति प्रसिद्ध है।

एक अन्य बात जो यहाँ बतलानी अवश्यक है कि कवि के चित्र अधिकतर भारत-वासियों की समझ में न आए जो उस समय अविकसित थे, निर्धन थे और देश पराधीन था। निर्धन और पराधीन लोगों की रुचि कला में कैसे हो सकती है। यूरपिय देश क्योंकि आगे बढ़े हुए थे अतः वहां के निवासियों ने कवि की चित्र-कला की अति सराहना की और कवि का चित्रकार के रूप में भी सम्मान किया। तभी कवि की चित्रों की प्रदर्शनियां यूरपिय देशों में हुई, हमारे देश में न हो सकीं। जहाँ जहाँ भी कवि के चित्रों की प्रदर्शनी की गई, लोग हज़ारो की गिणती में देखने के लिए आए और उन्हों ने प्रशंसा की।

टैगोर ने चित्रकारी चाहे बड़ी आयु में आकर प्रारम्भ की, उन्हें शौक था कि वे इस क्षेत्र में भी कुछ करके दिखलाएं, उन्हें चित्रकारी हित केवल १३ वर्ष प्राप्त हुये—१९२८ से १९४१ तक। यदि वे युवावस्था में चित्र-कला प्रारम्भ कर देते तो इस क्षेत्र में वे शायद और भी उन्नति कर जाते। परन्तु कवि का

यह इच्छा एवं उमंग थी कि वे कुछ करें अवश्य और उन्होंने शान्तिकला निकेतन की प्रदर्शिनी देख कर कहा, "मुझे शोक है कि अब समय न रहा। मैंने अभी बड़ा कुछ करना और सीखना है। परन्तु नज़र कमज़ोर हो गई है, हाथ काम नहीं, करते, ऊंगलियों में पहले से कोमलता नहीं रही सब छिन गयाहै। काशः यदि कुछ समय और मिल जाता तो सब कर लेता।"

अध्याय १६
टैगोर के पत्र

टैगोर जब कभी बाहिर जाते थे तो अपनी धर्म-पत्नी और मित्रों को पत्र लिखा करते थे जो बहुत महत्वपूर्ण हैं। कवि जब विदेश गये तो वहां से उन्होंने अनेक पत्र लिखे जिन में उन्होंने सम्बन्धित देशों की महानता प्रकट की। और वहां की आर्थिक और सामाजिक अवस्था पर आलोक डाला। अतः इन पत्रों पर विचार करना अति आवश्यक है। क्योंकि पाठकों को इस क्षेत्र में भी कवि की महत्ता का ज्ञान प्राप्त हो सके।

टैगोर के ये पत्र १२ भागों में छपे हुए हैं। कुछ बंगाली में हैं और कुछ का अनुवाद अंग्रेजी में छपा है। कुछ मौलिक रुप में ही अंग्रेजी में लिखे गये जो 'मित्र को पत्र' (Letters to-a Friend) के नाम से प्रकाशित हुए।

टैगोर के पत्र 'उनकी पत्नी के नाम' विश्व–भारती द्वारा प्रकाशित हुऐ। ये पत्र १८९०–१९०१ के मध्य में लिखे गए जब कवि और उनकी पत्नी मरिलीनी देवी थोड़े समय के लिये अलग अलग रहे। इन पत्रों का अनुवाद लीला मुजमदार द्वारा अंग्रेजी में किया गया। अब हम इन पत्रो में से कुछ पत्र हिन्दी में अनुवाद करके देते हैं।

पत्नी के नाम पत्र

शिला ईदा

१९०१

मैं आप को कल पत्र लिख नहीं पाया। क्योंकि कत मुचारों की ओर से नये वर्ष की बटाई देने का समारोह मनाया गया। मैं प्रथम सांयकाल यहां पहुंचा हूं। खाली घर मुझ खाने को पड़ता था। मेरा विचार था कि मैंने काफी कार्य किया है। परन्तु मेरा इस घर में एकाकी प्रवेश करने का मन नहीं किया जहां हम दोनों एक साथ रहने के आदी थे। जब मैं थक कर घर लौटा तो मेरी देख-रेख करने वाला कोई न था और न ही हार्दिक स्वागत करने वाला। घर खाली खाली लगता था। मैंने लिखने-पढ़ने का यत्न किया परन्तु कुछ नहीं कर पाया।

जब मैं शाम को उपवन से सैर करके घर लौटा तो खाली कमरे में मिट्टी के तेल की बत्ती तो थी परन्तु कमरा निर्जनलग रहा था। ऊपर के कमरे शून्य अनुभव हो रहे थे। मैं पुनः नीचे आ गया तो लेम्प बुझ चुका था। मैंने बत्ती जलाई और पुनः पढ़ने का यत्न किया। परन्तु मैं कुछ न कर पाया।

मैं शीघ्र ही भोजन पा सो गया। मैं ऊपर वाले पश्चिमी कमरे में और रात को पूर्वीय कमरे में सोया। रात को बहुत शीत था और मुझे लिहाफ ओढ़ना पड़ा। दिन में भी शीत काफी होता है।

कल बटाई लेने का कार्य गीतों, संगीत और प्रार्थना में समाप्त हुआ। सांय को एक कीर्तन-मंडली आ गई और हम रात के ग्यारह बजे तक कीर्तन सुनते रहे।

आप की बगीचीअब यौवन पर है परन्तु पौधे इतने निकट

लगे हुये हैं कि उनके बढ़ने-फूलने के लिये कोई स्थान नहीं। मैं आप को कुछ पुष्प भेजूंगा। नीट् की ओर से भेजे हुये गुलाब के पौधे बहुत खिले हुए हैं। परन्तु इन में बहुत से अच्छी श्रेणी के नहीं। उनके साथ धोखा हुआ है। रात की रानी खिली तो बहुत है पर सुगन्धित दे रही है। मेरा विचार है कि वर्षा के दिनोंमें फूलों की सुगन्धि कम हो जाती है।

तालाब पूर्णतः भरा हुआ है। ईख भी काफी पैदा हुआ है। प्रत्येक ओर हरी-भरी है। सभी पूछते हैं कि बीबी जी कब आएंगी।

दूसरा पत्र

शिलाईदा

जून १९०१

बटाई लेने से मुक्त हो कर मैंने पुनःलिखना शुरु कर दिया है। जब मैं एक बार पुस्तक लिखना प्रारम्भ कर देता हूं तो मेरी अवस्था उस मछली की सी होती है जो एक बार पानी से बाहिर निकाल कर पुनः पानी में फेंक दी जाती है। अब यहाँ की एकाकीपन मेरा पूर्ण सहायक है। जीवन की छोटी छोटी घटनाएं अब मुझे स्मरण नहीं आती और मैं शत्रुओं को भी भूल गया हुं।

मैं समझ सकता हुं कि तुम्हें एकाकी-वास क्यों दुःखी करता है। मैं आपके साथ प्रसन्नता विभक्त करके कितना आनन्दित होता हुं। परन्तु आनन्द ऐसी वस्तु है जो किसी को दी नहीं जा सकती।

जब मैं कलकत्ते का कोलाहल छोड़ कर यहां आया हूं तो मुझे अद्भुत सा दीख पड़ता है। आरम्भ में यह कुछ अच्छा सा

लगता है परन्तु नहीं बाद में भी जब एकांकी रहने की आदत पड़ जाती है तो मन को शान्ति नहीं मिलती। परन्तु बतलाओ मैं क्या करु जब मेरा कलकत्ते में भी कई बार मन नहीं लगता तो मुझे क्रोध आता है। छोटी सी बात पर भी खीझ होती है किसी को क्षमा नहीं कर पाता। यह मेरी अपनी आत्मा को दु:खी करना है।

वहां किसी को भी शान्ति नहीं। राथी और दूसरों की पढ़ाई का प्रबन्ध नहीं हो सकता। इन कारणों से बनवास काटना ही पड़ता है। तत्पश्चात् मैं किसी और जगह वहां रहनें का प्रबन्ध करु गा परन्तु कलकत्ते में कभी नहीं रह सकता।

अब आकास बादलों से घिर गया है और बर्षा होने को है और मैंने निचले सभी कमरों की खिड़कियां बन्द कर दी हैं और जब मै तुम्हें पत्र लिख रहा हूं तो मेरे कमरे की खुली खिड़की से बर्षा का अति रमणीय दृश्य दीख पड़ रहा है। निचले कमरों में ऐसा दृश्य मानना असम्भव है। हरे हरे खेतों और बर्षा की फुहारें दौड़ती अति सुन्दर लगती हैं'।

मै 'मेगइन' की आलोचना लिख रहा हूं यदि मैं इस दिन भी सुन्दरता का वर्णन इस में कर पाता तो मैं शीलाइदा के खेतों की हरीतिमा का दृश्य अपने पाठकों के लिये खींच सकता तो कितना अच्छा होता। मैंने अपनी पुस्तकों में अनेक बातों का वर्णन किया है परन्तु ऐसे सुन्दर बादलों और वायु में उड़ती हुई टहनियों, और मूसलाधार बर्षा का दृश्य अति रमणीय है। इनका वर्णन मैं क्या करु।

कोई नहीं जानता मैं इन दृश्यों को कैसे अपने मन में संभाल रखू। अब बर्षा थम गयी है और यह पत्र डाकखाने भेज देने का अनुकूल समय है।

मित्र की ओर पत्र

सी. एफ. एंडरियुज़ के नाम

कलकत्ता

जुलाई २१, १९१५

भारत में जब मध्य-श्रेणी के लोग छोटी जातियां पर राज्य करते हैं तो वे स्वयं बन्धनों में बंध जाते हैं। योरुप का ब्रह्मण भारत का अनुकरण कर रहा है जब वह ऐशिया और अफ्रीका के देशों को अपने अपने अधीन रखना चाहता है। यह समस्या बहुत सुगम हो जाए यदि योरुप सभी देशों के वासियों को ठँक दे, परन्तु जब तक विदेशी रहेंगे योरुप अपनी सदाचारक ज़िम्मेवारी अनुभव नहीं कर सकता। सब से अधिक हानि-कर बात तब होती है जब योरुप देश समझता है कि वह मानवता की सहायता कर रहा है परन्तु इसका कोई लाभ नहीं यदि अपनों से निम्नकोटि के लोगों पर ध्यान न दिया जाये। योरुप धीरे धीरे अपने सिढ़ि सिद्धान्त छोड़ रहा है और अपनी सदाचारक सहायता गवा रहा है।

परन्तु मैं क्यों सत्यता का ढंढोरा पीटता रहा। मैं अपनी ओर भी इस सत्य को जानता हूं कि कमज़ोरी का आगमन स्वाभाविक है और यह देश को गिराती है। प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति आवश्यक है ताकि संसार के देशों की शक्ति का संतुलन समान रहे। हम इंग्लैंड की कोई सेवा नहीं कर रहे क्योंकि हम ने उन्हें अपने पर राज्य करने काअ्र वसर दिया है। उनकी हम से कोई सहानुभूति नहीं फिर भी वे हमारी बातें करते हैं।

क्या योरुपिय महां-युद्ध की समस्या से कभी अवगत न

होंगे । वे अनुभव करें कि उन की महत्ता अपने सिद्धान्तों पर स्थिर रहने में है । वे सिद्धान्त जो उसे महान बनाते हैं, जो तैल कभी योरुप की बत्तियां दीप्त करता था समाप्त हुआ जान पड़ता है अब वह तैल पर भी विश्वास करने को तैयार नहीं। क्योंकि अब यह तैल दीप जलाने के लिये लाभदायक नहीं ।

बर्लन

जून ४, १९२१

मैंने बर्लन के एक थीएटर में अपना नाटक 'डाक-घर' अभिनीत होता हुया देखा। उस युवती का अभिनय अति सुन्दर था जिसने अमल का कार्य किया। नाटक का बहुत सफलता मिली। परन्तु यह हमारे विचित्रा में खेले गये नाटक से पूर्णतः पृथक था। मैं मन ही जन इस अन्तर के सम्बन्ध में सोचता रहा जब डा. ओदा जो दर्शकों में से थे न इस ओर संकेत किया। उन्होंने बतलाया कि जर्मनो के अनुसार इस नाटक का भाव सुझाउन है और सुन्दरता से भरा हुया है। परण्तु इस नाटक का वास्तविक भाव आत्मिक है। क्या आप समझते हैं कि मेरे देश-वासियों के लिए इस नव-भाव का कोई अर्थ है तो उन्हें स्वतन्त्रता राजा के चोबदार द्वारा प्राप्त हो और अंग्रेज़ी पार्लीमेंट की ओर से न दी जाय और जब उन आत्मा सजग हो तो उन्हें कोई चार–दीवारी में बन्द न रख सके ।

पीअर्सन के नाम पत्र ।

शान्ति-निकेतन

६ अक्तूबर १९ ८

प्रिय पीअर्सन,

चाहे मैं इस अंतिम सेशन में कक्षाएं दिन के समय पढ़ाता रहा हूं और शेष समय पुस्तकें लिखने में व्यतीत करता हूं परन्तु ऐसा कार्य मेरी प्रकृति के मनुष्य के लिए करना कठिन है।

परन्तु अब मैंने जाना है कि न केवल उसके रुचि है अपितु इस में बड़ी शान्ति और विश्राम मिलते हैं। दिमाग पर उस समय कोई न कोई बोझ रहता है जो काम करने से कम होता है। इसी प्रकार किसी नये विचार द्वारा भी होता है। परन्तु विचार साधारणत: विश्वास पूर्वक नहीं आते और जो समय इनकी प्रतीक्षा में गुजरता है, बड़ी कठिनता से गुजरता है। विश्राम करने के सभी स्थानों से विश्राम-गृहों में सब से कम विश्राम मिलता है। यहां हमें आलस्य में रहना पड़ता है, जिस का कोई लाभ नहीं। अब मेरी यह अवस्था है कि मैं विचारों के आगम-समय की प्रतीक्षा नहीं कर सकता, अत: मैंने वह कार्य आरम्भ कर दिया है जिस में से यदि मुझे आनन्द नहीं मिलता फिर भी मुझे पढ़ाई का कार्य दु:खी नहीं करता। मैं अपने विद्यार्थियों को जीवन से भरपूर विचार करता हूं और 'जीवन' से सम्बन्ध रखना कभी दु:खप्रद नहीं होता।

मैं यहाँ से एक दो दिन के लिए जा रहा हूं, दक्षिणी भारत की यात्रा पर जहां से मुझे कई निमन्त्रण आ चुके हैं।

रानू के नाम

शान्ति-निकेतन

२५ नवम्बर १९१८

मुझे काम से एक मिन्ट भी अवकाश नहीं मिलता। प्रत्येक समझता है कि मैं कवि हूं, दिन-रात मैं आकाश में उड़ते हुए बादलों से क्रीड़ा करता रहता हूं और वायु के राग सुनता हूं। मैं चांदनी-रात में लीन हो जाता हूं और पुष्पों की सुगंधि मुझे उन्मत्त कर देती है, मैं पत्तों के हिलने से सिहर उठता हूं। यह सब ईर्ष्या-वश है, वह उस पर गर्व करते हैं कि वे चाहे कविता नहीं लिखते वह सारा दिन कार्यालय जाते हैं, वे कचहरी जाते हैं, वे समाचार-पत्र प्रकाशित करते हैं, भाषण देते हैं, व्यापार करते हैं, इन सभी के पास कोई अवकाश नहीं।

मैं चाहता हूं कि वे लोग यहां आयें और देखे कि मैं कार्य करता हूं या नहीं। वे चाहे कितना भी काम करते हों, यह मैं मानता हूं परन्तु क्या उनके पास काम न करने की शक्ति है, जब उनके पास काम करने के लिए नहीं होता, वे या तो सोये रहते हैं, ताश खेलते हैं, शराब पीते हैं, अथवा दूसरे लोगों की निन्दा करते हैं। उन्हें मालूम ही नहीं कि समय कैसे व्यतीत किया जाता है, मैं जब मेरे पास काम होता है, अवश्य करता हूं, परन्तु जब काम नहीं होता, मैं मन से काम नहीं करता। अभी अभी मेरे पास इतना काम था कि मैं नाटक की एक पंक्ति नहीं लिख पाया।

अध्याय—१७

महान कवि टैगोर की कविता

हम ने कवि की अन्य रचनाओं का वर्णन पहले किया है, उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी निबन्ध आदि के क्षेत्रों में जो प्रसिद्धि प्राप्त की है वह चाहे अति महत्वशील थी परन्तु कवि वास्तव में तो कवि ही था और कवि होने के नाथे जो संसार में उन्होंने स्थान बनाया उसे कोई ललकार नहीं सकता। वे इस क्षेत्र में प्रसिद्धता की उस मंजिल पर पहुंचे जिस से गिरना असम्भव हो जाता है चाहे शस्त्र बद्ध भी क्यों न हो जाये।

विश्व-कवि टैगोर की कविता का वर्णन करते हुये हजारों पृष्ट लिखे जा सकते हैं, सैंकड़ों पुस्तकें प्रकाशित की जा जकती हैं। दस-पन्द्रह पृष्टों में तो सम्भवत: कवि की एक कविता की आलोचना भी न हो सके परन्तु जैसे कि पहले बतलाया गया है हमारा उद्देश्य कवि की रचनाओं की आलोचना करना नहीं अपितु हमने तो उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करना है। इसी कारण हमने उनकी रचनाओं के वर्णन पर ही सन्तोष किया है।

कवि ने कहा लिखा, कितना साहित्य-निर्माण किया, उन का क्या स्थान बनाया, सम्बन्धी कवि के जीवन में काफी बतलाया गया है, यहां हम केवल यही देखेंगे कि राविन्द्र'कवि कैसे बने और उन्होंने कितनी और कैसी कविता लिखी।

बालक रवि ने जब पढ़ना प्रारम्भ किया तो उन्होंने प्रथम पुस्तक ईश्वर चन्द्र विद्यासागर की पुस्तक पढ़ी। पुस्तक पढ़ते हुये एक दिन जब रवि ने ये अक्षर पढ़े, "बर्षा होती है, पत्ते हिलते हैं।" तो कवि का ध्यान इस ओर खिंच गया। चाहे अभी बालावस्था ही थी परन्तु रवि सोचने लगा कैसी हैं ये पंक्तियां कितना आनन्द है इन्हें पढ़ने में शायद यदि यही कविता है तो कितनी रसदायक है। रवि ने सोचा होगा कि वह भी क्यों न कवि बन जाये और ऐसी रसदापक रचनाएं करे। फिर एक दिन जब रवि के गुरु ने उसे बतलाया कि कविता लिखना तो बहुत सुगम है, केवल चार तुकें ही मिलानी पड़ती है तो वह मन ही मन प्रसन्न हुआ होगा कि वह भी कवि बन सकता है।

१३ वर्ष ८ मास की आयु में रवि ने अपने अध्यापक के कहने पर एक विशेष विषय पर कविता लिखी जो जब उसने विद्यार्थियों और अध्यापकों के समक्ष पढ़ी तो सभी चकित रह गये बालक रवि की प्रतिभा देख कर।

सन् १८१७में जब कवि १७ वर्ष के हुये तो उनकी कविता की प्रथम पुस्तक 'कवि कहानी' प्रकाशित हुई। 'कवि कहानी' एक लम्बी कविता थी जिस में कवि ने अपना गत जीवन वर्णित किया था। रवि कवि बन गया, परन्तु किसे ज्ञात था कि बालक रवि संसार के महान कवियों का मुकाबला करेगा और उसकी कविता धरती के अतिरिक्त आकाश पर भी चमकेगी।

१८ वर्ष की आयु से पूर्व ही कवि ने कविता की लग-भग ९००० पंक्तियाँ लिख ली थी। कवि की कविता पर संस्कृत के कवियों का गहरा प्रभाव था। संस्कृत की कविता में से

कवि को प्राचीन भारतीय कला की झलक मिली। कवि जब प्रथम बार विलायत गये तो वहां उन्होंने शेक्सपियर के कई नाटक पढ़े और उनके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया।

१८८१ में कवि की एक अन्य पुस्तक "शैशव-संगीत" प्रकाशित हुई जिस में बाल्यकाल के गीत थे। इन कविताओं में कवि ने धन्धों को निभाव अच्छा किका और संगीत में इन्हें डबो दिया। कई कविताएं धुंधली थीं। कुछ प्रेम की हैं और कुछ दिन के उदय और अस्त का वर्णन करती हैं। कुछ कवितायें पुश्पों के सौन्दर्य पर भी लिखी गई हैं, जैसे :—

गुलाब की रानी,
आह, मेरी गुलाब की रानी।
अपना मुख ऊपर उठाओ, ऊपर उठाओ
खिले बाग में प्रकाश फलाओ।
क्यों शर्माते हो।
क्यों शर्माते हो।
पत्तों में मुख छपाते हो,
क्यों शर्माते हो।

१८८२ में कवि की पुस्तक 'सन्ध्या-संगीत' प्रकाशित हुई। इन कवितायों में प्रथम बार 'व्यक्तित्व-प्रकाशन' किया गया। १८८२ ई. में गर्मी की ऋतु में कवि ने एक दिन अपने गृह जोड़ासंको में बैठ कर सलेट पर ये कवितायें लिखी। कवि बड़ा प्रसन्न हुआ क्योंकि प्रथम बार उसने अनुभव किया, कि जो मैंने लिखा है, मेरा अपना है।'

इन कविताओं के प्रकाशित होने से कवि का कविताके क्षेत्र में निजी स्थान बन गया। इन कविताओं में भी कवि उदास र

लगता है। कवि विषाद ग्रस्त होकर प्रकृति की ओर आकृष्ट होता है। कई बार प्रकृति और निज में कोई भेद नहीं समझता प्रकृति में परिवर्तन उसे बहुत अच्छा लगता और उसे स्पष्ट रूप से वह अनुभव करता है। कवि ने इन कविताओं में 'दुहराव' को अच्छा निभाया है और कवि ने अक्षरों को ऐसे परोया है कि माला बनती चली गई।

इन कविताओं में एक कविता 'तारे का आत्मघात' सुन्दर कविता है। विचार यह प्रकट किया गया है कि तारा चाहे देखने को कितना सुन्दर और प्रसन्न दीख पड़ता है परन्तु मन से वह अत्यन्त दुःखी है और जब उसके दुःख असीम हो उठते हैं तो वह निज को समाप्त कर देता है और संसार-निवासी सोचते हैं कि कुछ भी नहीं हुआ। वे यह नहीं जानते कि तारा क्यों डूब गया है क्यों गिर गया है। किसी ने तारे का अस्त हो जाना अनुभव नहीं किया।

चमकते किनारे से,
काले सागर में,
पागलों की भाँति कूद पड़ा एक तारा
और उसके इर्द-गिर्द एकत्रित
देखते रहे चकित कई तारे,
डूब गया, डूब गया, एक तारा डूब गया।
काले सागर में डूब गया और विस्मृत हो गया
काली निशा में असीम आकाश में।'

एक अन्य गीत 'सन्ध्या' है। सुन्दर शीर्षक और विचार।
शाम हो, शीघ्रातिशीघ्र शाम हो।

अपनी भुजाओं में स्वप्नों की टोकरियाँ लिये आए।

अल्पकाल पश्चात् प्रकाशित हुये 'प्रभाव गीत' में एक नया प्रयोग किया गया, जीवन में आनन्द प्राप्त करने का। इस में प्राकृत्तिक सौन्दर्य की अति सुन्दर कवितायें हैं। हिमालय पर्वत का वर्णन मुग्धकारी है। एक कविता 'निर्झर स्वप्न-भंग' (The awakening of the water fall) में कवि प्रतीक-वादी बन गया।

'मेरे दोनों किनारे हरे भरे हैं,
जहां विपुल फुल उगते हैं।
लहरें चलाक खेल खेलती हैं।
प्यार करती और दौड़ जाती हैं'

प्रभात-संगीत' में कई अन्य सुन्दर कबितायें भी हैं, जिन्हें पढ़ कर मनुष्य अति अनंद अनुभव कर सकता है। गीतों की भाषा सरल और सुलझी हुई है।

कवि की आगामी पुस्तक'छोवी ओ गान' 'चित्र और गीत' नामक प्रकाशित हुई। गीतों में सुन्दर रंग से चित्र अंकित किये गये हैं। 'एकाँकी' में एक धुंधले गांव में सुनहले खेतों मैं से एक युवती मार्ग बना कर गुज़रती है जब अस्त होते हुए सूर्य की लालिमा उसके मुख पर पड़ती है।

'एक युवती एकांकी,
साँय समय
खेतों में से गुज़रने लगी
उसके चहुं ओर पके हुये सुनहले चावल,
उसके मुख पर सूर्य की लालिमा
उसके केशों में दीप्त हो रही।'

इस पुस्तक में सब से अधिक सुन्दर कविता 'रात्र का

प्यार' है, शायद एक बहुत सी महान कविता 'राम्र तारे' का वर्णन है।

'मानासी' कविता की एक अन्य प्रसिद्ध पुस्तक १८९१ ई. में प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशित होने से लोगों का विश्वास दृढ़ हो गया कि रविन्द्र महान कवि बनने वाला है। अब कवि पूर्ण युवक था, अतः कवि अपनी प्रतिभा के प्रति सजग हो गया है। उसके विचार पक गये। उनकी कल्पना में परिवर्तन आया। शैली बलवान हो गई और विचार सूक्ष्म हो गये। कवि के मन पर अभी भी पर्याप्त प्रभाव था कि प्रत्येक वस्तु जो संसार में आती है खत्म हो जाती है, समय आता है जब प्यार भी समाप्त हो जाता है और जीवन की लहरें एक दिन अकस्मात् ही समाप्त हो जाती हैं। जीवन की समस्याएं कभी सुलझ नहीं पाती चाहे जीवन का अंत भी हो जाता है। मनुष्य मरते हुए भी सोचता है कि उसने यह करना है, वह करना है।

कवि अपनी कविता 'निष्फल इच्छा' में अपने मनोभाव यों प्रकट करता है।

'सारा रोना व्यर्थ है
इच्छा की जलती अग्नि निष्फल है
मैं उसके हाथों को अपने हाथों में पकड़ खेंचता हूं
और उसकी आँखें अपनी अतृप्त आंखों में
बन्ध्या बना लेता हूं।
रो रो कर खोजता हूं
तू कहाँ है, कहां है।
उसकी गहराइयों में अमर लौ कहां निहित है।'

'नानासी' की कविताओं के पश्चात् कवि अपनी शैली का स्वयं स्वामी बन गया। छन्दों पर अंग्रेजो कविता का प्रभाव है।

पुस्तक में अधिकतम सुन्दर कविता 'अलहया' है। 'कविता में असाधारण संगठन है, दर्शनक धीमी ज्वाला की भांति जलते हैं, अहल्या और इन्द्र में हुये गठ-जोड़ को देख कर अहल्या का का पति घबड़ा गया और पत्नी को शाप देकर शिला बना दिया। वह तब तक शिला बनी रही जब तक कि उसका पुनः उद्धार न किया गया। कवि ने सुन्दर ढंग से समस्त कथा का वर्णन किया है।

कवि की अगली प्रसिद्ध पुस्तक 'सोनार तोरी' (सुनहरी-बेड़ी) है। यह पुस्तक अति महत्त्व पूर्ण है क्योंकि इस में कवि का उद्देश्य 'जीवन-देवता' प्रकट होता है। कवि के मन में परिवर्तन ले आने के इतिहास में यह पुस्तक विशेष स्थान रखती है। कवि का जीवन-उद्देश्य बदल गया, अति विषाद के स्थान पर छायावादी खुशी आ गयी। कवि प्रकृति के सौन्दर्य से आनन्दित होता हुआ उत्पति के भेद को खोजने में लीन हो जाता है।

पुस्तक की प्रथम कविता 'सोनार तोरी' (सुनहरी बेड़ी) में एक कृषक की रूप-रेखा है जो एकाकी अपने खेतों में फसल काट रहा है। खेत नदी-तीर पर है और दूसरे तट पर गांव सवेर की ओस-बूँदों में धुंधला दीख पड़ता है। जब कृषक फसल काट कर रखता है तो नदी की ओर से एक मनुष्य सुनहली बेड़ी से निकलता है और सुनहले चावलों की फसल एक बेड़ी में रख कर ले जाता है परन्तु कृषक उसे साथ ले जाने को कहता है तो खेवट केवल हंस देता है। कृषक नदी के

तट पर एकाकी रह जाता है, आकाश के नीचे, काले बादलों के नीचे।

थामसन कहते हैं, 'जीवन-देवता का प्रवेश कवि की रचनाओं में हो गया।'

१८९५ ई. में अधिक प्रसिद्ध पुस्तक 'चित्रा' प्रकाशित हुई। इन कविताओं में कवि का छायावाद स्पष्ट हो गया जिस के धुंधले चिन्ह हमें 'सोनार तोरी' में मिले। कवि 'जीवन-देवता' नामक कविता में लिखते हैं :—

मेरे स्वामी, क्या मुझ में तेरी साध पूर्ण हो गई?
सेवा रहित दिन बीत गये और रातें प्रेम-रहित निकल गईं।
पुष्प गिरे मिट्टी में जो तुझे अर्पित करने हित एकत्र न किये गये।
मैं तेरे बगीचे की छांव में सोता हूं परन्तु पौधों को जल देना भूल जाता हूं
क्या मेरे प्रिय समय का अन्त हो गया है। क्या नाटक समाप्ति पर है।
तो विदा की घंटी बजने दो, प्रभात आने दो प्रेम में ताज़गी लाने के लिये,

'कल्पना' और 'बालेके' कवि का दो अन्य कविता की पुस्तकें हैं। 'कल्पना' १९०० ई. में छपी। इस में कवि की शैली में थोड़ा परिवर्तन हो गया। कवि ने अपनी धरती, अपने देश को इन कविताओं में अथाह प्यार किया।

कवि 'आशा' कविता में लिखते हैं :

मां, मेरा सूर्य डूब गया,

'आओ बच्चो' तूने कहा,

मुझे अपनी ओर खींचा और मुझे प्यार किया। कवि 'पतझड़' कविता में अपने भाव यों दर्शाते हैं—

आज 'पतझड़' की सवेर में,
मैंने तेरा प्रिय मुख देखा,
ओ, मेरी माँ बंगाल, तेरे हरे अंग चमकते हैं
और निर्मल सौन्दर्य प्रकट करते हैं
परिपूर्ण नदी बह नहीं सकती,
खेत अधिक अनाद नहीं रख सकते
डोयल बुलाती है, कोयल गाती है
तेरे जंगलों में,
सभी के बीच तू मां खड़ी है
एक पतझड़ की सवेर में।

'कल्पना' में प्यार के गीत भी क़ाफी हैं। गीत अति प्रसिद्ध हुये और प्रत्येक की जिह्वा पर थे। बंगाल तो क्या संसार का प्रत्येक जीव इन गीतों को गाकर आनन्द मनाता है।

'बालेके' में कवि की कला में नया मोड़ आया। कवि ने 'परिवर्तन' के सिद्धान्त का वर्णन किया। 'चाँगले' कविता में कवि संसार को सम्बोधन करके कहता है, "अरे संसार" तू आगे जा रहा है, फूल और पत्ते तुम्हारे मार्ग पर बिछ रहे हैं, परन्तु तू चला जा रहा हैं। तू अपनी निरनन्तर दौड़ दौड़ा जा रहा है और तू पीछे झांक कर नडीं देखता। जा तुझे मिलता है तू फेंक देता है, तू चुनाव के लिये भी नहीं रुकता, न तू कुछ रखता हैं। तुझे कोई चिन्ता नहीं न कोई भय है, त प्रसन्न रहता है।"

कवि की प्रसिद्धतम कविता, गीतों की पुस्तक गीताँजलि है। यही पुस्तक है जिसने कवि को प्रसिद्धि की चोटी पर ला बिठलाया। गीतांजलि के गीतों का अनुवाद जो क व ने स्वयं किया, उसी नाम से अंग्रेजी में प्रकाशित हुवा। इन्हीं गीतों के लिये ही कवि को नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ जो साहित्य में सब से उच्च पुरस्कार है। ये गीत समस्त संसार में प्रसिद्ध हुये। इन गीतों में कवि प्रकृति के पूर्णतः निकट पहुंच जाता है। सारा वातावरण प्रकृत्तिक दृश्यों से भरभूर है। कवि ने इस पुस्तक में अति सुन्दर गीत लिखे जिनकी तुलना करना कठिन है। मधुर गीत कवि के मन-अन्तर से निस्स्रत हुये जिन्होंने कवि को अमर बना दिया। गीतांजलि के गीतों की उदाहरण लो :—

मुझे इस संसार के मेले पर आने का निमन्त्रण मिला तभी इतने वरदान मुझे जीवन ने दिये।

अब मेरी आंखों के मन भर मेला देख लिया है। मेरे करण सुन २ कर तृप्त हो गये हैं।

इस महान उत्सव में मैं वीणाकार था और जितना मैं इस साज को बजा सकता था, मेंने इसे बजाया।

जी ! क्या मैं भीतर आ सकता हूं।

दर्शन कर सकता हूं ?

मेरे आदर करने का समय आ गया है जी !

(२) ए मन ! यदि एक दिन मृत्यु ने तेरा दर आ खटकाया तो तू क्या करेगा ?

मेरे हितु ! उस सम्मुख मैं अपने जीवन का पूर्ण भरा हुआ

प्याला रखूंगा, वह मेरे घर से खाली न लौटेगी।"

(३) "दिन अस्त हो गया, धरती पर परछाई खेलने लगी। अब तो घट भरने नदी पर जा रहा हूं। वायु जल लहरों को चूम कर आती हुई उन्मत्त लगती है। अब गलियां भी खाली हैं। तालाबों और नदियों को पवन चौना बना रही हैं। मुझे सांझ के धुस-मुसे की ऋत के बाद कोई धीरे २ बुला रहा है।

कोई पता नहीं मैं घर लौटूं या नहीं। वह देखो, बेड़ी में बैठा कोई अपरिचित बांसुरी बजाता है और मुझे बुलाता है।

कवि ने जो गीत सन् १९१४–१९१८ में लिखे वे 'गीत मालिया' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुये जो १९२० में प्रकाशित हुई। गीतों की यह महान पुस्तक है। इस में आस्तिकता और संसार-सौंदर्य के गीत हैं। गीतों का उदाहरण

(१) मैं जानता हूं यह दिन बीत जायगा,
यह दिन बीत जायगा।
कि एक दिन, किसी दिन
मेरे मुख को देखेगा।"
और विदा ले जायगा।"

(२) वे सभी इस चंद्र-रात में वन की ओर चले गये, बाहिर वायु में जो बसंत के स्वागत में झूम उठी है,
पर मैं न जाऊंगा
मैं घर में रहूंगा और
एकाकी कोने में बैठ प्रतीक्षा करुंगा। आज की रात मैं उस वायु में न जाऊंगा जो बसंत के स्वागत में झूम रही है।
अपितु मैं सदन को पवित्र रख तैयार बैठूंगा क्योंकि मैं उसे

भूला नहीं' तो वह अवश्य आएगा चाहे मैं नहीं जानता कब ?''

इसके साथ ही गीतों की एक अन्य पुस्तक 'गीतांजली' छपी जिसमें २०८ गीत हैं। गीत केवल गाने के जिए लिखे गये हैं अतः संगीत के सभी गुण इन में मिलते हैं। उदाहरण लो :—

"एक बार पुनः 'सावन' लौट आया।
आकाश पर धुंध और नाभ का आवरण चढ़ा।
तारे छिप गये, सूर्य छिप गया,
अन्धकार में मार्ग लुप्त हो गया।
नदी में लहरें फैल गई।
धरती पर बर्षा होने लगी
मेरे लिये भी काली रात मृत्यु-सन्देश लायी,
जिस की ध्वनि हर बाड़ी में से निकली।"

कवि की एक अन्य महान गीतों की पुस्तक इस समय 'बालेकी' छपी। ये गीत १९१४—१९१६ के मध्य में लिखे गये। ये गीत 'यात्रा के गीत हैं। इन गीतों में कवि की प्रतिभा प्रत्यक्ष हुई। उनका मन एक झरने की भांति लगा जिस की गहराई से विचार उछलते हैं। विचारों का प्रवाह पूर्ण रूप से प्रस्तुत है।

कवि ने इन गीतों में पूर्ण स्वतन्त्रता ली है। लय और छन्द का प्रयोग स्व-इच्छा अनुसार किया। इन गीतों में कई गीत अति गहरे हैं। उदाहरण लो :—

"वे सैकड़ों की गिनती में मृत्यु की ओर भागते हैं,
उन नक्षत्रों की भांति जो ऊषा की आभा चाहते हैं।
योद्धों का रक्त माताओं के अश्रु
क्या सब धरती की मिट्टी में मिल जायगा।

इस पुस्तक की सुंदरतम कविता 'ताज-महल' है।
यह कविता कवि की अमर कविताओं में से है।

"ओ ताज-महल, तुम्हारा श्वेत संग मरमर समय के मुख पर एक आँसू की बूंद है।"

तत्पश्चात् सन् १९२२ में कवि को पुस्तक 'लिपिके' प्रकाशित हुई। इस में से कुछ कवितायें अंग्रेजी में अनूदित कर के फ्युगिटिव (" The fugitmi) नामक पुस्तक में प्रकाशित कीं। अन्तिम समय कवि की कविताओं की कुछ अन्य पुस्तकें 'जन्म-दिन' "अरोग्या" "रोगसाजे' आदि प्रकाशित हुई।

हम ने इस अध्याय में कवि की कुछ कवितायें और गीत-पुस्तकों का वर्णन किया और उदाहरण-स्वरुप कुछ गोत प्रस्तुत किये परन्तु कवि ने प्रचुर मात्रा में गीत और कवितायें लिखो जिन्होंने उसे अमर कर दिया।

सब का वर्णन करना यहां संभव नहीं, अति कठिन है। कवि की कविता की आलोचना-हित कितना कुछ लिखा जा सकता है, जो हमारी इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं। कवि महान है, कवि ने अति सुन्दर कविता की रचना करके भारत की ख्याति दूसरे देशों में फैलाई, उसने हमारे देश को संसार-साहित्य के क्षेत्र में ला खड़ा किया, हम उसके ऋणि हैं, वह भारत-माता का महान सपूत था। जिसने अपनो माता का ऋण पूर्णतः चुकाया और माता की वह सेवा को जिस द्वारा वह माता, भारत माता की दृष्टि में ऊंचा उठ गया।

अध्याय १७

कवि टैगोर का संसार में स्थान

रविंद्र नाथ महान व्यक्ति, महान पहरेदार, नोबल-विजयी न केवल भारत ही के अपितु समस्त संसार के नागरिक थे। समस्त संसार ने उनका सम्मान किया, समस्त संसार ने उन्हें आदर दिया।

आज से शत-बर्ष पूर्व भाव १९६१ में बंगाल की धरती पर एक पुश्य पैदा हुया जिस की सुगंधित से न केवल बंगाल, सारा भारत अपित समस्त संसार महक उठा। उसने अपने देश के गौर्व में वृद्धि को, सारे संसार ने उसे अपना लिया। समय की धूलि उसका मुख छिपा न सकी, आज भी उसका मुख स्पष्ट दीख रहा है।

आज समस्त संसार संकट—ग्रस्त है। महान राजनैतिक नेता युद्ध की बातें करते हैं। सभी मनुष्य भयभीत हैं कि पुनः हीरोशीमा और नागासाकी की दु:खदायक घटना न दुहराई जाय।

समस्त संसार प्रज्वलित भट्ठी में झुलस रहा है युद्ध अस्त्रों की दौड़ और शीत—युद्ध लगे हुये हैं,प्रत्येक महान देश छोटे को निगल जाना चाहता है, कुचल देना चाहता है। तो क्या आज

महान कवि टैगोर की आवश्यकता नहीं, जो तपते संसार को शीतलता प्रदान कर सके, मधुर 'गीतांजलि' के गीतों द्वारा। आज वह संसार को आह्वान देता कि ऐ! मनुष्यता के शत्रुओ, अपना मार्ग बदलो, सुख, शांति लाओ! क्यों गलत मार्ग पर चल कर मानवता नष्ट करने लगे हो।" आज आवश्यकता है संसार को टैगोर की जो सब को विश्व-प्रेम प्रदान करता, सभी सभ्याचारों को मिला कर एक-नव-सभ्यता को जन्म देता। महा कवि टैगोर आज हमारे बीच नहीं, परंतु यदि हम उस द्वारा प्रशस्त मार्ग पर चल सकें तो समस्त संसार का कल्याण हो सकता है।

महा कवि क्यों महान बना, क्यों संसार ने उसे अपनाया।

पंडित जवाहर लाल नेहरु ने, कवि की मृत्यु पर यह विचार प्रकट किये, "आज हमारे देश का एक चमकता नक्षत्र अस्त हो गया है जिस ने भूत और वर्तमान की बुद्धि के संयोग द्वारा न केवल हमारे देश को ही अपितु समस्त संसार को प्रकाश दिया। हमारे मन तनभय हो गये हैं, परंतु कवि की आवाज़ हमारे कानों में टकराती है और उसका संदेश जो संसार को जगमगा सकता हैं, हमारे लिए प्रकाश-पुँज है। प्राचीन ऋषियों की भाँति वे हमारे लिए एक अमर भंडार छोड़ गये हैं आज हम उसके महान व्यक्तित्व और उसकी संसार को देन को बड़े प्रेम, सत्कार, आशा और गर्व के साथ स्मरण कर रहे हैं।"

कवि न केवल भारत-वासियों के लिये ही महान था अपितु संसार भर ने उसे अपूर्व माना। केसर लिंग ने कहा था, "शताब्दीयां पूर्व संसार में इतना महान पुरुष पैदा नहीं हुआ

था। रविन्दर नाथ टैगोर एक चिहन है जो भारत ने संसार को दिया।" कवि क्यों महान हुया ? इस लिए कि उसने एक नवीन धर्म का प्रचार किया जो संसार को विश्व-स्नेह और सत्य का मार्ग बतलाता है। जिसे अपना कर मनुष्य सुख को सांस ले सकता है, शाँति पूर्वक जीवित रह सकता है। कवि ने कहा, "मेरा धर्म मेरे निज में मेरे व्यक्तित्व और मानव-आत्मा का सामंजस्य है।

कवि के मन में देश-प्रेम कूट कूट कर भरा हुया था। यह भाव उसके मन में तूफान की भांति था परंतु वह एक अंतर-राष्ट्रीय पुरुष था जिसने सर्वव्यापक मैत्री-भाव का प्रचार किया। इसी आदर्श को मुख्य मानकर कवि ने अपना जीवन-लक्ष्य संसार वासियों को दिया। यह कवि टैगोर ही था जो विदेशों में जाकर भी साम्यवाद का अपमान करता था। इसी आदर्श को मुख्य मान कर कवि लोक-प्रिय असहयोग लहर से सहमत न हुया।

कवि ने अपने इस सर्व-व्यापक मित्रता के भाव की पूर्ति के लिये समस्त संसार का चक्कर लगाया ताकि वह लोगों को इसकी महत्ता का ज्ञान करवा सके।

कवि को जब संसार का उच्चतम पुरस्कार 'नोबल-प्राइज़' प्राप्त हो गया तो कवि का सम्मान बहुत बढ़ गया। भारत में एक समारोह में, जिस की प्रधानता लार्ड हार्डिंग ने की, सी. एफ़ एंड्रयुज ने अपना एक पत्र पढ़ा जिसमें उसने कवि को 'महा-कवि' कहा।

जब १९१२ में कवि अम्रीका से पुनः इंग्लैंड पहुंचे तो उन्हों ने लंदन में कैकस्टन हाल में कई लैक्चर दिये जो धर्म और

दर्शन सम्बन्धी थे। इन भाषणों से प्रभावित होकर, वहां के एक दार्शनिक अर्नस्ट राइस ने अपने विचार इस भांति प्रकट किये, "भाषण श्रोताओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। रविन्द्र नाथ के पास शक्ति थी जो श्रोतागणों को पर्याप्त समय के लिये चुप बिठला सकती थी। उनकी आवाज़ भी प्रभाव-शाली थी जिस द्वारा लोग अभिमोहित हो गये। वह ऐसा वक्त था जिस ने अपनी कला द्वारा लंदन के कोलाहाल पूर्ण नागरिकों को मुग्ध कर लिया।"

जब कवि को स्वीडिश एकाडमी की ओर से नोबल प्राइज़ मिला तो अर्नस्ट राइस ने लिखा कि गीतांजलि के गीत एक प्रसिद्ध स्वीडिश विचारवान् और साहित्यकार ने अंग्रेज़ी में प्रकाशित होने से पूर्व ही बंगाली में पढ़ लिये थे।

गीतांजलि के गीत संसार की कई भाषाओं में अनुदित हुये। संसार की शायद ही कोई ऐसी पुस्तक होगी जिस का अनुवाद इतनी भाषाओं में हुआ हो। यहाँ तक कि इस पुस्तक का अनुवाद अरबी भाषा में, उस भाषा के प्रसिद्ध कवि बसटेंस द्वारा किया गया। भारत की लग-भग सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

एक बार जब कवि अफ्रीका गये तो वहां उन्होंने जेल विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों के समक्ष भाषण दिया। वहां के प्रधान हेडले ने कवि का परिचय कराते हुये कहा कि कवि सत्य और प्रकाश का खोजी पुरुष है।

सन् १९२१ में जब कवि जर्मनी गये तो वहाँ के नागरिकों की ओर से कवि का जन्म-दिवस मनाया गया। इस अवसर पर कवि को सम्मान-पत्र के साथ अनेक जर्मन-पुस्तकें भी भेंट

की गई। जर्मन के प्रसिद्ध विचारवान् काऊंट केसर लिंग अपनी यादों में लिखते हैं, "मैं केवल एक ही मनुष्य को जानता हूं जो मेरे विचार से पूज्य है। वह न चीनी है न बाल्टक, अपितु वह भारतीय कवि रविन्द्र नाथ टैगोर है। यह मनुष्य जितना लोग उससे ज्ञात हैं से भी महान है। कविकवित और गीत लिखने के साथ साथ संगीत रचना भी इस भांति करते हैं जैसे फुल खिल गये हों। वह समस्त मानवता का प्रतिनिधि है।"

कवि जब जर्मन से स्वीडन गये तो वहाँ भी उनका बड़ा सम्मान किया गया। जब वह प्राचीन विश्व-विद्यालय उपसला पहुंचे तो वहां के आरक विश्व ने कवि के स्वागत हित एक बहुत बड़े जलूस के हाथ में मिशाल ले कर अगवाई की।

सन् १९२६ में जब ककि इटली गये और जब डयुस को मिले तो उसने कवि को सम्बोधन करते हुये कहा, "मैं इटली का नागरिक आप पर मोहित हूं। मैंने आप की इटालियन में अनूदित प्रत्येक पुस्तक का पाठ किया है।' विदेशी देशों ने किस उत्साह से कवि का स्वागत किया अ र उन को सम्मान दिया इस का वर्णन विस्तार पूर्वक किया जा चुका है।

कवि टैगोर ने संसार की गीतांजलि के रुप में सन्देश द्रिया और उन्होंने शान्ति-निकेतन, विश्वा भारती में अपने विचारों को पूर्ण किया। शान्ति-निकेतन और विश्वा भारती कवि की संसार को महान देन है। जो हम कवि के विद्या के क्षेत्र में ही कर्म का विचार करें तो कवि 'महान' बन जाता है।

अपने देश में कवि को गुरुदेव कहा गया यहां तक कि देश के महान नेता महात्मा गांधी जी ने भी कवि को इस नाम से स्मरण किया। एक बार गाँधी जी ने कवि सम्बन्धी थे विचार

प्रकट किये, "समस्त बंगाल उनके गीतों द्वारा गूंज उठा है। उन्होंने भारत की कीर्ति को न केवल गीतों द्वारा अपितु लेखनी द्वारा संसार में फैलाया है।"

पंडित जवाहर लाल नेहरु जो कवि के श्रद्धालुयों में से हैं कवि सम्बन्धी लिखते हैं, इतना महान होते हुये भी कवि राविन्द्र कोई ऐसा मनुष्य न था जो दांत-खंड के प्रसादों में रहका हो। उसने जीवन को अपनाया और वह पूर्णत: जीवन चाहता था, इसी लिये उसके समस्त कार्य जीवन से सम्बन्धित थे।"

नेहरु ने एक स्थान पर और लिखा, टैगोर ने चाहे बंगाली में लिखा परन्तु उसका मनोक्षेत्र भारत के किसी एक भाग तक सीमित न था। वह निश्चय ही भारतीय था। परन्तु वह समस्त मानवता को अपने अलिगन में लिये रहता था। वह राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय था। उसे मिलने से अथवा उस की रचनाएं पढ़ने से मनुष्य अनुभव करता है जैसे मानवानुभव और ज्ञान की उच्च चोटी पर चढ़ गया हो।

कवि सम्बन्धी एक साहित्यकार ईश्वर दत्ता अपनी पुस्तक "Rabindra Nath Tagore a great Son of India and a great Humanist" में अपने विचार यों प्रस्तुत करते हैं, कवि टैगोर की मधुर आवाज़ और मन-मोहक व्यक्तित्व से, जब वह मंच पर आते तो लोग अति प्रभावित हो जाते, एक कवि, वक्ता, अभिनेता संगीतकार और कला-कार के नाते टैगोर अपनी आत्मिक सुगन्धि चारों ओर फैला रहे हैं। उनकी लेखनी को कभी विश्राम न मिला और आत्मा कभी न थकी।

एनथोनी एलनीमिटम ने अपनी पुस्तक 'भारत का कवि' (The Poet of Hindustan) में लिखा, "मेरे राविन्द्र नाथ तो संसार छोड़ गया है। मेरी घातक आंखें तुम्हारी शाँत और करुण आंखों से मिल न सकीं' पर जब मैंने तुम्हारी कविताएं और गीत पढ़े तो हमारे मनोस्पन्दन एकाकार हो गये। तू धूलि से ऊपर उठा है और मेरे कानों में तूने भारत का अमर सन्देश पहुंचाया है। भगवान करे। तेरा संसार-सभ्यता का स्वप्न फलीभूत हो, समस्त भारत शांति-निकेतन बने और समस्त संसार विश्व-भारती।

राविन्द्र नाथ टैगोर प्रथम भारतीय था जिस ने संसार के साहित्यिक क्षेत्र में नाम पैदा करके नोबल पुरस्कार प्राप्त किया। आज तक किसी भारतीय को यह सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। यह झंडा टैगोर ने उठाया और देश का सम्मान बढ़ाया। हम यह अध्याय समाप्त करनें से पूर्व थामसन के विचार प्रस्तुत करना अति आवश्यक समझते हैं क्योंकि थामसन एक विदेशी लेखक था, जिस ने टैगोर के जीवन तथा रचना पर पुस्तकें लिखी। एक विदेशी के नाते उनके विचारों की विशेष महानता है।

थामसन अपनी पुस्तक में लिखते हैं, "संक्षेप रुप में यह कहा जा सकता है कि कवि ने दोनों—पूर्व और पश्चिम की तुलना की और दोनों ही उसकी ऋणि हैं। आज के बाद उन की कविता लोगों का मन उनके व्यक्तित्व से अधिक आकृष्ट करेगी। वह अपने राष्ट्र हित था भी नहीं भी। उसकी प्रतिभा का जन्म भारतीय विचार धारा से हुआ, न केवल कवियों और दार्शनिकों से उस ने विचार लिये अपितु साधारण भारत-

वासियों से भी फिर भी, वह अंग्रेज़ी विचार-धारा और साहित्य से प्रभावित हुआ। उसने राष्ट्रीय अन्याय विरुद्ध कठोर आवाज़ उठायी, फिर भी वह किसी वाद विवाद में न पड़ा।"

कुछ अर्ध दर्जन के लग-भग महान व्यक्तियों को छोड़, हम किसी भी कवि को समक्ष रख कर कवि से उनकी तुलना कर सकते हैं। राविन्द्र नाथ की महान रचनाएं चित्रगद्दा, उर्वशी अहल्या, करुन और कुन्ती, कथा, पालटके, बालेके, पुशवी आदि को ही यदि परखा जाय तो इतका मूल्य वर्तमान नहीं डाल सकता, परन्तु यह तो पहले ही प्रत्यक्ष है कि कवि का भारतीय कवियों में ही नहीं किन्तु संसार के कवियों में विशेष स्थान है।

अध्याय १८

कवि टैगोर और पंजाब

राविन्द्र नाथ टैगोर ने अपनी रचनाओं में पंजाब और पंजाबियों से घना सम्बंध दिखलाया है। यह स्वाभाविक था क्योंकि उन्हें बाल्यकाल में अपने पिता के साथ पंजाब आना पड़ा था और जब वह अमृतसर और डल्हौज़ी रहे तो उन के मन पर पंजाबी समस्या. इतिहास और यहां के निवासियों की वीरता का अमिट प्रभाव पड़ा। उन्होंने यहां के रीति-रिवाज़ों का भी गह्वन अध्ययन किया है और पंजाबी शूरबीरों की कुरबानितों की कथाएं भी श्रवण की होंगी।

कवि टैगोर का पंजाब-वासियों से प्यार तब आरम्भ होता है जब वे प्रथम बार एक पंजाबी नौकर को अपने घर में मिले। कवि टैगोर के घर में देख-भाल साधारणत: नौकर ही किया करते थे, यह उनके घर की मर्यादा थी। इस नौकर के पवित्र जीवन का बालक रवि पर सुप्रभाव पड़ा। इस सम्बंधी वे अपनी स्मृतियों में लिखते हैं :—

"मेरे जन्म से भी कई बर्ष पूर्व मेरे पिता जी देश-यात्रा के लिये जाया करते थे—देश और प्रदेश की। इस यात्रा में उन

की गहरी रुचि थी। कभी कभी अचानक ही वे घर लौट आते थे और बाहिर से नौकर अपने साथ ले आते। एक बार वह एक छोटा सा पंजाबी लड़का अपने साथ ले आये। उस ने हमारे मनों में बहुत आदर प्राप्त किया, संभवतः रणजीत सिंह के लिए इतना नहीं होता। वह पंजाबी था जिस कारण उसने हमारा मन मोह ही तो लिया। जैसे पुराणों के भीम और अर्जुन के लिये हमारे मन में श्रद्धा थी योंही पंजाबी जाति के लिये हमारे मनों में सम्मान उत्पन्न हो गया। ये लोग शूरबीर थे। कहीं कहीं युद्ध में पराजित अवश्य हुये थे परन्तु शत्रुओं के द्रोह के कारण। उस पंजाबी जाति के बेटे को अपने घर देख हम बहुत प्रसन्न होते। मेरी भाबी रानी के घर के कमरे में एक खिलौना था, शीशे का जहाज सा — बहुत सुन्दर। उस में चाबी भरते ही रंगीन कपड़ों में लहरें उठना शुरु हो जाती। मैं मिन्नत करके वह जहाज़ अपनी भावज से मांग लाया करता था और उस द्वारा उस पंजाबी को चकित कर दिया करता था।"

प्रत्यक्ष है कि पंजाबी ने कवि टैगोर को बहुत प्रभावित किया और वह जितना समय भी उन के घर रहा, बालक कवि से खेलता रहा और वह पंजाबी इनका मन बहलाता रहा।

कवि टैगोर प्रथम बार पंजाब तब आये जब वे अपने पिता के साथ हिमालय पर्वत की यात्रा को निकले। वे दीनपुर, अलाहाबाद और कान पुर से होते हुये अमृतसर पहुचे — पंजाब की सुन्दरता देखने के लिये पंजाबियों के जीवन को देखने के लिये। कवि टैगोर अपने पिता के साथ अमृतसर में लगभग एक मास रहे। यहां उन्होंने अपना बहुत समय अच्छा व्यतीत किया।

वे नित्य दरबार साहिब जाते और बहुत समय तक कीर्तन सुना करते। कई बार उनके पिता जी स्वयं शब्द कीर्तन करते और इसका सब पर बहुत प्रभाव पड़ता। बालक रवि तो यह देख चकित रह जाता। अपना इस अमृतसर की यात्रा के सम्बन्ध में कवि टैगोर अपनी स्मृतियों में लिखते हैं, "अमृतसर का गुरुद्वारा मुझे स्वप्न-वत याद आता है। कई बार प्रातः मैं सिक्खों के गुरुद्वारे गया जो एक सरोवर के मध्य में बना हुआ है। वहां हर समय शब्द कीर्तन होता रहता है मेरे पिता जी श्रद्धालूयों के मध्य में बैठे २ कई बार सुर से सुर मिलाते हुये शब्द पढ़ा करते थे। प्रदेशी के मुख से शब्द सुन लोगों का उत्साह बढ़ जाता और वे पिता जी का बहुत आदर और सम्मान करते।। घर लौटते हुये हम पताशे और प्रशाद ले आते।

कवि टैगोर के पिता कई बार गुरुद्वारे में कीर्तन करने वालों को अपने घर बुला लेते, उन से शब्द सुनते रहते और उन्हें पर्याप्त धन दिया करते। यह बात धीरे २ सारे नगर में फैल गई और कोई न कोई शब्द पढ़ने वाला उनकी देहरी पर खड़ा रहता।

एक बार महांऋषि टैगोर जब दरबार साहब कीर्तन सुनने के लिये गये तो वहां भाई सुन्दर दास का रागी जत्था कीर्तन कर रहा था। वे भाई साहबके मधुर स्वर से इतना प्रभावित हुये कि उन्होंने कहा, "मेरे वश की बात हो तो मैं उन्हें शांति-निकेतन ले जाऊं।"

कवि टैगोर और उनके पिता एक मास अमृतसर रहे। महांऋषि दरबार साहब के शब्द-कीर्तन और अखंडपाठ से इतना प्रभावित हुये कि उन्होंने कई वर्षों के बाद यही ढंग कुछ

परिवर्तन करके शांति-निकेतन में प्रचलित किया।

कवि टैगोर अमृतसर से डल्होज़ी गये जहाँ वे बकरोटे की सुन्दर पहाड़ी पर एक मकान ले कर रहने लगे। बालक टैगोर नित्य पहाड़ों की सैर करने चला जाया करता था और कितनी देर तक घूमता रहता था, घूमता रहता और प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेता रहता। कवि इन स्मृतियों के सम्बन्ध में स्वयं लिखते हैं 'मैं पर्वत पर चढ़ा था तो पर्वत की ढलानों और पकी फसलों का निखार एवं सौंदर्य मुझे बहुत रुचिकर प्रतीत हुआ और मेरा मन विस्मित हो गया। अस्त हो रहे सूर्य की लालिमा में झूमती फसलें यों प्रतीत होता था जैसे कई प्रकार के रंगों ने प्रकृति में एक अग्नि सी जला रखी है।"

डल्हौज़ी में कवि ने पहाड़ियों से कई राग और ध्वनियाँ भी सीखा। बालक टैगोर पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ ऊंचे २ स्वर निकालता रहता।

बालक कवि ने डल्होज़ी में अत्यधिक मनोरंजक समय व्यतीत किया। यहां से जाते हुये कवि का मन तनिक भी प्रसन्न नहीं था और उन्होंने अपने मन की बात को यों प्रकट किया, "हमें ऐसे स्थान क्यों इतनी शीघ्रता से छोड़ने पड़ते हैं, मेरा मन पुकारने लगा, हम क्यों यहां सदा के लिये नहीं रह सकते।"

तो यह थी कवि की पंजाब के ज्ञान-प्राप्त करने की पृष्ट भूमि। इसे दृष्टि-सम्मुख रखते हुये उन्होंने अपनी रचनाओं में पंजाब और पंजाबियों सम्बंधी कई स्थानों पर वर्णन करके पंजाबी इतिहास को जीवित किया है।

पंजाब सम्बंधी टैगोर की रचनाओं में केवल वर्णन ही नहीं

मिलता अपितु यों प्रतीत होता है कि कवि ने सिक्ख इतिहास को अच्छी तरह से पढ़ा है। प्रतीत होता है जैसे कवि स्वयं भी इस इतिहास का एक पात्र हो। जो कुछ भी कवि ने लिखा है किसी भावना में लीन हो कर लिखा है। एक भाव सामने रखा है कि इतिहास को सत्य और निर्मल रख कर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। सिक्ख-इतिहास सम्बन्धी सामान्य शिकायत है कि इतिहासकारों ने इसे उचित ढंग से प्रस्तुत नहीं किया। परिवतन किये हैं, मोड़-तोड़ कर लिखा गया है। सिक्खों ने जो बलिदान देश और राष्ट्र के लिये दिये, उनसे पूरा न्याय नहीं किया गया। परन्तु यह दोष कवि टैगोर से नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपनी कविताओं में न केवल सिक्खों की बीरता का ही वर्णन किया है अपितु उन्हें उभारा है, उत्तेजित किया है।

कवि टैगोर ने पंजाब सम्बन्धी चार कविताएँ, बंदी बीर (बंदा बहादुर), गुरु गोविन्द, शेष शिक्षा (अंतिम शिक्षा) और प्रार्थनातीतदान (अतिरिक्त दान) और चार निबंध काजरे लोक के, बीर गुरु, सिक्ख-स्वाधीनता और शिवाजी तथा गुरु गोबिन्द सिंह लिखे हैं। इन चार कविताओं और लेखों में मानो समस्त सिक्ख इतिहास आ गया है। इतिहास को इस ढंग से प्रस्तुत किया है जैसे कोई दादी अपने पौतों को दिन में घटित कोई घटना सुना रही हो। हम ज्यों ज्यों इनका अध्ययन करते हैं प्रभावित होते चले जाते हैं अपने शूरबीरों के पराक्रमों द्वारा।

यह कविताएँ कवि टैगोर की पुस्तक "'कथा' में छपी, जो १९०० में प्रकाशित हुई, इस पुस्तक के ११४ पृष्ट हैं जिन में

से २० पृष्टों पर लिखी गई चार कविताएं पंजाब और सिक्खों सम्बन्धी हैं।

प्रथम कविता है 'बन्दी बीर।' बन्दा बहादुर का नाम किसने नहीं सुन रखा ? गुरु गोबिन्द सिंह जी को यह बहादुर सिक्ख हैदराबाद में मिला और उनका 'बन्दा' बन कर रहने का प्रण किया। गुरु जी उसे अपनी तलवार दे कर भेजते हैं पंजाब में शत्रुओं का मुकाबला करने के लिये, अत्याचार का नाश करने के लिये।

यह बन्दा बहादुर सन् १७१५ में गुरदास पुर से चार मील की दूरी पर स्थित एक गांव गुरदास नंगल के एक किले जिस को गढ़ी कहा जाता है, में अब्दुल सम्मद खां की सेनाओं के घेरे में आ जाता है। बाहिर से न कोई आ सकता है न जा सकता है। अन्न-पानी भीतर समाप्त हो जाता है परन्तु सिक्ख खाली पेट लड़ते रहते हैं। लग भग आठ सौ सिक्ख शहीद हो जाते हैं। सिक्खों की वीरता को यह अमर कथा है। जब मुगल सैनिक गढ़ी के किवाड़ तोड़ कर भीतर प्रवेश करते हैं तो बहुत से सिक्खों को बंदी बनाया जाता है जिन में बहुत सी नारीयां और बालक थे। कवि टैगोर ने इस समग्र दुःख भरी कहानी को अपनी कविता में वर्णन किया है :—

"पौंचे नदीर तीरे-बैनी पाकाइया घीरे
देखो ते देखो ते गुरु मौंतरे, जागोया उनोले शीख
निर मौम, निर भीक,
हज़ार कोठे गुरु जोर जेए धोनिया तूली छेदीक
नूतन जागोया शीख नूतन उधार सूर ज्रोर पाना
चाही लो निनरमीक

"दिली प्रसाद कूटे, हौथा बार २ बादशाह जादार
तौदरा येते छे छूट,
के' देह कोठे गोगन मौथे नीबीड़ो निशीब टूट
कादरे भौशाले आदाशेर भाले, आगून ऊरेछे फूटे
पौचे नदीर तीरो भौकते देहर रोकतो लाहीरी
मुक्तो होई लो कीरे।

यह केवल पूरी कविता का एक भाग दिया है। सारी कविता पढ़ कर तो मनुष्य का मन भर जाता है। किस अपूर्व लेखनी द्वारा बंदा बहादुर और उसके साथियों की बीरता, सम्मान एवं संतोष का वर्णन किया है। सिक्ख गुरु की इच्छा को मानता हुआ क्या कुछ कर सकता है ? बंदा बहादुर कैसे स्वकर से अपने पुत्र के टुकड़े २ कर देता है। इस का उदाहरण समस्त इतिहास में मिलना कठिन है। ऊपर दिये गये दो पैरों का भाव कुछ इस प्रकार है।

"पाँच नदियों की धरती पर गुरुओं से प्रेरणा ले बीर और अभय सिक्ख जाग उठे। वे अपने गुरु को जब जय-जय-कार गुँजाते थे तो सारी धरती गुंज उठती थी बहुत ऊंची अवाजें उठने लगीं। पराधीनता के दिन अंत पर थे। वे अभय हो गये। उनके मन कंवल-पुष्प की भाँति खिल उठे और तलवारों की झन्कार गूँज उठी।

"फिर एक ऐसा दिन आया तब लोगों ने पराधीनता के वस्त्र त्याग दिये और मृत्यु-जीवन में कोई अन्तर न रह गया। दिल्ली के शाही महलों में बादशाहों की नींद हराम हो गयी। ये आकाश गूंजित आवाजें कहां से आ रही हैं। आज पंच-नदियों का जल किन के रक्त से लाल हो रहा है।'

कवि की पंजाब सम्बन्धी दूसरी कविता शेष-शिक्षा है। इस कविता में गुरु गोबिन्द सिंह की वीरता का वर्णन किया गया है।

इस में गुरु साहब के जीव ा का एक विशेष पक्ष दर्शाया गया है। इस लम्बी कविता का प्रथम बन्द इस प्रकार है—

'एक दिन शीख गुरु गोबिन्द सिंह निरजोने,
एकाकी भाबी ते फीलो
आपो नार भौने
आपोन जीवोन कौथा।

एक दिन गुरु गोबिन्द सिंह जी एकांत स्थान पर बैठे अपने मन में ही अपने जीवन के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे। जो कुछ वे अपने भविष्य सम्बन्धी छोटी आयु में विचारा करते थे।

अगली कविता 'प्रार्थना तीतदान' नामक है। इस कविता में सिक्ख इतिहास के महान शहीद 'भाई तारु सिंह' की अपूर्व कुरबानी का वर्णन किया गया है। शहीद तारु सिंह का कवि ने अति सुन्दर चित्र खींचा है। सिक्ख अतिरिक्त दान दे सकता है और वह अपने केशां के साथ अपना सिर भी समर्पण कर सकता है।

अगली और अंतिम कविता 'गुरु गोबिन्द' है। इस कविता में कवि ने गुरु साहब की सिक्ख-पंथ के सृजन से पूर्व के कुछ समय की मनोवस्था का वर्णन किया है। गुरु साहब जब नाहन राज्य के पाँऊटा नगर में यमुना के तट पर बैठे थे तो वे क्या सोचा करते थे, उनकी मनोवस्था क्या थी। वे निर्धन और दुःखी जनता को कैसे बचाना चाहते थे।

कविता पर्याप्त लम्बी है। और कवि ने मनोवैज्ञानिक ढंग से गुरु साहब का चरित्र अंकित किया है।

अब हम कवि टैगोर के पंजाब सम्बंधी लिखे लेखों पर विचार करते हैं। जैसे ऊपर वर्णन किया है कवि ने चार निबंध लिखे। प्रथम निबन्ध 'काजरे लोक के' में कवि ने गुरु नानक साहब की सच्चे सौदे की साखी का वर्णन किया है। उन्होंने कैसे घरेलू जीवन से तंग आकर अन्य मार्ग अपनाया। दूसरा लेख 'वीर गुरु' है। इस में गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन की कुछ घटनाएं दी गई हैं। तीसरे निबन्ध में सिक्ख स्वाधीनता में गुरु गोबिन्द सिंह के पश्चात् का इतिहास वर्णित है। सिक्ख कैसे वीरता और निर्भयता से युद्ध लड़ते थे, विजय प्राप्त करते अथवा हारा करते थे।

चतुर्थ निबन्ध है शिवाजी और गुरु गोबिन्द सिंह' यह निबन्ध बहुत लम्बा है। इसे पढ़ कर पता चलता है कि कवि टैगोर ने सिक्ख इतिहास का गुरु नानक साहब से लेकर अपने जीवन तक वर्णन किया है। सिक्ख राष्ट्र ने जो २ भी वीरता के कर्म किये इस में सब वर्णित हैं।

यह तो हैं कवि टैगोर की रचनाएं जिन में पंजाब और पंजाबियों का वर्णन किया गया है। गुरु साहब और सिक्ख—इतिहास सम्बंधी जो ज्ञान कवि का था, उन्होंने पढ़ा और सुना था, बहुत निष्पक्षता से वर्णन किया गया है। शायद कोई पंजाबी इतने साहस से यह सब कुछ न लिख पाता, संभव है उस पर एक-पक्षीय होने का दोष लग जाता। कवि ने जो कुछ उस के मन में था, प्रकट कर दिया। इतिहास को धार्मिक-कट्टरता से दूर रह कर लिखना ही कवि की सराहना है।

पंजाब और पंजाबी कवि टैगोर के सदा ऋणि रहेंगे।

सन् १९१९ में जब अंग्रेज़ ने योरुप का प्रथम महान युद्ध जीत लिया, उसे अहंकार हो गया, वह समझने लगा कि वह गोलियों मशीन-गनों से आजीवन भारत को पराधीन रख सकता है। उनकी आत्मा को कुचल सकता है, उन की आवाज़ों को दबा सकता है, उनके शरीर को अपने पावों तले रौंद सकता है।

युद्ध के दिनों ने अंग्रेज़ों ने भारतीयों से कई प्रण किये। युद्ध जीतने की देर है कि देश की पूर्ण स्वाराज्य मिल जायगा। परन्तु हुया इस के विपरीत, स्वाराज्य मांगने वालों को मिलीं जेलें, लाठियां और गालियाँ। पकड़-धकड़ आरम्भ हुई, गोलियों की बर्षा हुयी। समस्त पंजाब में मारशल्ला लगा दिया गया, नगर सेना को संभाल दिये गये, जलसे-जलूस बन्द, राष्ट्रीय त्योहार बन्द, प्रत्येक दिशा में भय और आंतक।

पंजाबी स्व सम्मान के भाव को कभी नहीं छोड़ता। वह जीना और मरना जानता है। वह हज़ारों की गिनती में १३ अप्रैल १९१९ में जलियाँ वाले बाग में बैसाखी का पवित्र त्यौहार मनाने के लिये इकट्ठा होता है। लोग घरों से सुन्दर वस्त्र पहन कर आते हैं। मातायें अपने बच्चों को और पत्नियां अपने पतियों को सजा कर लाती हैं, मेला देखने के लिए। आज उनका राष्ट्रीय-दिवस है। आज वह अपने जीवन का उत्सव मनाने जा रहा है। वह नहीं जानता था कि कोई बैठा उसकी खुशी का भंग करने पर तुला हुआ है। वह उनके रक्त में हाथ रंगने के लिए तैयार बैठा है। पंजाबी बीर बैसाखी मनाने के लिए इकट्ठा होता है परन्तु जनरल डायर, अंग्रेज़ सेना का सेनापति उन निहत्यों और निर्बलों पर गोलियाँ

चलाता है। उन्हें सूचना दिए बगैर। अंग्रेज़ भारतियों को पाठ पढ़ाना चाहता है, उनके स्व–सम्मान पर चोट मारना चाहता है।

मालूम नहीं कितनी गोलियां चलीं, जब इनकी तिड़-तिड़ कीं आवाज़ बन्द हुई तो बाग में हज़ारों शव तड़प रहे थे, हज़ारों बच्चे यतीम हो गए थे, मातायें बेटों की खोज कर रही थी और नारियां अपने पतियों को। खून की होली खेली गयी जो हज़ारों को मृत्यु-शय्या पर सुला गई।

अंग्रेज़ ने समाचार पत्रों पर बंधन लगा दिए : कोई इस खूनी घटना को अखबार में प्रकाशित न करे, कहीं रोष-पूर्ण जलसे न हों और जलूस न निकलें, परन्तु यह समाचार धीरे २ कवि टैगोर तक पहुंच गया। वे चकित रह गए। निहत्यों पर इतना अत्याचार, उनकी आत्मा तड़प उठी, वे तड़प उठे। कवि अपनी माताओं-बहनों का निरादर सह न सके। स्वतन्त्रता के इच्छुकों, स्व-मान को मांगने वालों के वक्षों में गोलियों की आवाज़ कवि की छाती को छेदने लगीं। बिधवा मातायों का आर्त नाद कवि के कानों को फाड़ने लगा। इस दशा में कवि टैगोर प्यार और संगठन के गीत कैसे लिख पाते ? चांद की चांदनी, नित्य-प्रभात कवि को भूल गए। उनकी आत्मा सजग हो उठी, शरीर का अंग २ कड़कने लगा, आततामों का जुल्म देख कर कवि से एकाका न रहा गया। वे शीघ्र ही कलकत्ते पहुंच गए। अपने साथी सी. एफ. ऐंड्रयुज़ को महात्मा गांधी के पास भेजा ताकि दोनों पंजाब में प्रवेश करें, मार्शल्ला की सीमाएं तोड़ दें, सैनिक नियम का धज्जियाँ उड़ा दें ताकि दुनियां को इतने बड़ अत्याचार से अवगत करवाया जा सके।

परन्तु गांधी जी कुछ विशेष कारणों से कवि से सहमत न हो पाए। कवि बहुत निराश हुये। उनके मन को शांति न थी। उनका कोमल हृदय तड़प रहा था। वे जलूस निकालना चाहते थे, जलसे करना चाहते थे। अंग्रेजी अत्याचार का ढोल सारी दुनियां में पीटना चाहते थे परन्तु किसी ने उनका साथ न दिया। अंत उन्होने एकाकी रोष प्रकट करने का प्रण कर लिया।

कुछ समय पूर्व राज्य ने उनकी साहित्यिक रुचियों की प्रशंसा करते हुये इस नोबल-प्राइज़-विजयी को 'सर' की उपाधि दी थी। तो कवि ने अपना रोष प्रकट करते हुये यही राज्य को लौटा देना उचित समझा। इस पराधीनता के चिह्न को कवि ने फेंक देने का निर्णय कर लिया। वे कैसे अंग्रेजी उपाधि को अपने पास रख पाते जब उनके देश-वासी बिना किसी दोष के गोलियों का शिकार बनते जा रहे हों। उन्होंने अंग्रेज की उपाधि लौटाते हुये वायसराय को एक लम्बी-चौड़ी चिट्ठी लिखी। इस घटना का होना था कि समस्त देश में कोलाहल मच गया। अंग्रेजी साम्राज्य को अत्यधिक धक्का लगा। देश-भक्तों की राष्ट्रीय लहर को नव उत्साह प्राप्त हुया। जलियां वाले बाग की घटना सारे पंजाब की ही नहीं, सारे देश की राष्ट्रीय घटना बन गई।

इस समय कवि टैगोर ने जो पत्र हिन्द के वायसराय को लिखा वह एक एतिहासिक स्मारक है और इसी लिए वह भारतीय राज्य के नेशनल आर्कवाइज़, दिल्ली में संभाल कर रखा गया है। इस पत्र का संक्षिप्त रुप यहां दिया जाता है:

कलकत्ता मई ३१, १९१९

श्रीमान जी,

पंजाब में स्थानक गड़-बड़ को दबाने के लिये राज्य के अत्याचार ने मुझे बहुत चोट मारी है जिस से यह स्पष्ट हो गया है कि हम अपने ही देश में अंग्रेजी प्रजा होने के कारण कितने विवश और असहाय हैं। दुर्भाग्य लोगों को जो कठोर दण्ड दियागया है इसको उदाहरण किसी भी सभय राज्य में नहीं मिलती। वह व्यवहार निहत्थे लोगों पर उस सरकार की ओर से किया गया है जिस के पास लोगों को खत्म कर देने के साधन हैं। अतः मैं पूर्ण बल से कहता हुं कि इसकी न राजनैतिक रुप से आवश्यकता थी न सदाचारक रुप से। पंजाब में हमारे भाइयों के साथ क्या हुआ और कैसे उन्होंने कष्ट सहे, इस का समाचार प्रतिबन्ध होने पर भी प्रत्येक कोने में पहुंच गया, परन्तु हमारे राज्याधिकारियों ने हमारे मन के क्रोध को कोई चिन्ता न की। संभवतः वह भारतीयों को पाठ पढ़ाने पर अपने आप को बधाई दे रहे होंगे। कई अंग्रेज समाचार-पत्रों ने इतने बड़े अत्याचार की सराहना की है और प्रबन्धकों ने उन को रोका तक नहीं। यह जानते हुये कि मेरा पहला अपीलों का सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्यों कि वह बदला लेने के जोश में है, अतः मैं अपने देश हित कम से कम इतना तो कर सकता हूं कि भयवान करोड़ों लोगों का रोष प्रकट करने के लिये सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लूं। अब समय आ गया है कि सरकारी उपाधियां हमारी शर्म को और प्रकट करती हैं। अतः मैं अपने देश-वासियों की पंक्ति में बिना किसी उपाधि के खड़ा होना चाहता हूं। ऐसे दुःख पूर्ण कारणों से ही मैं अति सत्कार और शोक से, आप को यह लिखने पर

विवश हूं कि आप मुझे मेरे 'सर' के खिताब से मुक्त कर दें ! जो मुझे आप से पहले के वायसराय जिन के प्रति अब भी मेरे मन में सत्कार है, द्वारा दिया गया था।

आप का विश्वास पात्र,
रबिन्द्र नाथ टैगौर।

यहीं बस नहीं, कवि का मन भीतर से जल रहा था। अभी भी उसके कानों से चलती गोलियों की आवाज़ टकरा रही थी। उन्हें शान्ति न थी, वे स्थान स्थान पर अपना रोष प्रकट कर रहे थे। १४ अप्रेल सन् १९२० को बंबई में मि: जिनहा की प्रधानगी में एक रोष मयी जलसा हुआ, जिस में महात्मा गांधी एवं अन्य बड़े २ नेताओं ने भाग लिया। इस जलसे में पढ़ने के लिये कवि ने एक संदेश भेजा। यह पढ़ कर हम जान सकते हैं कि कवि की आत्मा कितनी व्याकुल हो रही थी, उन का हृदय तड़प रहा था। उस संदेश का सँक्षिप्त रुप यहां दिया जाता है।

'पंजाब में बहुत अत्याचार किया गया है और यह हुआ है सब कानून के नाम पर। जलियां वाले बाग की दुर्घटना उसी महान युद्ध का फल है जो गत चार-पांच वर्षों में संसार में आग और विष फैलाता रहा है। इसने उन लोगों के मन में कठोरता भर दी है जिसे ताकत का नशा है और उसे रोकने के लिये कोई सहानुभूति करने वाला नहीं। ताकत के नशे में चूर होकर जिन्होंने निहत्थों पर गोलियां चलाईं। कोई शर्म महसूस नहीं करते। फिर हास्य जनक बात यह है कि सब कुछ न्याय के नाम पर किया गया है। भाइयो जब मनुष्य शक्ति के गर्व से लोगों की भावनाओं को कुचलने का यत्न करता है तो वह

अपनी आत्मा को बलवान् समझता है। हम ने बदले की बात को नहीं सोचना क्योंकि इस से सदाचारक पराजय हो जाती है। हमने अपने पड़ोस में निहत्थों और निर्दोषों को कत्ल होते हुये देखा है तो हमें यह ईश्वर की इच्छा मान लेनी चाहिये।

हम देखते हैं कि पंजाब के अत्याचारों की अग्नि कब तक कवि के मन में धधकती रही। जब कभी भी उन्हें कोई अवसर मिलता, वे अपना रोष प्रकट करते निजी बैठकों में, जलसों में और वाद-विवाद में।

अब जब इस खूनी दुर्घटना के पश्चात् पुनः कवि विलायत जाते हैं तो वहां उनका वह सम्मान न किया गया जो स्वागत पहले किया गया था। अब कोई उत्साह न था।

उस समय विलायत में पंजाब की दुर्घटना सम्बन्धी चर्चा हुई, उस में भी उन्होंने असंतोष प्रकट किया और ललकार कर कहा कि 'पार्लमेंट में जनरल डायर और पंजाब सम्बन्धी चर्चा से मुझे बहुत दुःख हुआ है।'

कवि टैगोर ने इसके अतिरिक्त पंजाब से अकस्मात् ही सम्बन्ध तब प्रकट किया जब उन्होंने अपने प्रसिद्ध गीत, जन गन मन जो आज हमारा राष्ट्रीय गीत है, में पंजाब को प्रथम स्थान दिया है।

'पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मराठा'

इस से यह प्रत्यक्ष होता है कि कवि को पंजाब से कितना गहरा प्यार था।

कवि टैगोर सन् १९३८ में लाहौर के ब्रेडला हाल में विद्यार्थियों की एक कानफ्रेंस की प्रधानगी करने के लिये आये थे। तब वे राजा नरेन्द्र नाथ के अतिथि बने और तत्पश्चात् वे

श्री धनी राम भल्ला की कोठी चले गये। तब वे लग-भग १३ दिन लाहौर रहे। वे नित्य प्रातः लोगों से बात-चीत करते थे। वे एक दिन गुरुद्वारा बावली साहब भी गये जहां उन्हें सरोपा दिया गया, वे वहाँ कितनी देर कीर्तन सुनते रहे और रागी सिहों में इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने उन को शांति-निकेतन आने के लिये कहा। तत्पश्चात् सन् १९३६ में कवि पुनः लाहौर आये और यहाँ दो तीन दिन रहे। तब वे अपनी नाट्य-पार्टी भी साथ लाये थे। वे विश्वभारती का ऋण चुकाने के लिये रुपया एकत्रित करने के लिये भारत की यात्रा कर रहे थे।

तो हम ने उपरोक्त थोड़ी सी पंक्तियों में कवि टैगोर का पंजाब के साथ सम्बन्ध देखा। उनके मन में पंजाबियों और पंजाब के इतिहास के लिये आदर देखा। यह स्पष्ट हो गया है कि कवि के मन में पंजाब के लिये विशेष स्थान है इसी लिये जब सन् १९४१ में उनकी मृत्यु हुई तो सारा पंजाब पुकार उठा, चारों ओर शोक मनाया गया और जनता ने कवि को श्रद्धाँजलि अर्पित की।

———

अध्याय १६

कवि रविन्द्र नाथ टैगोर एक महान नाटककार भी थे। उन्होंने जहां बहुत सी कविता की रचनाएं कीं वहाँ कई बड़े २ सुन्दर नाटक भी लिखे, जो बहुत प्रसिद्ध हुये। और जिन से कवि का नाटककार के रुप में स्थान बन गया।

कवि टैगोर का महान नाटककार होना स्वाभाविक था। उनके घर का वातावरण ही ऐसा था जिस के द्वारा कवि की नाटकीय रुचियां विकसित हुई। नाटकों में भाग लेने का शौक कवि को प्रारम्भ में ही था। कवि के बड़े भाई जोगिन्द्र नाथ स्वयं नाटक लिखा करते थे जो उनके घर जड़ासंकी में खेले जाते थे। इनमें से कई नाटक बाहिर से निमन्त्रित विशेष दर्शकों के सम्मुख खेले गये जो बहुत पसंद किये गये। यह सब कुछ कवि के सम्मुख हुया करता था। प्रथमतः कवि नाटकों का दर्शक बना, फिर अभिनेता और तत्पश्चात् नाटककार।

कवि को आरम्भ में ही नाटकों का कितना शौक था इस का अनुमान कवि के अपने विचारों से लगाया जा सकता है,

"मेरे बाल्यकाल में लोग नाटकों में रुचि रखते थे। परन्तु शोक! मैं उस समय बालक था।"

कवि जब पहली बार अपने पिता के साथ हिमालय की यात्रा पर गये तो वह मार्ग में थोड़े से समय के लिए भोला पुर जहां बाद में शांति-निकेतन को नींव रखी गई, ठहरे। यहां कवि ने अपना प्रथम नाटक हरे-भरे खेतों में बैठ कर लिखा जिसका नाम 'पृथ्वो राज पराजय' था। इस नाटक में कवि ने पृथ्वी राज की हार का वर्णन किया। यह नाटक कवि से गुम हो गया। अतः यह पाठकों के सामने न आ पाया।

कवि का प्रथम नाटक जो पाठकों के समक्ष आया, वह 'बालमीकि प्रतिभा' था। यह एक संगीतक नाटक था जा जब दर्शकों के समक्ष अभीनीत किया गया, तो कवि ने बालमीक का अभिनय स्वयं किया और प्रतिभा कवि की भतीजी वह बलिका बनी जिसे कि डाकू उठा कर ले जाते हैं।

इस नाटक को जब प्रशंसा मिली तो कवि ने अपनी लेखिनी को इसी ओर प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया। तीन वर्षों में ही भाव १८८१ से १८८३ इ. उक उन्होंने चार पाँच अन्य नाटक लिख दिये। 'रूद्र चन्द' 'काल मग्या' 'प्रकरीतीर प्रतिशेध' 'नलिनी' और 'मायार खेल'।

'रूद्र चन्द' नाटक का नायक एक डाकू है जो एक सम्राट के रहन-सहन विरूद्ध विद्रोह करता है।

'मायार खेल' भी एक संगीत नाटक है जिस में संगीत द्वारा मानुवा-भाव उत्तेजित किये गये हैं।

'प्रकरीतोर प्रतिशेध' कवि का एक सुन्दर नाटक है जो १८८४ ई. में प्रकाशित हुया। इस नाटक को सन्यासो का नाम भी दिया गया। इस नाटक में एक सन्यासी काल पर विजय पाने का निश्चय करता है और एक कन्द्रा में जा बैठता है जो

संसार को एक निम्न तुच्छ वस्तु समझता है। वह हिमालय पर्वत के शांत वातावरण में रहना चाहता है। परन्तु अन्त में जब एक बालिका खो जाती है तो उसका मन व्याकुल हो उठता है और वह पुनः मानव-प्रेम में लीन हो जाता है। पुकारता है:—

'मेरी सन्यासी की शपथ का अंत होने दो। मैं अपना भिक्षा-पात्र और लाठी तोड़ता हूं।'

१८८९ ई. में कवि का नाटक 'राजा ओ रानो' प्रकाशित हुआ। यह एक पंचाँकोय नाटक है। राजा विक्रम देव जब अपनी पत्नी सुमित्रा के प्रेम में पागल हो गया तो वह अपने प्रजा-निमित्त कर्त्तव्यों को भूल गया। अंत में जाकर सुमित्रा तो समझ जाती है परन्तु राजे की शारीरिक भूख तृप्त नहीं होती, जिस कारण प्रेम एक ओर है कौर कर्त्तव्य दूसरी ओर। दोनों के संघर्ष द्वारा दुखान्त उत्पन्न होता है।

कवि का अगला प्रसिद्ध नाटक 'विसजन' १८९० ई. में छपा। इस नाटक में बहुत से दोष नहीं हैं। चरित्र-चित्रण सुन्दर है। बंगाली में इसे एक महान दुखांत स्वीकार किया गया है। एक ही मन्दिर में राजा गोबिन्द से लेकर सबी पात्रों को एकत्रित कर दिया गया है। रघुपति काली माता का अनन्य भक्त होता है और पशु बलिदान में विश्वास करता था। यही इस नाटक का विषय है। अन्त में यही रघुपति देवा की मूर्ति गिरा कर तोड़ देता है। कवि स्वयं इस नाटक संबंधी लिखते हैं कि इस में प्रेम और सत्ता का संघष प्रस्तुत किया गया है। मन्दिर में बलिदान किये जा रहे पशुओं का रक्त एक धारा में बहता है जिसे देख एक नवयुवती पुकारती है, 'यह

रक्त क्यों ?' यही प्रश्न है जो राजा को विवश करता है कि वह राजाज्ञा द्वारा मन्दिर में पशु-बलि बन्द करवा दे। यहाँ तक कि रानी भी राजे के विरोधी हो जाते हैं। सभी रघुपति का साथ देते हैं जो राजा को आज्ञा विरुद्ध लड़ता है। राजा बहुत व्याकुल रहता है परन्तु अन्त में रघुपति की पराजय होती है और सब के मन में भी प्रेम-धारा निस्सृत होती है। परन्तु उसके साथ ही रघुपति के पुत्र जय-सिंह को बलिदान देना पड़ता है। इस बलि से सारा वातवारण पवित्र हो जाता है। राजे और रानी का पुनः संयोग होता है और रघुपति भिखारिनी अपारना को मिलता है जो जय-सिंह से प्यार करती है। रघुपति अपने हाथों मूर्ति को जल में फेंक देता है और उस के स्थान पर प्रेम की आत्मा को प्रतिष्ठित करता है।

१८९२ ई. में कवि का नाटक 'चित्रांगदा' प्रकाशित हुआ। इस नाटक में कवि ने मनिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा और अर्जुन की कथा का वर्णन किया है। चित्रांगदा का चरित्र-चित्रण प्रशंसनीय है।

कवि टैगोर का अगला प्रसिद्ध नाटक 'राजा' है जिस का अंग्रेज़ी अनुवाद (The King of the dark chamber) नाम से छपा। बनारस का राजा कुश राज-तिलक पश्चात् एक राजकुमारी सुदर्शना से विवाह करता है विवाह पश्चात् राजकुमारी को ज्ञात होता है कि उसका पति तो तनिक भी सुन्दर नहीं। वह बुरी और कुरूप शकल का है। भेद खुलने पर उसका मन अतियन्त दुःखी होता है। उस की आत्मा तड़पती है और वह अपने पिता के घर लौट जाती है।

कुश राज भी उसका अनुकरण करता है। वह यत्न करता है कि राजकुमारी मान जाये। वह अपनी नृत्य कला से उसे मोह लेने का यत्न करता है। पहले तो वह निष्फल हो जाता है परन्तु तत्पश्चात् अपने सुसर की राय से एक कुदरती शक्ति रखने वाले हीरे से श्रृंगार करता है। इस द्वारा उस में सुन्दरता आ जाती है। राजे और राजकुमारी का पुनः संयोग हो जाता है। कथा में अधिक बल नहीं है। परन्तु कवि ने इसे अति सुन्दर नाटक बना दिया है। इस नाटक की प्रदेशों में भी प्राप्ति श्लाघा की गई।

१९१२ में कवि का प्रसिद्धतम नाटक 'डाक घर' प्रकाशित हुआ। यह नाटक न केवल भारत में ही सफलता पूर्वक रंग-मंच पर खेला गया, अपितु इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमरीका में भी, जहां दर्शकों ने इसे बहुत चाहा। यह कवि का अति प्रिय नाटक है।

इस नाटक का नायक 'अमल' नामक एक रोगी बालक है। बालक बीमार है अथवा नहीं परन्तु उसका चच्चा और बैद्य उसे घर से जाने नहीं देते। छोटा सा बालक खिड़की से ही बाहिर झांकता रहता है और ब्रह्म संसार में उड़ जाना चाहता है। वह गुजरने वाले प्रत्येक व्यक्ति से बात करता है चौकीदार दही वाला, गांव का मुखिया, मालन की बेटी 'सुधा' सभी उस से बातें करते हैं। जब वह अपने घर के निकट डाक घर बना हुआ देखता है तो चकित होकर पूछता है कि यह यहां क्या बनाया गया है। उसे बतलाया जाता है कि यहीं से उसे राजा की ओर से पत्र आयगा। वह पत्र की प्रतीक्षा करता रहता है। अन्त में आधी रात के समय राजे का चाकर पत्र लाता है

परन्तु अमल सदा की नींद सो जाता है।

डाक-घर में बालक के अन्तर को दर्शाया गया है। मनुष्य को सदा मुक्ती की भटकना लगी रहती है।

नाटक सम्पूर्ण है और इस में सफलता के सभी गुण हैं। कवि स्वयं इस नाटक के सम्बन्ध में कहते हैं कि नाटक रंग-मंच के पूर्ण योग्य है। मैंने बर्लन में इसे स्टेज पर देखा जहां दर्शकों ने इसे बहुत पसंद किया। थामसन के कथनानुसार डाक-घर अति मनमोहक नाटक है। भावों से यह भरपूर है। और अति कोमल स्पर्शों द्वारा रचा गया है। भाषा स्वाभाविक है। वार्तालाप में पूर्ण प्रवाह है। यह नदी को भांति प्रवाहित है। पात्र ऐसे हैं जो प्रत्येक घर और बाज़ार में मिल जाते हैं। थामसन आगे लिखते है, "डाक घर सम्पूर्ण कला का एक नमूना है। यह वह कुछ प्रस्तुत करता है जो काली दास और शेक्सपियर न कर सके।" कवि रंग-मंच पर वह बच्चा लाया जो मानव आत्मा का व्यक्त कर गया।

कवि का अगला प्रसिद्ध नाटक मुक्त-धारा है जो १९२२ में प्रकाशित हुआ। इसमें युवक शाही दरबार को चितावनो देता है जिसने कुदरती झरनों को बन्द करके लोगों के लिए पानी रोक दिया है।

'नदीर-पूजा' १९२६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसकी कथा बुद्ध की कथाओं में से ली गई है। नाटकी कला के पक्ष से सम्पूर्ण है। पूजा-नृत्य अति सुन्दर ढंग से किया गया है। समस्त नाटक में नृत्य कला प्रधान है।

कवि के नाटकों में कई सुन्दरतम रचनाएं हैं, फिर भी कवि का नाटककार के रूप में द्वतिय स्थान है। वह प्रथमतः

कवि है और इस क्षेभ में उसने प्रसिद्धि प्राप्त की। परन्तु थामसन का विचार है कि यदि कवि अपनी नाटक रचना की ओर थोड़ा सा और ध्यान देता तो वह संसार का एक महान नाटककार बन सकता था।

कवि के प्रसिद्ध नाटकों की सूची इस प्रकार है :-

१. बालमीकी प्रतिभा।
२. रुद्रचन्द।
३. प्रकीतीह प्रतिशप।
४. नलिनी।
५. राजा ओ रानी।
६. विसर्जन।
७. चित्राँगदा।
८. सगदोतशव
९. मुकट।
१०. प्राश्चित।
११. राजा।
१२. डाक-घर।
१३. मालिनो।
१४. मुक्तधारा।
१५. फालगुनी।
१६. चिर-कुमार सभा।
१७. नटोर-पूजा।
१८. रक्त-करबो।
१९. चंडालिका।
२०. श्यामा।

अध्याय २०

टैगोर की कहानी कला

टगोर बँगाल के सबसे प्रथम कहानीकार थे। उनसे पूर्व किसी भी साहित्यकार ने बंगाली में कहानियां नहीं लिखी। क्योंकि कहानियां लिखना एक भिन्न कला है और इसका नावल रचना से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। कहानी में एक घटना को प्रस्तुत किया जाता है। नावल चाए कितना ही छोटा क्यों न हो उसमें कई घटनाएं होती हैं।

कवि टैगोर से पूर्व बंगाली जीवन ही कुछ ऐसा था कि सामाजिक झमेले बहुत कम थे अतः साहित्यकारों ने उस की ओर ध्यान नहीं दिया। दूसरे योरूप के उन्नत देशों में भी कहानी का आरम्भ कुछ वर्ष पूर्व ही हुआ है। कवि टैगोर ने प्रथम बार छोटी छोटी घटनायें जो प्रत्येक घर, गांव और व्यक्ति से गठित होती हैं का वर्णन अपनी कहानियों में किया।

कवि टैगोर ने अपने जीवन के प्रत्येक स्तर पर कहानियाँ लिखीं, उनकी प्रथमतम कहानी 'भिखारिन' १८७७ में छपी जब कि वे केवल २६ वर्ष के थे। और उनकी अन्तिम कहानियां १९४१ में प्रकाशित हुई। उनकी पुस्तक 'गल्प गुच्छा'

में जो कि तीन भागों में प्राप्त है १४ कहानि यां हैं।

कवि टैगोर की प्रारम्भिक समय की कहानियाँ अति सुन्दर हैं। ये कहानियां कला और तकनीक के पक्ष से भी सुन्दर है। उन्हें टैगोर ने स्वयं भी बहुत पसन्द किया है।

टैगोर अपनी कहानियों के सम्बन्ध में स्वयं एक स्थान पर लिखते हैं: "जब मैं बैठ कर थोड़ा लिखता हूं, कहानियां जो कि मैं 'साधना' में छपने के लिए भेजनी होती हैं, मेरे परिवेश का प्रकाश और रँग मेरे शब्दों में घुलमिल कर जाते हैं। दृश्य, घटनाएं और पात्र जो मैं सोचता हूं, सूर्य में से, वर्षा में से और नदियों में से, घनाच्छादित आकाश में से, गांव में से, तथा भरपूर खेतों में से मिलते हैं। जहां से उन्हें जीवन और वास्तविकता प्राप्त होती है।"

टैगोर की कहानियों की जो पुस्तकें अंग्रेजी में प्रकाशित हुई, उनमें से 'पैरोटज एण्ड अदर सटोरीज़', माशी, हंगरी स्टोनज़, ब्रोकन राईज, स्टारीज फ्राम टैगोर, आदि का वर्णन किया जा सकता है।

कवि टैगोर की दर्जनों कहानियों में से जिन को प्रसिद्ध प्राप्त हुई, का वर्णन यहां किया जाता है ताकि पाठक इन कहानियों के सम्बन्ध में अपने विचार बना सकें। पोस्ट मास्टर एक ऐसे प्रदेशी की कहानी है जो बंगाल के एक दूर स्थित गांव में इकाकी कार्य्य करता है। वह अविवाहित है और उसे कम वेतन मिलता है। वह अपना घर सजा कर नहीं रख सकता और लोक-सेवा करने में असमर्थ है। वह अपनी रोटी स्वयं पकाता है और झोपड़ी में रहता है। उसकी एक सेविका रतन है जो एक पछड़ी हुई श्रेणी की यतीम लड़की

है। वह उसके प्रत्येक कार्य में सहायता करती है। पोस्ट-मास्टर कलकत्ते का निवासी है और गांव में आकर उसका मन नहीं लगता। उसके साथ कोई बात-चीत करने वाला नहीं। उसका कोई सम्बन्धी और मित्र गांव में नहीं रहता। एक दिन जब कि बर्षा हो रही होती है तो उसका मन उछलता है। वह कोई ऐसा व्यक्ति खोजता है जो उसका मनोरंजन कर सके। जब उसे कोई मित्र नहीं मिलता तो वह अपनी सेवका से बातें करना आरम्भ कर देता है और उसे पढ़ाने का यत्न करता है। रतन का मन केवल इस स्वाभाविक घटना से मोह लिया जाता है क्योंकि उसके साथ भी अन्य दुःख बाँटने वाला कोई नहीं। अब वह प्रतीक्षा करती है कि पोस्ट-मास्टर उसे बुला कर पाठ पढ़ायें। इस लिए नहीं कि वह पढ़ने की ओर रुचि रखने लगी है, अपितु इसलिए कि वह पोस्ट-मास्टर के निकट आना चाहती है। यहाँ उस के मन में वह भावना उत्पन्न होती है जिसे हम साधारणतः प्यार कहते हैं। एक निर्धन यतीम लड़की यद्यपि यह नहीं जानती कि एक प्रदेशी से वह कैसे जुड़ सकती है, परन्तु यह अनुभव अवश्य करती है कि 'वह' उसके लिए संवेदन रखता है। यद्यपि लड़की जीवन उलझनों को नहीं समझती फिर भी वह सब कुछ बलिदान कर देने के लिए तैयार है और उसके लिए सब कुछ कर सकती है। पोस्ट-मास्टर अपने हित के लिए गांव छोड़ने को तैयार हो जाता है और अपनी संचित आय में से कुछ भाग लड़की को देने के लिए तैयार हो जाता है परन्तु लड़की तो उससे कोई अटूट सम्बन्ध जोड़ना चाहती थी अतः उस के किंचित धन से संतोष कहां, यद्यपि वह स्वयं नहीं जानता कि यह संबन्ध क्या है परन्तु जब वह

एकाकी रह जाती है तो खिन्न लगती है।

'भूखे पत्थर' कवि की एक अन्य सुन्दर कहानी है। इसमें एक पुराने प्रासाद का वर्णन अति सुन्दर ढंग से किया गया है। इस कथा में कवि ने भूत और वर्तमान से परदा उठाया है। चार सौ वर्ष पुराने महल की कहानी जिसका एक नारी के विकल भावों और आशाओं से सम्बन्ध है।

'रात' में टैगोर ने एक करामाती घटना दर्शाई है। एक पति जो अपनी प्रथम पत्नि की मृत्यु पर दूसरा विवाह करवा लेता है, उसे उसकी प्रथम पत्नी रात्रि के समय आ कर तंग करती है और उसका पीछा करती है। जब पहली अभी बीमार ही होती है तो वह अनुभव करती है कि उसका पति किसी अन्य लड़की की ओर आकृष्ट हो गया है। अतः वह आत्मघात करके उनके मिलने का मार्ग बना देती है। परन्तु जब वह प्रथम बार नवीन लड़की को देखती है तो अन्धकार वश वह उसे पहचान नहीं पाती। वह केवल अनुभव करती है कि दरवाजे में कोई खड़ा है। वह कोलाहल मचाती है और अनुभव करती है कि उसकी सौंकन आ गई है। वह पुकारती है, "यह क्या है, यह क्या है?" अतः उसके मरने के बाद जब डोकिन बाबू अपनी दूसरी पत्नी से प्यार करता है तो उस पर कुदरत हंसती है और वह ऐसी आवाज़ें सुनता है कि जो रात को उसका पीछा करती हैं। और उसे भयभीत करती हैं यद्यपि यह आवाज़ें वायु की सायं सायं, बतख की आवाज अथवा झरनों की सूं सूं ही क्यों न हों। परन्तु डोकिन बाबू यह समझता है कि यह प्रथम पत्नी के रुष्ट होने का ही परिणाम है जो कबर में से उसे ललकारती है। यह रोष कुदरत स्वयं अनुभव कराती है।

कहानी 'खोये हीरे' में टैगोर एक अन्य करामाती घटना प्रस्तुत करते हैं। मन्नी नय्या में बैठ अपने पति के घर से जाती हैं। मधु जो कि उसके पति के कार्यालय में कलंक है, उसके साथ होता है। वह लौट कर नहीं आती और मधु को भी कोई पता नहीं लगता। अतः स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसने मन्नी को नदी में धक्का दे कर मार दिया है और उसके आभूषण लूट लिये हैं। रात को उजाड़ एवं उदास घर में मन्नो का पति दरवाज़े पर आहट सुनता है और आभूषणों की खड़कार उसके कानों में गूंजती है। यों प्रतीत होता है कि आवाज़ें नदी की ओर से आ रही हैं जहां मन्नो बेड़ी में सवार होती है। आवाज़ें आती हैं और तममय रात को और भी भयानक बना देती है। कुछ ज्ञात नहीं होता कि आवाज़ें ही आ रही हैं अथवा मन्नी भूत का रूप धारण कर धरती पर उतर आई है। एक दिन चांदनी रात में भूशण एक पिजरा गहनों से भरा हुआ देखता है और वह नदी की ओर खिच जाता है जहां वह भी डूब जाता है।

'काबली वाला' टैगोर की सम्भवतः सुन्दरतम कहानी है जो संसार की कई भाषाओं में अनुदित हो चुकी है। और जिस की बंगाली में मन-मोहक फिल्में भी बनायी गयी हैं। यह कहानी कला और भाषा से संपूर्ण है और अति रसपूर्ण हैं। अतः इस कहानी का पूरा अनुवाद यहां दिया जाता है ताकि पाठक पढ़ कर कवि टैगोर की कहानी क्षेत्र में महानता का ज्ञान प्राप्त कर सकें और इस सुन्दर कहानी का रस प्राप्त कर सकें।

...

काबुली वाला

मेरी पांच वर्षीय बालिका मिनी बिना शोर-गुल मचाए नहीं रह सकती। मुझे विश्वास है कि अपने सम्पूर्ण जीवन में उसने एक क्षण भी मौन रह कर नष्ट नहीं किया। उसकी मां प्रायः उसे झिड़कती रहती और उसकी बड़बड़ाने की आदत को रोकना चाहती लेकिन मुझसे ऐसा होता नहीं। मिनी के लिये शान्त रहना अस्वाभाविक है और मैं भी यह अधिक सहन नहीं कर सकता और इसीलिये मेरी बातचीत उसके साथ तीव्रता के साथ चलती रहती।

एक सुबह जब मैं अपने नवीन उपन्यास के सत्रहवें परिच्छेद के मध्य में था, मेरी छोटी मिनी कमरे में चुपके से आ गई और मेरे गले में अपने हाथों को डालते हुये बोली-"पिताजी! रामदयाल द्वारपाल काक को कौआ कहता है। वह कुछ नहीं जानता, क्यों वह जानता है?'

इससे पूर्व कि मैं उसे संसार की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में कुछ समझाऊं उसने दूसरी बात छेड़ दी—"तुम क्या कहते हो, पिताजी? भोला तो कहता था कि बादलों में एक हाथी अपनी सूंड़ से पानी फेंकता है और इसलिये वर्षा

होती है !"

और फिर, इस प्रसंग को छोड़ दूसरा लेकर मेरे उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये वह कह उठी, "पिता जी! मां तुम्हारी कौन हैं ?"

गंभोर मुद्रा से मैंने उपाय सोच कर कहा—"जाओ ! भोला के साथ खेलो, मिनी ! मैं काम में लगा हुआ हूं ।"

मेरे कमरे की खिड़की सड़क की ओर खुलती है। बालिका मेरी मेज के पास पैरों पर बैठ गई और घुटनों को थपथपाते हुए हाथों को बड़ी जल्दी-जल्दी हिलाकर अटकन-बटकन दहीचटाके का खेल अकेले ही प्रारम्भ कर दिया । उस समय मैं अपने उपन्यास के सत्रहवें परिच्छेद में बड़ी महत्वपूर्ण जगह पर था-नायक प्रताप सिंह ने उसी समय नायका कंचनलता को पकड़ा था और उसको अपनी भुजाओं में कसे किले की तीसरी मजिल की खिड़की से नीचे बहती हुई नदी में कूदना ही चाहते थे कि सहसा ही मिनी अपने खेल को छोड़ कर 'ओ काबुली वाला' 'ओ काबुली वाला' कहती हुई खिड़की की ओर दौड़ गई। सचमुच, नीचे गली में धीरे-धीरे जाता हुआ एक काबुली था । अपने देश का ढोला-डाला मैला कुचैला बाना – एक बड़ा सा साफा पहने पीठ पर एक थैला लादे और हाथों में अंगूरों की एक पेटी लिये हुए था।

मैं यह तो नहीं जानता कि उस मनुष्य को देख कर मेरी बच्ची के हृदय में क्या भाव उदय हुआ लेकिन यह मैं जानता हूं कि उसके पुकारने पर वह काबुली अन्दर आ जाएगा और तब मेरा सत्रहवां परिच्छेद कदापि पूर्ण न हो सकेगा। उसी क्षण काबुली वाला मुड़ा और उसने मिनी की ओर देखा तो

यह भयभोत सी हो कर सुरक्षा के लिये मां की ओर दौड़ गई। उसके हृदय में यह अन्धविश्वास बैठ गया था कि काबुली अपनी झोलियों में उसके जैसे दो तीन बच्चों को बन्द किये हुए है। फेरी वाला काबुली इस बीच अन्दर आ चुका था उसने मुझसे मुस्काते हुए नमस्ते की।

मेरे नायक और नायिका की स्थिति बड़ी नाजुक और अनिश्चित थी फिर भी मिनी ने उसे घर पर बुला लिया था अतः उन्हें उसी दशा में छोड़ कर मुझे कुछ खरीदना पड़ा। इसके बाद अब्दुर रहमान से रूसियां, अंग्रेजों और फिर सी मान्तर-रक्षा नीति जैसे विषयों पर वार्ता चल पड़ी।

जब वह जाने को था, उसने पूछा, 'बाबू साब' वह बच्चो कहाँ गई ?"

यह सोच कर कि मिनी के हृदय में समाए हुए मिथ्या भय को दूर करना चाहिये, मैं उसे बाहर ले आया।

वह मेरो कुर्सी के सहारे खड़ी सन्देह के साथ काबुली और उसकी झोली की ओर देखती रही। उसने उसे झोली में से कुछ खूबानी और किशमिस निकाल कर देनो चाही, पर उसने न लीं और मेरे से अपने बढ़ते हुए सन्देह के साथ और भी अधिक सट गई।

यह उनका प्रथम परिचय था।

कुछ दिनों बाद एक सुबह जब में किसो कारण से घर से निकलने का था तो मैं यह देख कर चकित हुआ कि मिनो द्वार के निकट एक बैंच पर बठो हंस-हंस कर बातें कर रही है, काबुली उसके पैरों के निकट बैठा मुसकराता हुआ उसकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहा है। अब तक अपने जीवन में उसे

अपने पिता के अतिरिक्त किसी एसे धैर्य-वान् श्रोता से वास्ता न पड़ा था। उसकी छोटी सी साड़ी के छोर में बादाम तथा किशमिस का उपहार बांधा जा चुका था, 'ये सब तुमने क्यों दिये ?" मैंने अपनी जेब से अठन्नी निकाल कर उसे देते हुए कहा। बिना किसी सकोच के उस आदमी ने वह अठन्नी ले ली और अपनी जेब में डाल ली।

अहा ! एक घंटा बाद घर लौटने पर मैंने देखा कि उस अठन्नी ने घर में अपने मूल्य से अधिक उपद्रव खड़ा कर दिया है, क्योंकि काबुली वाला उसे मिनी को वापिस कर गया था। मिनी की मां ने उस चमकीले गोल पदार्थ को देख लिया और तब उसने मिनी से डपट कर पूछा—'अठन्नी तुम्हें कहां से मिली ?'

"यह मुझे काबुली वाले ने दी !" मिनी ने प्रसन्नता के साथ कहा।

"काबुली वाले ने तुम्हें दी !" उसकी मां उत्तेजित हो कर चीख पड़ी। "ओ मिनी ! यह तूने उससे ली क्यों ?"

मैं उसी क्षण घर में घुसा, समीप आती हुई विपत्ति से उसे बचाते हुए मैंने स्वयं पूछ-ताछ प्रारम्भ कर दी।

मालूम हुआ कि काबुली की मिनी के साथ दूसरी मुलाकात नहीं है, इस बीच वह नित्य यहां आता है और पिस्ता-बादाम और किशमिस की रिश्वत दे कर उसके छोटे से हृदय से भय निकाल कर उस पर अधिकार कर लिया है, अब वे दोनों बड़े अच्छे मित्र थे।

वे दोनों अनेकों बार अनोखी-अनोखी बातें कर चुके थे

जिन्हें कर वे बड़े प्रसन्न होते। मिनी उसके विशाल आकार को अपने नन्हे से कौतूहल के साथ देखती और अपने चेहरे को हंसी की लहरों में डुबोती हुई पूछती "ओ काबुली वाले ! ओ काबुली वाले ! ! तेरी झोली में क्या है ?"

और वह नाक के स्वर से अपने शब्दों पर जोर देता हुआ एक पर्वत निवासी की ही तरह कह उठता, 'एक हाथी' !' कदाचित परिहास के लिए ये बातें पर्याप्त नहीं थी फिर भी वे दोनों किस प्रकार आनन्द प्राप्त करते ! और मेरे लिये, इस बच्ची की एक पूर्ण विकसित मनुष्य के साथ की हुई बातें मनोहारी थी।

काबुली भी पीछे न रह कर बदला चुकाता हुआ उससे पूछता 'अच्छा, छोटी सी मुन्नी, मुझे यह बताओ कि तुम अपने ससुर के घर कब जा रही हो ?"

यद्यपि हर एक बंगाली लड़की अपने ससुर के घर के विषय में बहुत पहले ही जान लेती है परन्तु हम जरा नए जमाने से प्रभावित हैं और इस कारण मिनी को इस प्रश्न पर अनयावश्यक रूप में भ्रमित हो जाना पड़ता। लेकिन वह अपनी इस घबड़ाहट का पता न लगने देती और तुरन्त ही पूछ उठती, "क्या तुम वहाँ जा रहे हो ?"

काबुली लोगों में 'ससुर के घर' के दोनों ही अर्थ भली प्रकार प्रचलित है। यह शब्द जेल के लिये मंगल भाषित शब्द है, जहां कि लोगों को बिना कोई व्यय लिये पाला-पोषा जाता है। इसी भाव में वह काबुली मेरी बच्ची के प्रश्न को लेते हुये अपनी मुट्ठियों को कस कर दिखाते हुए कहता, "ओय ! मैं ससुर को मारूंगा।"

यह सुनकर मिनी ससुर नामक किसी अपरचित जीव की दुर्गति पर हंस देती - इस हंसी में उसका वह मित्र भी साथ देता।

ये शरद की सुहानी सुबहें थी। प्राचीन काल में इसी समय राजा लोग दिग्विजय के लिये निकलते थे। लेकिन मैं तो अपने कलकत्ते के छोटे से कोने को छोड़ कर कहीं न गया और इसके विपरीत मेरा मस्तिष्क संसार भर में घूमने लगता। दूसरे देश के नाम पर, मेरा हृदय चंचल हो उठता और गली में किसी विदेशी को देख कर मैं स्वप्नों के जाल में जा फंसता हूं,—पर्वत श्रेणियाँ, कंदराओं, घाटियों तथा दूर देश के जंगलों के बीच एक झोंपड़ी और स्वच्छन्द और आत्म-निर्भर जीवन अथवा इस पशुता भरे जीवन से दूर—। शायद यात्रा के चित्र मेरे सामने आ आकर मुझे अपने जादू से प्रभावित करते और बार-बार वे दृश्य मेरी कल्पना में स्पष्ट रूप से आ घुसते, क्यों कि मेरी प्रकृति शाक-भाजी की तरह है जिस पर कि यात्रा के नाम से बिजली गिर जाती है। काबुली वाला की उपस्थिति में मैं तुरन्त ही तंग दर्रा के बीच होता हुआ पर्वत की ऊंची चोटी पर पहुंच जाता हूं। तब मैं व्यापारियों के सामानों को लादे हुए ऊंटों की कतार और साफा बांधे हुए सौदागरों के काफले जिनमें से कुछ अपने साथ बाबा आदम के जमाने की बन्दूकें लिये हैं तो कुछ बरछियों को, और जो मैदानों की ओर बढ़ जा रहे हैं। मैं देखता और सुनना—कि वे काबुली लोग जोर जोर से अपने देश की बातों में लगे हैं।

इसी अवसर पर मिनी की मां दखल देती और मुझसे विनय के साथ कहतीं—'इस आदमी से सावधान रहें।"

दुर्भाग्य से मिनी की माँ बड़ी भीरू है। जब कभी गली में वह कोई शोर-गुल सुन लेती है या अपने घर की ओर लोगों को आते देख लेती है—तो वह सदा इसी परिणाम पर पहुंच जाती है कि या तो वे चोर हैं अथवा शराबी, हमारे मकान की ओर दौड़े चले आ रहे हैं। उसकी समझ में यह दुनिया चोरों, डकैतों, मतवालों, शराबियों, साँप, बाघ, मलेरिया आदि से भरी है। दुनिया में रहते हुए उसे इतना समय हो गया फिर भी उसके हृदय से भय नहीं गया, इसीलिये वह काबुली पर भी पूरी तरह सन्देह रखती, और मुझसे प्रार्थना करती रहती कि मैं उस पर विशेष दृष्टि रखूं।

यदि मैं ने उसके भय को हंस कर उड़ा देना चाहा तो वह गंभीर हो कर एक साथ अनेकों प्रश्न मुझ से कह डालती
"क्या कभी किसी के बच्चे चुराये नहीं गए ?"
"क्या यह सच नहीं कि काबुल में गुलाम बेचने की प्रथा है?"
"क्या एक लम्बे-तगड़े आदमी के लिये एक छोटे से बच्चे को उठा कर ले जाना सम्भव नहीं ?"

मुझे मानना पड़ता कि ऐसी घटना असम्भव नहीं किन्तु है बड़ी असंगत। लेकिन इतना ही काफी न था और उसका भय बढ़ता जाता। लेकिन यह व्यर्थ का सन्देह है और इसी कारण किसी आदमी को घर आने के लिए मना कर दिया जाय, यह मुझे भला नहीं लगा और तब यह परिचय बिना किसी रुकावट के बढ़ता ही गया।

एक साल में जनवरी के मध्य वह काबुली वाला अपने देश को वापिस जाता और जब यह समय पास आता होता तो वह घर-घर जा कर अपने बाकी रुपयों को एकत्रित करने

में पूरी तरह संलग्न होता। इस साल किसी तरह उसने नित्य ही समय निकाल कर मिनी से मिलना जारी रखा। कोई भी बाहरी आदमी उन दोनों को देखकर कह सकता था कि वे कोई षड़यन्त्र रच रहे हैं। जब उसे सुबह समय न मिलता तो वह शाम को आ जाता।

मुझे भी जब तब कुछ आशंका सी होने लगती घर के अंधेरे कौने में लम्बा तगड़ा, ढीली-ढाली पोशाक पहने झोलियों को लादे हुए एक आदमी देख कर किसको भय न लगेगा।

परन्तु जब मिनी को मुस्कराते हुए उसकी ओर दौड़ता हुआ देखता और वह कहती, 'ओ काबुली वाले! ओ काबुली वाले।" और तब आकाश-पाताल के समान अन्तर की आयु वाले दो मित्र अपनी चिर परिचित हंसी—मज़ाक में डूब जाते तो मैं सन्तोष कर लेता।

एक सुबह, उसके जाने से पहले, में अपने अध्ययन कक्ष में बैठा अपनी एक पुस्तक का प्रूफ देख रहा था। मौसम में अति शीतलता थी। खिड़की से निकलती हुई सूरज की किरणें मेरे पाँवों पर पड़ रही थीं और यह हलकी हल्की गर्मी बड़ी भली लग रही थी। उस लमय लगभग आठ बजे थे। प्रायः घूमने वाले लोग अपने सिरों को अच्छी तरह ढके हुये घर लौट रहे थे। सहसा ही मैंने गली में ऐक शोर-गुल सुना, और जब मैंने बाहर झाँका तो देखा कि रहमान को दो सिपाही बांधे हुए ला रहे हैं और उसके पीछे अचम्भित लड़कों की टोली चली आ रही है। रहमान के कपड़ों पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में छुरा लगा हुआ है। मैं जल्दी

से बाहर निकला और उन्हें रोकते हुये पूछा कि बात क्या हुई? एक से कुछ ज्ञात करने पर मैंने यह जानकारी प्राप्त की कि किसी पड़ौसी ने रहमान से एक रामपुरी चादर खरीदी थी। उसकी तरफ़ कुछ पैसे बाकी निकलते थे जिन्हें न देने के लिये उसने चादर खरीदने की बात को ही स्वीकार न किया और बस इसी में बात बढ़ गई। और रहमान ने उसे पीट दिया।

जब रहमान उत्तेजित हो कर अपने शत्रु को तरह तरह की गालियां सुना रहा था तो हमेशा की तरह बरामदे से निकली हुई मिनी ने जोर से कहा, 'ओ काबुली वाले।' रहमान का चेहरा खिल उठा जैसे ही उसने उसे देखा। आज उसके कंधे पर कोई झोली न थी इसलिये वे हाथी के बारे में तो बातचीत कर न सके इसलिये वह एक साथ अगले प्रश्न को ले बैठी, "क्या तुम अपने ससुर के घर जा रहे हो।"

रहमान हंस पड़ा और बोला, 'मेरी मुन्नी, हाँ मैं वहीं तो जा रहा हूं।" और यह देख कर कि बच्चे को उसके उत्तर ने कोई मनोरंजन नहीं दिया उसने अपने बंधे हुए हाथों को ऊपर उठाया, "अहा!" उसने कहा, 'मेरे हाथ बधे हुये हैं नहीं तो मैं उस बुड्ढे ससुर को मारता।

घातक आक्रमण करने के कसूर में रहमान को कई सालों की सजा हो गई।

समय बीता और उसकी याद भी दिल से निकल गई। हमारे नित्य प्रति के कार्य पुराने परिपाटी के अनुसार चलते गए और एक पर्वत निवासी के विषय में शायद ही कभी कोई विचार हमारे मस्तिष्क में आया हो! कोमल हृदय मुन्नो से भी मुझे यह कहते लज्जा होती है कि अपने पुराने मित्र को

भुला दिया । उसके जीवन में नये नये मित्रों ने आकर अधिकार कर लिया । जैसे जैसे वह बड़ी होती गई उसका समय अधिकतर लड़कियों के बीच ही बीतने लगा । सचमुच इतना कि वह कभी अपने पिता के कमरे मैं बिताती थी और इस कारण मुझे उससे वात करने का अवसर भी बहुत कम मिलता ।

कितने ही बर्ष बीत गये और अब फिर शरद ऋतु आ गई है और हमने इस बीच मिनी का सम्बन्ध निश्चित कर दिया है । पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह सम्पन्न हो जायगा । दुर्गाजी के कैलाश को लौटने के साथ साथ हमारे घर का एक प्रकाश अपने पिता के घर में अंधेरा कर अपने पति के घर चला जायगा ।

सुबह बड़ी दैदीप्यमान थी । वर्षा के बाद ऐसा लगता था कि हवा घुल कर स्वच्छ हो गई है और सूर्य की किरणें शुद्ध स्वर्ण की तरह निर्मल हो चमक उठी हैं । वे इतनी उज्ज्वलता लिये थीं कि उन्होंने कलकत्ता को गलियों की मैली कुचैली दीवारों को भी चमका दिया था ।

आज सुबह अंधेरे से हो हमारे घर पर शहनाई बज रही है और हर स्वर पर मुझे अपना हृदय धड़कता हुआ लगता । उससे निकलती हुई करुण-भैरवी रागिनी मेरे हृदय में वियोग की व्यथा को बढ़ाती हुई प्रतीत होती । आज की रात को मेरी मिनी का विवाह होने वाला है ।

सवेरे से ही मेरे घर पर झमेला सा लगा है—शोर-गुल मच रहा है । बाहर आँगन में बांस के सहारे एक मंडप बनाया जा रहा है—घर के हर एक कमरे में—बरामदे में झाड़

लटकाये जा रहे हैं और उनकी टिन-टिन आवाज मेरे कानों में आ रही है। आनन्दातिरेक और जल्दबाजी की तो सीमा ही नहीं है। मैं अपने अध्ययन कक्षा में बैठा हिसाब-किताब देखने में संलग्न था कि कोई आदर के साथ नमस्ते कर कमरे में आ घुसने के बाद मेरे सामने आ खड़ा हुआ।

यह रहमान था—काबुल वाला! पहले तो मैं उसे पहिचान न सका। उसके पास कोई झोली न थी, उसके लम्बे बाल छोटे-छोटे कटे हुये थे और उसकी पुरानी स्फूर्ति नष्ट हो चुकी थी। लेकिन वह मुस्कराया और मैं उससे फिर से परिचित हो गया।

"रहमान तुम कब आये ?" मैंने उससे पूछा।

"कल शाम को।" उसने कहा, 'जेल से छूटा हूं ;"

सुनने के बाद ही मेरे कान में ये शब्द ज़ोर से जा टकराये। मैंने कभी किसी ऐसे आदमी से बातचीत न की थी जिसने किसी पर खूनी हमला किया हो—और जब मैंने ऐसा अनुभव किया तो मेरा हृदय स्वतः ही सिकुड़ कर छोटा हो गया और सोचने लगा कि अच्छा होता कि आज के दिन यह यहां न आता।

"यहां कुछ उत्सव होने जा रहा है," मैंने कहा, 'और मैं उसमें लगा हुआ हूं। अच्छा हो तुम फिर किसी दूसरे दिन आओ।"

वह तुरन्त ही जाने को मुड़ गया लेकिन जैसे ही दरवाजे के निकट पहुंचा तो वह रुक गया और बोला, 'बाबू एक क्षण के लिये मैं बच्ची को नहीं देख सकता क्या ?"

शायद उसको विश्वास था कि मिनी अब भी पहले को

तरह ही होगी और उसके सामने वही 'ओ काबुली वाले ! ओ काबुली वाले ।" पुकारता हुआ चित्र नाचता होगा । उसने यह भी कल्पना की होगी कि वे पहले की तरह हास-परिहास कर सकेंगे । वास्तव में अपनी पुराने दिनों की स्मृति के अनुसार वह एक कागज में बांध कर कुछ बादाम, किशमिसें और अंगूर किसी अपने देश के आदमी से माँग कर अथवा उसके पास जो भी थोड़ा पैसा था उसका खरीद कर लाया था ।

मैंने पुन: कहा—"घर में आज उत्सव होने को है और इसलिये तुम आज किसी से भी न मिल सकोगे !"

इस प्रकार मेरा उत्तर पाकर उसका चेहरा लटक गया । उदास आंखों से गहरी शान्ति के साथ उसने मेरी ओर देखा और बोला, "अच्छा, नमस्ते बाबू ।" और बाहर निकल गया ।

मुझे दुख हुआ उसको इस प्रकार जाते हुये देख कर उसे बुलाने को ही था कि मैंने उसे स्वयं लौटते हुये पाया । मेरे पास आकर उसने अपने साथ लाई हुई भेंट को देते हुये कहा, "बाबू ये कुछ चीज़ें मैं लाया हूं, क्या इन्हें आप मिनी को दे देंगे ?"

मैंने उन्हें लेने के बाद जेब में से निकाल कर पैसे देने चाहे पर उसने मेरे हाथ को पकड़ लिया और बोला, "आपकी बड़ी कृपा है बाबू ! बस मुझे याद रखिए—पैसा न दीजिये ! आपके जैसी मेरे भी कोई छोटी सी लड़की है—बस उसी की याद कर मैं आपकी बच्ची के लिये ये कुछ चीजें लेता आया हूं—कोई सौदा कर लाभ उठाने नहीं !

इतना कहने के बाद उसने अपनी ढीली-ढाली पोशाक

में हाथ डाला और छाती के पास से एक मैला-कुचैला कागज का टुकड़ा बाहर निकाला। बड़ी सावधानी के साथ इसकी तह को खोलते हुये उसने उसे दोनों हाथ से उसे फैला कर मेरी मेज़ पर रख दिया।

उस कागज पर किसी नन्हें हाथों की छाप थी। वह फोटो ग्राफ अथवा कोई तैल चित्र न था, हाथों पर कालिख लगा कर कागज पर उन्हीं की छाप लेली गई थी। जब-जब वह अपनी वस्तुएं लेकर कलकत्ते की गलियों में बेचने को आता तब वह अपने हृदय के पास ही अपनी बच्ची के सुकोमल हाथों के स्पर्श को रखे हुये होता। इससे उसके बिछुड़े हुये हृदय को शांति मिलती।

यह सब देख कर मेरी आखों में आंसू आ गए। मैं भूल गया कि वह काबुल का एक निर्धन फल विक्रता है और मैं... लेकिन मैं उससे अधिक क्या था? वह भी मेरी तरह एक पिता था।

दूर देश में पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाली कन्या के हाथों की निशानियों ने मुझे अपनी मिनी की याद दिला दी। मैंने उसी समय मिनी को भीतर से बुला भेजा। यद्यपि भीतर से उसके बाहर आने पर अनेक आपत्तियां की गईं लेकिन मैंने उन पर कोई ध्यान न दिया विवाह के समय पहने जाने वाली सिल्क की लाल साड़ी में लिपटी, माथे पर चन्दन का तिलक किये पूरी तरह वधू-वेशिनी मिनी बाहर आई और लज्जा से सिकुड़ी हुई सी मेरे निकट खड़ी हो गई।

काबुली उसे देखकर पहले तो सकपका सा गया और पहले की तरह मित्रतापूर्ण बातें करते उससे न बना, फिर

बाद में वह हंसता हुआ बोला, "मेरी छोटी मुन्नी क्या तुम सास के घर जा रही हो ?"

मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी और उससे भी पहले की भांति उत्तर न देते बना। उसका प्रश्न सुन उसका चेहरा लज्जा से लाल हो गया और एक वधू की तरह वह अपने नेत्रों को नीचे ही किये रही।

मुझे वह दिन याद आया जब कि काबुली और मिनी का प्रथम परिचय हुआ था, मुझे अपने हृदय में एक व्यथा सी जगती हुई प्रतीत हुई। जब वह चली गई तो रहमान एक दीर्घ श्वास लेकर जमीन पर बैठ गया। शायद उसको एका-एक अपनी बच्ची का ख्याल हो आया था कि वह इतने दिनों से इतनी दूर पर है और उससे भी उसे फिर से परिचय करने की आवश्यकता पड़ जावेगी। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, यह भी कौन जाने ?"

शहनाई की आवाज सुनाई देने लगी। शरद ऋतु की कोमल सूर्य-रश्मियों ने उसको घेर लिया, लेकिन रहमान कलकत्ता की एक गली में बैठा हुआ अपने मरू देश अफगानि-स्तान के पर्वतीय दृश्य देख रहा था।

मैंने पचास रुपये के नोट निकाल कर देते हुये कहा— "रहमान, तुम आज ही अपनी बच्ची के पास अपने देश चले जाओ, तभी तुम्हारे मिलन—सुख से मेरी मिनी भी सुख प्राप्त कर सकेगी।"

उसे यह भेंट देने के पश्चात मुझे विवाहोत्सव में होने वाले कुछ कार्यक्रमों को रद्द करना पड़ा। जिस प्रकार की मैं बिजली की रोशनी चाहता था वह न हुई और न मिलिटिरी

बैण्ड ही आ पाया यद्यपि यह सब देख कर घर की औरतों को असन्तुष्ट होना पड़ा । लेकिन मेरे लिये विवाह का उत्सव अपूर्व था क्योंकि दूर देश में बहुत दिनों के बाद एक बिछुड़े पिता ने अपनी एक मात्र बच्ची को पा लिया होगा ।